स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

MASY-05
विकास का समाजशास्त्र

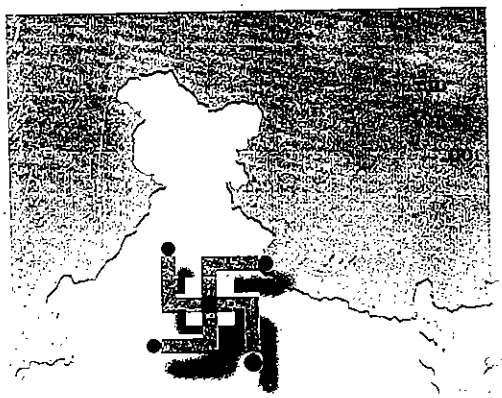
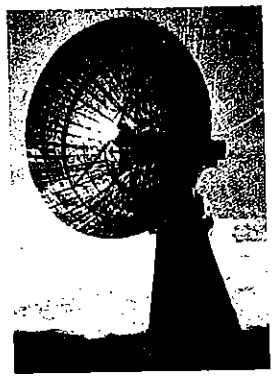
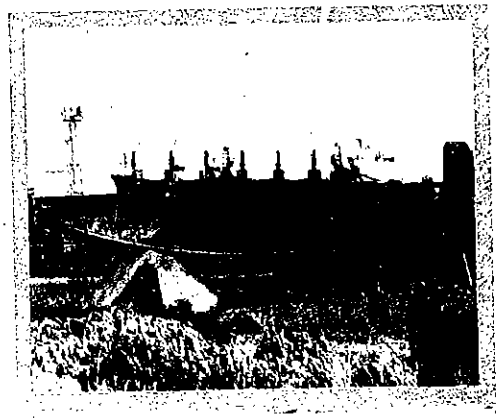

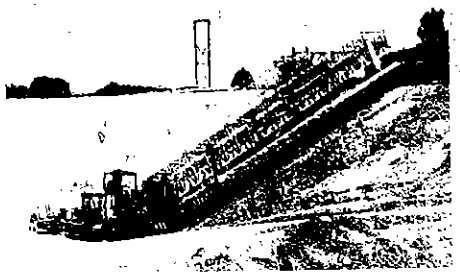
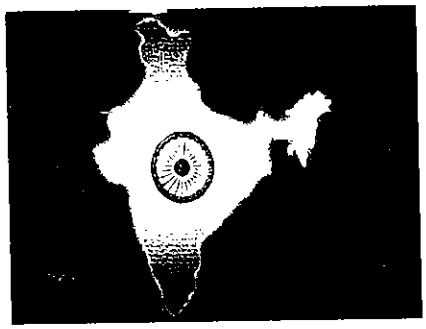

प्रथम खण्ड : सामाजिक परिवर्तन एवं विकास
द्वितीय खण्ड : आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन
तृतीय खण्ड : सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ
चतुर्थ खण्ड : विकसित एवं विकासशील समाज
पंचम खण्ड : शिक्षा, जनसंचार एवं विकास

खण्ड

1

सामाजिक परिवर्तन एवं विकास

इकाई 1

सामाजिक परिवर्तन, उद्विकास प्रगति एवं विकास

इकाई 2

अर्द्धविकास, विकास एवं स्थिर विकास

इकाई 3

विकास के सिद्धान्त

इकाई 4

विकास के मॉडल

खण्ड -1 : खण्ड परिचय - सामाजिक परिवर्तन एवं विकास

खण्ड परिचय :- इस खण्ड में सामाजिक परिवर्तन एवं विकास की स्थापना की गई है। **पहली इकाई** का शीर्षक है 'सामाजिक परिवर्तन, उद्विकास, प्रगति एवं विकास'। इसमें सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न विशेषताओं तथा प्रतिमानों का वर्णन किया गया है। सामाजिक परिवर्तन की कुछ प्रमुख सहायक प्रक्रियाओं की व्याख्या की गई है। सहायक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत उद्विकास, प्रगति एवं विकास की विवेचना की गई है। **दूसरी इकाई** का शीर्षक है 'अर्थ-विकास, विकास एवं स्थिर विकास'। इस इकाई में विकास की विभिन्न अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया है। अल्प विकास एवं अर्द्ध विकास को स्पष्ट किया गया है। सामाजिक विकास, उसके मापदण्ड एवं आधारों की व्याख्या की गई है। **तीसरी इकाई** का शीर्षक है 'विकास के सिद्धान्त'। इसमें विकास के सिद्धान्त का अर्थ स्पष्ट किया गया है। विकास के विभिन्न आर्थिक सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है। प्रतिक्रियात्मक एवं वैश्विक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। **चौथी इकाई** का शीर्षक है 'विकास के मॉडल'। मॉडल के अर्थ को स्पष्ट करते हुए परिभाषित किया गया है। पूँजीवादी विकास के प्रारूप को विभिन्न विद्वानों के विचारों के माध्यम से उल्लेख किया गया है। सामाजिक विकास के प्रारूप को विदेशी एवं भारतीय विचारकों के सिद्धान्तों के माध्यम से स्पष्ट किया गया है। गांधीवादी विकास के प्रारूप की व्याख्या की गई है।

इकाई 1 सामाजिक परिवर्तन, उद्विकास, प्रगति एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

1.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

1.4 समाज परिवर्तन के विभिन्न परिवर्तन)

1.4.1 प्रथम प्रतिमान (रेखीय प्रतिमान

1.4.2 द्वितीय प्रतिमान (उतार/चढ़ाव वाला परिवर्तन)

1.4.3 तृतीय प्रतिमान (चक्रीय परिवर्तन)

1.5 सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाएं

1.5.1 उद्विकास (अर्थ एवं परिभाषा)

1.5.1.1 डार्विन का उद्विकासीय सिद्धान्त एवं सामाजिक उद्विकास

1.5.1.2 सामाजिक उद्विकास के विभिन्न स्तर

1.5.1.3 सामाजिक उद्विकास एवं सामाजिक परिवर्तन

1.5.2 प्रगति (अर्थ एवं परिभाषा)

1.5.2.1 सामाजिक प्रगति एवं उसकी विशेषताएं

1.5.2.2 सामाजिक प्रगति एवं सामाजिक परिवर्तन

1.5.3 विकास एवं सामाजिक विकास (अर्थ एवं परिभाषा)

1.5.3.1 सामाजिक विकास के विभिन्न आयाम

1.5.3.2 सामाजिक उद्विकास एवं सामाजिक विकास

1.5.3.3 सामाजिक विकास तथा सामाजिक प्रगति

1.6 सारांश

1.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत आप सामाजिक परिवर्तन तथा उसकी विभिन्न प्रक्रियाओं से परिचित हो सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप —

- सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को भली–भांति समझ सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न विशेषताओं तथा प्रतिमानों का वर्णन कर सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन की कुछ प्रमुख सहायक प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- सहायक प्रक्रियाओं के अन्तर्गत जैसे – उद्विकास, प्रगति एवं विकास को विस्तृत रूप में समझ सकेंगे एवं उसकी विवेचना कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई सामाजिक परिवर्तन एवं उसकी कुछ प्रमुख सहायक प्रक्रियाओं के अध्ययन से सम्बन्धित है इस इकाई में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का संक्षिप्त परिचय कराया गया है। सर्वप्रथम सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। ताकि आप सम्पूर्ण विवेचना को सरलता के साथ समझ सकें। यद्यपि कुछ विद्वानों ने सामाजिक ढांचे में होने वाले परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन कहा है तो कुछ ने सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों को। हमने विद्वानों के मतों पर ध्यान दिये बगैर सामाजिक परिवर्तन को सामान्य तौर पर संक्षिप्त रूप में समझाने का प्रयास किया है। इस कड़ी में सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न विशेषताओं तथा प्रतिमानों का उल्लेख किया गया है।

सामाजिक परिवर्तन एक तटस्थ शब्द है जो समाज में आने वाले बदलाव को विभिन्न कालों के सन्दर्भ में सूचित करता है। जब हम यह कहते हैं कि समाज में परिवर्तन हो रहा है तो इससे परिवर्तन कि दिशा, नियम, सिद्धान्त या निरन्तरता प्रकट नहीं होती। मैकाइवर एवं पेज, हरबर्ट स्पेन्सर, हाब हाउस एवं सोरोकिन आदि ने सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं ढंगों का उल्लेख किया है और विभिन्न समाजशास्त्रीय अवधारणाओं को जन्म दिया है। इन अवधारणाओं में उद्विकास, प्रगति व विकास जो कि प्रमुख प्रक्रियायें हैं का उल्लेख विभिन्न तथ्यों के साथ इकाई के भाग 1.5 में विस्तृत रूप से किया गया है।

इस ईकाई में हम आपको सामाजिक परिवर्तन एवं उसकी विभिन्न प्रक्रियाओं से अवगत करा रहे हैं। जिन्हें विभिन्न तर्कों एवं उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। आपके लिए

था स्थान अभ्यास प्रश्न भी दिये हैं। आपको अभ्यास कार्य मेहनत से करना चाहिये ताकि मुख्य परीक्षा होने तक आपकी अच्छी तैयारी हो सके।

1.2 सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा

परिवर्तन प्रकृति का एक शाश्वत एवं अटल नियम है मानव समाज भी उसी प्रकृति का अंग होने के कारण परिवर्तनशील है। समाज की इस परिवर्तनशील प्रकृति को स्वीकार करते हुए मैकाइवर लिखते हैं, "समाज परिवर्तन एवं गत्यात्मक है।" बहुत समय पूर्व ग्रीक विद्वान हेरेक्लिटिस ने भी कहा था "सभी वस्तुएं परिवर्तन के बहाव में हैं।" परिवर्तन क्यों और कैसे होता है, ये प्रश्न आज भी पूरी तरह हल नहीं हो पाये हैं। अंग्रेज कवि लार्ड टेनिसन का मत है कि "प्राचीन क्रम में नये को स्थान देने के लिए परिवर्तन होता है।" प्रो. ग्रीन लिखते हैं, सामाजिक परिवर्तन इसलिए होता है क्योंकि प्रत्येक समाज संतुलन के निरन्तर दौर से गुजर रहा है, कुछ व्यक्ति एक सम्पूर्ण संतुलन की इच्छा रख सकते हैं तथा कुछ इसके लिए भी प्रयास करते हैं।" (ए. डब्ल्यू. ग्रीन, सोशियोलॉजी, पृ० 615)

सामान्यत: सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों से है। मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, "समाजशास्त्री होने के नाते हमारी विशेष रुचि प्रत्यक्ष रूप से सामाजिक सम्बन्धों में है। केवल इन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों को हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।" (मैकाइवर एवं पेज, सोसाइटी, पृ० 411)

इस प्रकार मैकाइवर एवं पेज सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या शुद्ध दृष्टिकोण से करते हैं और सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन की संज्ञा देते हैं, क्योंकि समाज का ताना-बाना सामाजिक सम्बन्धों से ही तो बुना हुआ है।

किंग्सले डेविस ने भी सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या पूर्णत: समाजशास्त्रीय ढंग से की है। वे लिखते हैं "सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज के ढांचे और प्रकार्यों में घटित होते हैं।" (किंग्सले डेविस, ह्यूमन सोसायटी पृ० 622) जॉनसन के अनुसार "अपने मूल अर्थ में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सामाजिक ढांचे में परिवर्तन है।" (जॉनसन, समाजशास्त्र, पृ० 796)

जॉनसम ने सामाजिक परिवर्तन को और अधिक स्पष्ट करते हुए सामाजिक मूल्यों, संस्थाओ और पुरस्कारों, व्यक्तियों तथा उनकी अभिवृत्तियों एवं योग्यताओं में होने वाले परिवर्तन को भी सामाजिक परिवर्तन कहा गया है।

समाजशास्त्री जोन्स ने सामाजिक परिवर्तन को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखा है "सामाजिक परिवर्तन वह शब्द है जो सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक अन्त:क्रियाओं अथवा सामाजिक संगठन के किसी भाग में घटित होने वाले हेर-फेर या संशोधन के लिए प्रयुक्त किया जाता है।" (जोन्स, बेसिक सोशियोलाजिकल प्रिंसिपल्स, पृ० 26)

मैरिल और एल्ड्रिज का मत है कि "जब मानव व्यवहार बदलाव की प्रक्रिया में होता है तब हम उसी को दूसरे रूप में इस प्रकार कहते हैं कि सामाजिक परिवर्तन हो रहा है।" (मैरिल एवं एल्ड्रिज, कल्चर सोसायटी पृ० 512-513)

अत: स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन उन परिवर्तनों को कहते हैं जो मानवीय सम्बन्धों, व्यवहारों, संस्थाओं, प्रथाओं, परिस्थितियों, कार्य विधियों, मूल्यों, सामाजिक संरचनाओं एवं प्रकार्यों में होते हैं।

1.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

सामाजिक परिवर्तन यद्यपि एक सर्वव्यापी नियम है लेकिन स्थिर और गतिशील समाजों में इसकी विशेषतायें कुछ भिन्न-भिन्न रूपों में देखने को मिलती हैं स्थिर समाज में अनेक पीढ़ियों तक पद और कार्यों में अधिक परिवर्तन नहीं होता, जबकि गतिशील समाजों में व्यक्ति के पदों, मनोवृत्तियों व्यवसाय शिक्षा, सांस्कृतिक नियमों और व्यवहारों में सदैव परिवर्तन होता रहता है। इस जटिलता के मध्य प्रस्तुत विवेचन में हम सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति से सम्बन्धित कुछ विशेषताओं का उल्लेख करेंगे -

- सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति सामाजिक होती है। क्योंकि सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध किसी व्यक्ति या विशेष समूह, विशेष संस्था, जाति एवं प्रजाति तथा समिति में होने वाले परिवर्तन से नहीं है अपितु सम्पूर्ण समुदाय एवं समाज में होने वाले परिवर्तनों से है।

- सामाजिक परिवर्तन एक सार्वभौमिक घटना है, क्योंकि यह सभी समाजों एवं सभी कालों में रहता है परिवर्तन की सार्वभौमिकता को प्रकट करते हुए बीरस्टीड कहते हैं, "कोई भी दो समाज पूर्णत: समान नहीं हैं उनके इतिहास एवं संस्कृति में इतनी भिन्नता पायी जाती है कि किसी को भी दूसरे का प्रतिरूप नहीं कह सकते।" (बीरस्टीड, दि सोशल आर्डर, पृ० 497)

- सामाजिक परिवर्तन अवश्यंभावी एवं स्वाभाविक है, क्योंकि समय-समय पर मानव की इच्छायें आवश्यकतायें और परिस्थितियां बदलती रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप समाज

में भी परिवर्तन होना निश्चित हो जाता है। मानव बदली हुई परिस्थिति में अनुकूलन करने के लिए कभी-कभी तो परिवर्तन का इंतजार तक करता है।

- सामाजिक परिवर्तन की गति असमान तथा तुलनात्मक है। उदाहरणार्थ आदिम एवं पूर्वी देशों के समाजों की तुलना में आधुनिक एवं पश्चिमी समाजों में परिवर्तन तीव्र गति से होता है। यही नहीं बल्कि एक ही समाज के विभिन्न अंगों में भी परिवर्तन की गति में असमानता पायी जाती है। भारत में ग्रामीण समाजों की तुलना में नगरों में परिवर्तन शीघ्र होते हैं।

- सामाजिक परिवर्तन एक जटिल तथ्य है क्योंकि सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध गुणात्मक परिवर्तनों से है जिनकी माप-तौल सम्भव नहीं है जैसे हम किसी भौतिक वस्तु अथवा भौतिक संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को मीटर, गज या किलोग्राम की भाषा में नहीं माप सकते। अत: सरलता से ऐसे परिवर्तन का रूप भी समझ में नहीं आता।

- सामाजिक परिवर्तन की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, क्योंकि इसके बारे में निश्चित रूप से पूर्वानुमान लगाना कठिन होता है। यह कहना कठिन है कि औद्योगीकरण और नगरीकरण से भारत में जाति प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली एवं विवाह में कौन-कौन से परिवर्तन आयेंगे। यह बताना भी कठिन है कि आगे चलकर लोगों के विचारों, विश्वासों मूल्यों आदर्शों आदि में किस प्रकार के परिवर्तन आयेंगे। अत: इसके बारे में निश्चितता से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

1.4 सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमान

सामाजिक परिवर्तन निरन्तर, पूर्व कथन करने में इतना कठिन और अनेकमुखी है कि यदि हम उसे ठीक से समझना चाहते हैं तो हमें उसकी प्रतिमानों का पता लगाना होगा। विभिन्न क्षेत्रों में एक विशिष्ट ढंग का परिवर्तन देखने को मिलता है। मैकाइवर तथा पेज ने इस दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन के तीन प्रमुख प्रतिमानों का उल्लेख किया है—

1.4.1 प्रथम प्रतिमान (रेखीय परिवर्तन) — परिवर्तन का एक प्रतिमान यह है कि कई बार परिवर्तन यकायक हमारे सामने प्रकट होते हैं। इस श्रेणी में हम आविष्कारों से उत्पन्न परिवर्तनों को रख सकते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन एक बार उत्पन्न होते हैं फिर वे आगे और भी परिवर्तन करते रहते हैं क्योंकि इन आविष्कारों में समय-समय पर कई लोगों द्वारा सुधार किये जाते हैं। रेडियो, टेलीफोन, वायुयान और मोटर आदि के आविष्कारों के कारण उत्पन्न

परिवर्तन केवल आकस्मिक नहीं, वरन् गुणात्मक रूप से अनेक परिवर्तनों को जन्म देने वाले भी हैं। ये परिवर्तन तब तक होते रहते हैं जब तक कि किसी अच्छे एवं नवीन उपकरण का आविष्कार नहीं हो जाता। इस प्रकार के परिवर्तन को रेखीय परिवर्तन कहते हैं, क्योंकि ऐसे परिवर्तन की दिशा एक सीधी रेखा के रूप में होती है। प्रौद्योगिकी में परिवर्तन इसी प्रकार के परिवर्तन का स्पष्ट उदाहरण है। यही बात ज्ञान एवं विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों के लिए भी सही है।

1.4.2 द्वितीय प्रतिमान (उतार-चढ़ाव वाला परिवर्तन)—परिवर्तन का दूसरा प्रतिमान वह है जिसमें कुछ समय तक तो परिवर्तन ऊपर की ओर अथवा प्रगति की ओर होता है किन्तु थोड़े समय बाद वह पुनः ह्रास की ओर अथवा नीचे की ओर हो सकता है। अन्य शब्दों में परिवर्तन का दूसरा प्रतिमान वह है जिसमें परिवर्तन पहले ऊपर की ओर होता है और फिर नीचे की ओर। इसे हम उतार/चढ़ाव वाला अथवा तरंगीय परिवर्तन कह सकते हैं। उदाहरणार्थ, जनसंख्या सम्बन्धी परिवर्तन एवं आर्थिक क्रियाओं में होने वाले परिवर्तन। अकसर हम देखते हैं कि राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अन्ततः और अवनत होते रहते है। व्यापारिक क्रियायें उन्नत विकसित और अवनत होती रहती हैं। इस प्रकार प्रथम प्रकार के परिवर्तन में जहां इस बात की निश्चितता नहीं है परिवर्तन कि दिशा एक होगी, वहीं दूसरे प्रकार के परिवर्तन में इस प्रकार का निश्चितता नहीं होती। सोरोकिन की मान्यता है कि सामाजिक परिवर्तन संस्कृति में उतार चढ़ाव आने के कारण होता है।

1.4.3 तृतीय प्रतिमान (चक्रीय परिवर्तन)—दूसरे प्रकार के परिवर्तन के कुछ समान ही तृतीय प्रकार का परिवर्तन है। इस प्रकार के परिवर्तन को हम चक्रीय परिवर्तन कह सकते हैं। कई विद्वानों की यह मान्यता है कि परिवर्तन का एक चक्र चलता है। इसे स्पष्ट करने के लिए वे प्रकृति से उदाहरण देते हैं। ऋतु चक्र में हम देखते हैं कि सर्दी, गर्मी एवं वर्षा का एक चक्रीय क्रम पाया जाता है। कई विद्वानों की मान्यता है कि समाज एवं सभ्यतायें भी इसी प्रतिमान का अनुगमन करती हैं। मानव क्रियाओं, व्यवहारों, राजनीतिक आन्दोलनों एवं जनसंख्या के सुविस्तृत परिवर्तन में भी यही प्रतिमान देखने को मिलता है फैशन, सांस्कृतिक आन्दोलन, अलंकरण सज्जा सामाजिक मूल्य, लोकाचार, नियन्त्रण एवं स्वतंत्रता आदि क्षेत्रों में भी परिवर्तन का यही प्रतिमान पाया जाता है। हम फैशन प्रथा व लोकाचार को अपनाते हैं कभी उसे छोड़ देते हैं तो कभी फिर अपना लेते हैं। कभी कठोर नियंत्रण पर जोर देते हैं, फिर स्वतंत्रता पर तो फिर नियन्त्रण पर। इस प्रकार समाज में परिवर्तन एक चक्र की तरह घटित होते रहते हैं किन्तु आज कई विद्वान चक्रीय परिवर्तन की बात को स्वीकार नहीं करते, क्योंकि चक्रीय का तात्पर्य यह है कि हम जहां से प्रारम्भ होते हैं घूम फिर कर फिर वहीं

ट आते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि पुनः हम उसी स्थिति में कभी नहीं लौटते उसमें शोधन अवश्य हो जाता है। इसलिए हम प्रतिमान को चक्रीय न कहकर तरंगीय कहना ही धिक सही मालूम होता है।

.5 सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख प्रक्रियाएं

ामाजिक परिवर्तन एक तटस्थ शब्द है जो समाज में आने वाले बदलाव को विभिन्न कालों के न्दर्भ में सूचित करता है। जब हम यह कहते हैं कि समाज में परिवर्तन हो रहा है तो इससे रिवर्तन की दिशा, नियम, सिद्धान्त या निरन्तरता प्रकट नहीं होती। मैकाइवर एवं पेज, हरबर्ट मेन्सर, हॉब हाउस एवं सोरोकिन आदि ने सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न प्रक्रियाओं एवं गों का उल्लेख किया है और विभिन्न समाजशास्त्रीय अवधारणाओं को जन्म दिया है। इन ावधारणाओं में उद्विकास, प्रगति तथा विकास को प्रमुख प्रक्रिया मानते हुए प्रस्तुत इकाई में र्णित किया गया है। जो निम्न प्रकार है—

.5.1 **उद्विकास (अर्थ एवं परिभाषा)**—परिवर्तन से सम्बन्धित अनेक तत्वों में जब ारन्तरता ही नहीं, बल्कि परिवर्तन की एक निश्चित दिशा भी होती है तब ऐसी स्थिति को हम द्विकास कहते हैं। उद्विकास की अवधारणा का विस्तृत विवेचन सर्वप्रथम चार्ल्स डार्विन ने रीर में होने वाले जैविक परिवर्तनों को समझने के लिए किया था। Evolution अर्थात् द्विकास शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द Evolvere से मानी जाती है। 'e' का अर्थ है बाहर की ओर' (Our) और Volvere का अभिप्राय 'फैलने' से है। इस प्रकार शाब्दिक प से Evolvere अथवा Evolution का अर्थ किसी वस्तु के फैलने अथवा बढ़ने की वृत्ति से है। लेकिन प्रत्येक वस्तु का बढ़ना या फैलना उद्विकास नहीं है। जैसे बढ़ते हुए मिट्टी के ढेर को हम उद्विकास नहीं कहेंगे। उद्विकास का अर्थ इस प्रकार के फैलाव से है जिससे एक सरल और सादी वस्तु किसी जटिल अवस्था में आ जाये। इस आशय को स्पष्ट करते हुए हरबर्ट स्पेन्सर का कथन है कि 'उद्विकास कुछ तत्वों का एकीकरण तथा उससे सम्बन्धित वह गति है जिसके दौरान विभिन्न तत्व एक अनिश्चित तथा असम्बद्ध समानता से निश्चित और सम्बद्ध भिन्नता में बदल जाते हैं।'' (राबर्ट बीरस्टीड, दि सोशल आर्डर, पृ० 69-70)

उद्विकास का अर्थ इस प्रकार का परिवर्तन है जिसके विभिन्न स्तर किसी वस्तु के बदलते हुए विभिन्न रूपों को स्पष्ट करते हैं और प्रत्येक आगामी परिवर्तन के साथ उस वस्तु का रूप अधिक जटिल होता जाता है।

मैकाइवर और पेज का कथन है कि "जब परिवर्तन में निरन्तरता ही नहीं होती बल्कि परिवर्तन की एक निश्चित दिशा भी होती है तब ऐसे परिवर्तन से हमारा तात्पर्य उद्विकास से होता है।" (मैकाइवर एवं पेज सोसायटी, पृ० 522)

इसी प्रकार ऑग्बर्न और निमकॉफ ने भी उद्विकास को एक निश्चित दिशा में होने वाला परिवर्तन कहा है।

निष्कर्षत : यह कहा जा सकता है कि उद्विकास एक निश्चित दिशा में होने वाला वह परिवर्तन है जो अनेक आंतरिक शक्तियों के फलस्वरूप उत्पन्न होता है और सामान्यत: इसकी प्रवृत्ति सरलता से जटिलता की ओर बढ़ने की होती है।

1.5.1.1 डार्विन का उद्विकास सिद्धान्त एवं सामाजिक उद्विकास —डार्विन ने उद्विकास सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि आरम्भ में प्रत्येक जीवित वस्तु का रूप अत्यधिक सरल होता है। यह स्थिति अनिश्चित तथा असम्बद्ध समानता की स्थिति होती है अर्थात् ऊपर से उस वस्तु के विभिन्न रूप एक दूसरे के इतने समान होते हैं कि उनमें से कोई भी निश्चित सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता लेकिन जैसे-जैसे उस वस्तु का विकास होता है, उसके विभिन्न अंग एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न होते जाते हैं और उनका रूप भी स्पष्य होता जाता है। उदाहरण के लिए हम एक बीज को ले सकते हैं जिसका रूप आरम्भ में बिल्कुल सरल होने के साथ ही इसका आगामी रूप (एक वृक्ष के रूप में) बिल्कुल अनिश्चित होता है लेकिन इस बीज के एक पेड़ के रूप में परिवर्तित होने के बाद इससे सम्बन्धित सभी अंग एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् होकर भिन्नता की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं। और इस प्रकार उस बीज के विभिन्न भाग एक दूसरे से पूर्णतया सम्बद्ध हो जाते हैं। यह दूसरी स्थिति निश्चित और सम्बद्ध भिन्नता की स्थिति है। इसमें प्रत्येक अंग की स्थिति सुनिश्चित हो जाती है, और वे पृथक्-पृथक् कार्यों द्वारा उस वस्तु के पोषण में सहायक होते हैं। जैसे— जड़ें भोजन प्राप्त करती हैं, पत्तियां और टहनियां घूप और वायु ग्रहण करती हैं और पेड़ की छाल ऋतुओं के प्रभाव से पेड़ की रक्षा करती हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ये विभिन्न अंग एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं, बल्कि वे केवल कार्य के क्षेत्र में एक दूसरे से पृथक् होते हैं जबकि उस जीव की रचना में सभी एक दूसरे पर निर्भर और अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। किसी भी एक अंग पर पड़ने वाला प्रभाव दूसरे अंगों को भी प्रभावित करता है इसलिए उनमें पृथक्ता का प्रश्न ही नहीं उठता है।

उद्विकासीय प्रक्रिया एक क्रमिक प्रक्रिया है जो अनेक स्तरों के द्वारा परिवर्तन की स्थिति

पन्न करती है। उदाहरण के लिए मनुष्य के शरीर में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है, लेकिन
: इतना क्रमिक और इतनी धीमी गति से होने वाला है कि निश्चित नियम पर आधारित होने
बाद भी हम इसको देख नहीं पाते। यह रूप केवल उस समय पहले से भिन्न दिखाई देता है
ब वह दूसरे स्तर में पहुँच जाता है। जैसे मनुष्य के जीवन में शैशव, बाल्याकाल, युवावस्था,
ढ़ता तथा वृद्धावस्था विभिन्न स्तर हैं जिनका रूप उद्विकासीय प्रक्रिया द्वारा परिवर्तित होता
।

द्विकासीय प्रक्रिया आंतरिक विशेषताओं के प्रकटन से सम्बन्धित है अर्थात् प्राणी में यह
लता से जटिलता की ओर होने वाला परिवर्तन किसी बाह्य कारक के प्रभाव से नहीं होता
लेक शरीर के अन्दर छिपी हुई आंतरिक शक्तियों के प्रभाव से ही कार्य करता है। यही संक्षेप
डार्विन का उद्विकासीय सिद्धान्त है।

र्विन के उद्विकास के सिद्धान्त के आधार पर स्पेन्सर ने सामाजिक उद्विकास की धारणा
। प्रतिपादन किया। स्पेन्सर का मत है कि उद्विकास की प्रक्रिया केवल शारीरिक परिवर्तन
क्षेत्र में ही देखने को नहीं मिलती बल्कि सामाजिक जीवन, सामाजिक संस्थाओं और
स्कृतिक प्रतिमानों में भी उद्विकासीय परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।
दाहणार्थ आरम्भ में सामाजिक जीवन बहुत सादा और यह अनिश्चित था। यह अनिश्य और
सम्बद्धता की स्थिति थी। इसके पश्चात् व्यक्ति के विचारों और अनुभवों में परिवर्तन होने से
माज के विभिन्न पक्ष एक दूसरे से पृथक् होकर स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगे। इस स्थिति
ो निश्चिय सम्बद्धता की स्थिति कहा जा सकता है। समाज में जब विभिन्न अंग कार्यात्मक
प से एक दूसरे से पृथक् हो जाते हैं तभी उनमें श्रम विभाजन और विशेषीकरण की प्रक्रिया
ा आरम्भ होता है। इस प्रकार एक सरल सामाजिक जीवन धीरे-धीरे जटिल रूप ग्रहण करता
ाता है। इसका उदाहरण शिकार करने से लेकर सभ्यता के वर्तमान स्तर तक के इतिहास को
खने से मिलता है। स्पेन्सर का कथन है कि राष्ट्रों का विकास समान विशेषतायें प्रदर्शित करने
ाली जनजातियों और उनके असमान कार्यों के पुनर्मिलन में ही होता है। इसी प्रकार आरम्भ
सभी सस्थायें एक गूसरे से मिली रहती हैं. लेकिन धीरे-धीरे उनमें स्पष्ट भेद होना आरम्भ
ो जाता है उसका और निर्माण करने वाले तत्वों में भी एक स्पष्ट भिन्नता दिखाई देने लगती
। इस प्रकार उद्विकासीय प्रक्रिया के आधार पर संस्थाओं के आकार में वृद्धि होती है,
नमें अनेक रूपता बढ़ती है तथा कार्यात्मक रूप से वे कहीं अधिक निश्चित स्वरूप की हो
ाती है। इस प्रकार स्पेन्सर का मत है कि "जैसे-जैसे समय व्यतीत हो रहा है, समाज
गतिशीलता, कार्यकुशलता, स्वतन्त्रता और पारस्परिक सहयोग की दिशा में आगे बढ़ता जा

रहा है'' (हरबर्ट स्पेन्सर प्रिंसपल्स ऑफ सोशियोलॉजी, वाल. 1)

केवल सामाजिक जीवन में ही नहीं बल्कि आर्थिक जीवन में भी उद्‌विकास की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस प्रकार सामाजिक जीवन में क्रमिक और एक निश्चित दिशा में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक उद्‌विकास कहते हैं।

1.5.1.2 सामाजिक उद्‌विकास के विभिन्न स्तर—समाजशास्त्र के अनेक विद्वानों ने सामाजिक जीवन में होने वाले परिवर्तनों को भी उद्‌विकासीय क्रम के आधार पर समझाया है। हट्‌टन, टायलर और मार्गन ने अनेक ऐसी अवस्थाओं का उल्लेख किया है जिनसे गुजरने के बाद ही समाज वर्तमान अवस्था (स्तर) तक पहुँच सका। जिनका उल्लेख निम्नलिखित है। (मार्गन द्वारा उल्लिखित सामाजिक उद्‌विकास के विभिन्न स्तर उद्‌धृत एनसिएंट सोसायटी।)

- **जंगली स्तर :** मानव के सामाजिक जीवन की यह प्रथम अवस्था थी। इस समय मानव का जीवन संघर्षपूर्ण एवं कष्टमय था। मानव इतिहास में यह काल सबसे लम्बा था। सामाजिक परिवर्तन एवं दशाओं की दृष्टि से इस काल को मार्गन ने निम्न तीन भागों में बांच बांटा है—

(अ) **जंगली अवस्था का निम्न स्तर**—इस अवस्था में मानव निवास एवं भोजन की खोज में घुमक्कड़ जीवन व्यतीत करता था। वह कन्दमूल, फल तथा कच्चा माल खाता था और पत्तों व छालों से तन ढकता था। इस समय उसे यौन सम्बन्ध स्थापित करने की पूर्ण स्वच्छन्दता थी। मावन पेड़ों पर व गुफाओं में रात्रि व्यतीत करता था। मानव का यह जीवन किसी भी दृष्टि से पशुओं से श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता।

(ब) **जंगली अवस्था का मध्य स्तर**—इस अवस्था का आरम्भ आग जलाने व मछली मारने की कला के साथ प्रारम्भ हुआ। अब मानव मांस को भूनकर खाने लगा था। इसी समय मनुष्य ने सामूहिक जीवन प्रारम्भ किया और छोटे-छोटे झुण्ड बनाकर रहने लगा।

(स) **जंगली अवस्था का उच्च स्तर**—इस अवस्था का प्रारम्भ उस समय हुआ जब मानव ने तीर व धनुष का आविष्कार किया। इस अवस्था में मानव ने पारिवारिक जीवन की नींव रखी, परन्तु परिवार के सदस्यों में परस्पर यौन सम्बन्ध स्थापित करने के कोई निश्चित नियम नहीं थे। इस युग में मानव समूह परस्पर सामूहिक रूप से संघर्ष भी करने लगे। मानव ने पत्थर के हथियार एवं औजारों का भी इस

अवस्था में निर्माण कर लिया था।

बर्बरता का स्तर—इस अवस्था में मानव का सामाजिक जीवन पहले की अपेक्षा अधिक उन्नत था। इसमें भी निम्नांकित तीन उस्तर हैं—

(अ) **बर्बरता का निम्न स्तर**—इस अवस्था में मानव ने बर्तनों का निर्माण करना जान लिया था। अब मानव का जीवन पहले की अपेक्षा अधिक स्थिर था। यद्यपि झुण्ड अब भी घुमन्तू जीवन ही व्यतीत करते थे। एस अवस्था में सम्पत्ति की अवधारणा का उदय हुआ। एक समूह हथियर, स्त्रियां तथा बर्तन प्राप्त करने के लिए दूसरे समूह पर आक्रमण करता था। परिवार का स्वरूप कुछ स्पष्ट हुआ, किन्तु यौन सम्बन्धों की स्वतंत्रता के कारण पितृत्व का निर्धारण अब भी कठिन था।

(ब) **बर्बरता का मध्य स्तर**—इस अवस्था में मानव ने पशु पालन एवं कृषि कार्य प्रारम्भ किया। पशुओं को लेकर चारे की खोज में मानव इधर-उधर भटकता फिरता था। कुछ लोगों ने बीज बोकर पेड़ उगाना भी सीख लिया था। वे अब स्थिर निवास बनाकर कृषि करने लगे थे। इस समय व्यक्तिगत सम्पत्ति की धारणा पनपी और सामाजिक स्थिति का निर्धारण सम्पत्ति के आधार पर भी होने लगा था। इसी समय वस्तु विनिमय भी होने लगा। यौन सम्बन्धों में निश्चितता आने के कारण परिवार का स्वरूप भी स्पष्ट होने लगा था। परिवार में स्त्रियों की स्थिति महत्वपूर्ण हो गयी थी।

(स) **बर्बर अवस्था का उच्च स्तर** —इस अवस्था में मानव ने लोहे को गलाकर उससे औजार बनाना प्रारम्भ कर दिया था। उसने लोहे के अनेक नोकदार एवं तीखे हथियार तथा औजारों का निर्माण किया। इस अवस्था में यौन भेद पर आधारित स्त्री पुरुषों के बीच श्रम विभाजन पनपा। स्त्रियां घरेलू कार्य एवं पुरुष बाह्य कार्य करते थे। इस समय स्त्रियों को सम्पत्ति मान लिया गया था। छोटे-छोटे गणराज्यों की स्थापना भी इसी युग में हुई। धातुओं के प्रयोग के कारण ही इस युग को 'धातु युग' के नाम से भी पुकारा जाता है।

- **सभ्यता की अवस्था** — मानव के सामाजिक जीवन का यह अंतिम चरण है। इसमें भी तीन उप-स्तर हैं—

(अ) **सभ्यता का निम्न स्तर** — इस अवस्था का प्रारम्भ लेखन कार्य से हुआ। भाषा के प्रयोग एवं पढ़ने लिखने के कारण संस्कृति का संचारण सरल हो गया। इस अवस्था में यौन सम्बन्धों का नियमन होने के कारण पारिवारिक जीवन स्थिर व स्पष्ट हो गया

था। इसी समय नगर बसाये गये। नगरीय सभ्यता का उदय व्यापार एवं वाणिज्य का विस्तार, कला व शिल्पकला का विस्तार इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएं हैं।

(ब) **सभ्यता का मध्य स्तर** — इस युग में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संगठनों में व्यवस्था आयी। इसी समय श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण पनपा, राज्य के कार्यक्षेत्र का विकास हुआ, सरकार एवं कानून का विस्तार हुआ तथा मानव जीवन में सुरक्षा बढ़ी।

(स) **सभ्यता का उच्च स्तर** — मार्गन इस स्तर का प्रारम्भ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से मानते हैं जब औद्योगीकरण के कारण आधुनिक जटिल एवं नगरीय सभ्यता का उदय हुआ। इस युग में मशीनों की सहायता से बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। सम्पत्ति का संचय बढ़ा, श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण का विस्तार हुआ। व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना व एकाधिकार ने पूँजीवादी व्यवस्था को जन्म दिया। वर्ग संघर्ष ने जोर पकड़ा, साम्यवादी विचारों ने जन्म लिया और सम्पत्ति के समान वितरण पर बल दिया गया। प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को व्यापक समर्थन मिला। राज्य को एक कल्याणकारी संस्था के रूप में स्वीकार किया गया। राज्य के अधिकारों में वृद्धि हुई, नागरिकों की सुख-सुविधा की व्यवस्था करना राज्य का कर्तव्य माना गया। इस युग में अनेक भौतिक व अभौतिक आविष्कार हुए तथा कला, धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान सभी में अभूतपूर्व प्रगति हुई। मानव ने अन्तरिक्ष में प्रवेश किया और आज भी वह प्रगति के पथ पर अग्रसर है।

1.5.1.3 सामाजिक उद्‌विकास एवं सामाजिक परिवर्तन — सामाजिक उद्‌विकास एवं सामाजिक परिवर्तन को प्रस्तुत इकाई के भाग 1.2 तथा 1.5.1 में परिभाषित किया जा चुका है जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक उद्‌विकास सामाजिक परिवर्तन का एक भाग है और दोनों का ही सम्बन्ध समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों से है। सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक उद्‌विकास के भेद को इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं:—

- सामाजिक परिवर्तन की कोई दिशा नहीं होती, यह ऊपर-नीचे, आगे-पीछे किसी भी दिशा में हो सकता है जबकि सामाजिक उद्‌विकास की एक दिशा निर्धारित है, यह सदैव सरलता से जटिलता तथा समानता से भिन्नता की ओर होता है।
- सामाजिक परिवर्तन समाज में आंतरिक एवं बाह्य दोनों ही शक्तियों के कारण हो सकता है जबकि सामाजिक उद्‌विकास समाज की आन्तरिक शक्तियों के कारण होता है।

सामाजिक परिवर्तन सामाजिक ढांचे व कार्य अथवा दोनों में से किसी पक्ष में भी हो सकता है जबकि सामाजिक उद्विकास में समाज के ढांचे एवं कार्य दोनों में परिवर्तन आता है।

सामाजिक परिवर्तन एक व्यापक प्रक्रिया है और उद्विकास उसका एक ढंग या स्वरूप है। इस अर्थ में प्रत्येक उद्विकास परिवर्तन है, किन्तु प्रत्येक परिवर्तन उद्विकास नहीं है।

सामाजिक उद्विकास के लिए कुछ स्तर एवं क्रम निर्धारित किये गये हैं जबकि सामाजिक परिवर्तन की कोई दिशा, क्रम व स्तर निश्चित नहीं है।

सामाजिक उद्विकास की प्रक्रिया धीमी एवं निरन्तर होती है, जबकि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया धीमी, तेज, निरन्तर एवं रुक-रुक कर किसी भी रूप में हो सकती है।

सामाजिक उद्विकास में गुणात्मक परिवर्तन होते हैं जबकि सामाजिक परिवर्तन में गुणात्मक एवं संख्यात्मक दोनों ही प्रकार के परिवर्तन सम्मिलित हैं।

सामाजिक उद्विकास के चरणों की पुनरावृत्ति नहीं होती जबकि सामाजिक परिवर्तन में इस प्रकार का कोई नियम नहीं है, सामाजिक परिवर्तन नयी दिशा में जाकर पुनः उसी स्थिति की ओर भी लौट सकता है।

5.2 प्रगति (अर्थ एवं परिभाषा)—प्रगति सामाजिक परिवर्तन का एक विशेष ढंग या क्रिया है, जिसमें वांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए सचेत प्रयत्न किये जाते हैं। प्रगति के रे में ऑगस्ट कॉस्ट से लेकर आधुनिक समाजशास्त्रियों ने अपने विभिन्न मत व्यक्त किये हैं, न्तु इसकी कोई एक सर्वमान्य वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकती है। विभिन्न युगों व माजों में प्रगति को भिन्न रूपों में परिभाषित किया गया है। प्राचीन समय में आध्यात्मिक क्ष्यों को प्राप्त करने को प्रगति माना जाता था किन्तु वर्तमान में भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति एवं ख सुविधाओं में वृद्धि को ही प्रगति माना गया है। प्रगति का सामाजिक मूल्यों से घनिष्ठ म्बन्ध है और हर समाज के अपने-अपने मूल्य होते हैं। यही कारण है कि प्रगति की वधारणा प्रत्येक समाज में अलग-अलग पायी जाती है। अंग्रेजी के शब्द 'Progress' की त्पत्ति लैटिन शब्द 'Progreditor', से मानी जाती है जिसका अर्थ To step for-ard' अथवा आगे बढ़ना है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रगति का अर्थ समाज में इस प्रकार

परिवर्तन होना है जिससे हम आगे की ओर बढ़ सकें। राजतन्त्र और समाजवादी व्यवस्था के साथ प्रगति का अर्थ जनता से अधिक से अधिक करों की वसूली और बेगार लेने में सफलता प्राप्त करना था। अट्ठारहवीं शताब्दी में राजकीय शोषण से मुक्ति पा लेना ही प्रगति थी, जबकि 19वीं शताब्दी से सामाजिक संगठन तथा प्राकृतिक साधनों के अधिकतम उपयोग को प्रगति का आधार स्वीकार किया गया। आज इसका श्रेय इतना बढ़ गया है कि प्रगति की परिभाषा को किसी सीमा में बांधना लगभग असम्भव सा हो गया है। इसका कारण यह है कि प्रगति एक तुलनात्मक सम्बोध (Relative concept) है। जो स्थिति भारत के लिए प्रगति है वहीं कुछ पश्चिमी देशों के लिए पिछड़ापन हो सकती है और जिसको वे प्रगति कहते हैं, उसे हम अनैतिकता और नृशंसता के नाम से सम्बोधित करते हैं। इस प्रकार प्रगति शब्द इतना विवादास्पद है कि इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती। मैकाइवर ने इसे ''वातावरण के अनुसार गिरगिट की तरह रंग बदलने वाला लक्ष्य'' कहा है।

1.5.2.1 सामाजिक प्रगति एवं उसकी विशेषताएं—प्रगति में भी परिवर्तन निहित हैं किन्तु यह परिवर्तन नियोजित एवं सामाजिक मूल्यों के अनुरूप हैं। लक्ष्य, स्थान व समाजों के अनुसार प्रगति की धारणा में परिवर्तन पाया जाता है। एक समय में जिसे प्रगति कहा जाता है, दूसरे समय में उसी स्थिति को अवनति कहा जा सकता है।

समाजशास्त्री हॉर्नेल हार्ट के अनुसार ''सामाजिक प्रगति सामाजिक ढांचे में वे परिवर्तन हैं जो कि मानवीय कार्यों को मुक्त करें, प्रेरणा व सुविधा प्रदान करें तथा उसे संगठित करें।''

हॉब हाउस के अनुसार ''प्रगति का तात्पर्य सामाजिक जीवन में ऐसे गुणों की वृद्धि होना है जिन्हें वे अपने में आत्मसात कर सकें तथा उनके सामाजिक मूल्यों को विवेकपूर्ण बना सकें।'' (सोशल इवोल्यूशन एवं पालिटिकल थ्योरी पृ० 8)

गिन्सबर्ग के अनुसार प्रगति का अत: उस दिशा में होने वाला विकास है जो सामाजिक मूल्यों का विवेकयुक्त हल प्रस्तुत करता हो। (दि आइडियाज ऑफ प्रोग्रेसेस, पेज-42)

अत: स्पष्ट होता है कि प्रगति समाज द्वारा स्वीकृत मूल्यों की ओर परिवर्तन है जिससे मानव सुख एवं कल्याण में वृद्धि होती है। सामाजिक प्रगति की विशेषताएं निम्न प्रकार हैं—

- वांछित दिशा में होने वाला परिवर्तन प्रगति की श्रेणी में आता है न कि किसी भी दिशा में होने वाला परिवर्तन।
- प्रगति का सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष के मूल्य या लाभ से न होकर सामूहिक लाभ एवं मूल्यों से है।

- प्रगति कभी स्वता: नहीं होती वरन् उसके लिए सचेत एवं नियोजित प्रयत्न करने पड़ते हैं।
- प्रगति की चर्चा केवल मानव समाज में ही की जा सकती है, क्योंकि मूल्यों की अवधारणा केवल उन्हीं में पायी जाती है, पशुओं में नहीं।
- प्रगति में लाभ अधिक व हानि कम होती है।
- प्रगति की धारणा उन्नतशील है।
- सामाजिक मूल्यों द्वारा उचित ठहराये गये लक्ष्य ही सामाजिक प्रगति के अन्तर्गत आते हैं।

1.5.2.2 सामाजिक प्रगति एवं सामाजिक परिवर्तन— सामाजिक प्रगति भी एक विशिष्ट सामाजिक परिवर्तन है। सामाजिक परिवर्तन की अनेक प्रक्रियायें एवं ढंग हैं, उनमें सामाजिक उद्विकास प्रगति एवं विकास आदि प्रमुख हैं। अत: प्रश्न उठता है कि क्या प्रत्येक परिवर्तन प्रगति है। ..... नहीं। क्यों? ..... क्योंकि परिवर्तन एक तटस्थ प्रक्रिया है यह अच्छाई और बुराई किसी भी दिशा में हो सकता है। किन्तु प्रगति वह तभी है जब समाज द्वारा निर्धारित मूल्यों की ओर होता है। सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक प्रगति में अन्तर को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा और अधिक समझा जा सकता है।

- सामाजिक प्रगति में उद्देश्य निहित होता है, उसी की ओर बढ़ना प्रगति कहलाता है जबकि सामाजिक परिवर्तन का कोई लक्ष्य नहीं होता।
- सामाजिक प्रगति की दिशा निश्चित होती है, जबकि सामाजिक परिवर्तन की कोई दिशा तय नहीं है, यह किसी भी दिशा में हो सकता है।
- सामाजिक प्रगति का सम्बन्ध सामाजिक मूल्यों से है। यह नैतिक अवधारणा है जबकि सामाजिक परिवर्तन नैतिक दृष्टि से एक तटस्थ प्रक्रिया है, जिसका सामाजिक मूल्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है।
- सामाजिक प्रगति में समाज को लाभ होता है जबकि सामाजिक परिवर्तन से लाभ एवं हानि दोनों ही हो सकते हैं।
- प्रगति का सम्बन्ध केवल मानवीय समाज से है जबकि परिवर्तन का सम्बन्ध अन्य समाजों से भी है।

- सामाजिक प्रगति स्वचालित नहीं होती, इसके लिए प्रयास करने होते हैं जबकि सामाजिक परिवर्तन स्वचालित एवं नियोजित दोनों ही हो सकते हैं।

इस प्रकार सामाजिक प्रगति सामाजिक परिवर्तन का एक अंग है यह समाज द्वारा निश्चित, इच्छित एवं मान्यता प्राप्त दिशा में परिवर्तन है।

1.5.3 विकास एवं सामाजिक विकास (अर्थ एवं परिभाषा)— जब परिवर्तन धीरे-धीरे सरल से जटिल की ओर होता है तो उसे उद्विकास कहते हैं और अच्छाई के लिए परिवर्तन को प्रगति कहा जाता है। इसके विपरीत "विकास" किसी अपेक्षित दिशा में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं। 'विकास' शब्द परिवर्तन की उस गति को दर्शाता है जिसके अन्तर्गत एक अवस्था दूसरी अवस्था का स्थान लेती हुई अपेक्षित दिशा में आगे बढ़ती जाती है। इसमें एक के बाद दूसरी नई व्यवस्था या अवस्थायें सामने आती जाती हैं। इस प्रकार अपेक्षित दिशा में नियोजित परिवर्तन को ही विकास कहा जाता है। यह बात सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में भी लागू होती है। सामाजिक जीवन स्थिर या जड़ नहीं है। इसमें अपनी एक गति होती है और इसी गति के कारण वह समय के साथ-साथ आगे बढ़ता जाता है और सामाजिक जीवन में एक के बाद दूसरी नई अवस्था या अवस्थायें प्रकट होती रहती हैं।

परिवर्तन मूल्य निरपेक्ष अवधारणा है जबकि विकास मूल्यपरक अवधारणा है और वह इस अर्थ में कि विकास में हम एक निश्चित प्रकार के परिवर्तन की अपेक्षा या आकांक्षा करते हैं और उसी आकांक्षा के अनुरूप परिवर्तन की दिशा को नियोजित करते हैं।

हाब हाउस लिखते हैं कि "विकास से मेरा तात्पर्य किसी भी प्रकार की प्रगति से है। जिनसे मानव सम्बन्धित है अथवा तार्किक ढंग से वे उसे सम्बद्ध करते हैं" (सोशल डेवलपमेन्ट अध्याय-4)

एक महत्वपूर्ण नवीन गोष्ठी "दि चैलेंज ऑफ डेवलपमेन्ट" में विकास शब्द का प्रयोग कम आय वाले देशों में हो रहे औद्योगीकरण और उसकी तुलना पश्चिमी देशों में हो रहे औद्योगीकरण से करने के सन्दर्भ में किया है।

प्राय: देखने में आता है कि आधुनिक समय में विकास शब्द का प्रयोग अधिकांशत: आर्थिक अर्थों में किया गया है। प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण में वृद्धि, बाजारों का विस्तार, उत्पादन एवं उद्योगों में वृद्धि, पूंजी निर्माण में वृद्धि, प्रकृतिक स्रोतों का अधिकाधिक दोहन, मानवीय ज्ञान द्वारा प्रकृति पर अधिकाधिक नियंत्रण आर्थिक विकास को

गित करते हैं, किन्तु विकास शब्द के प्रयोग को आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्र में होने वाले ुछ विशिष्ट परिवर्तनों तक ही सीमित कर देना उचित नहीं है। यह धर्म, प्रथाओं, परिवार, ाजनीति, संस्कृति आदि अनेक क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जा सकता है। सामाजिक विकास में ामाजिक सम्बन्धों का विस्तार होता है, प्राचीन सामाजिक संरचनाओं, मूल्यों, मनोवृत्तियों एवं वेचारों में परिवर्तन एवं वृद्धि होती है। इस प्रकार सामाजिक विकास में व्यक्ति की स्वतंत्रता ारस्परिक सहयोग एवं नैतिकता की भावना तथा समुदाय की आय एवं सम्पत्ति में वृद्धि होती ।। इस प्रकार आर्थिक विकास सामाजिक विकास का ही एक अंग है, जिसे विभिन्न आधारों र मापना सरल है।

नत: स्पष्ट होता है कि "सामाजिक विकास समाज का विकासोन्मुख परिवर्तन है जिसमें नश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नियन्त्रित एवं जागरूक प्रयत्न किये जाते हैं।

.5.3.1 सामाजिक विकास के विभिन्न आयाम—जैसा कि स्पष्ट ही हो चुका है कि ामाजिक विकास एक व्यापक अवधारणा है इसके अन्तर्गत न केवल आर्थिक अपितु ामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक क्षेत्र में होने वाले अपेक्षित परिवर्तनों की प्रक्रिया को म्मिलित किया जाता है। आज इस सत्य को स्वीकार किया है कि केवल आर्थिक विकास कर लेने से ही आम जनता के जीवन को खुशहाल नहीं बनाया जा सकता। इसके लिए उनके ीवन के सभी पक्षों का समुचित व संतुलित विकास आवश्यक है। इसीलिए अब मजशास्त्रियों के अनुसार सामाजिक विकास के आयाम में निम्न बातों का होना आवश्यक —

- आम जनता को रोटी, कपड़ा और मकान की मौलिक आवश्यकताओं की समुचित पूर्ति।
- शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के उत्तम स्तर को बनाये रखने के लिए आवश्यक पोषक आहार, प्रदूषण रहित वातावरण, चिकित्सा आदि की पर्याप्त सुविधायें।
- योग्यता व कार्यकुशलता के आधार पर न कि जाति, प्रजाति, धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर रोजगार के पर्याप्त अवसर तथा रहन-सहन का ऊँचा स्तर।
- शिक्षा का समुचित विस्तार जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक शिक्षा, पेशेवर व नैतिक शिक्षा का समावेश ताकि समाज में सृजनात्मक क्षमता का विकास, शीघ्र, आविष्कार आदि सम्भव हो सके।

- बिजली, परिशुद्ध पानी, परिवहन और संचार जैसी बुनियादी सुविधायें सबके लिए सुलभ होना।
- समाज के पिछड़े व शोषित वर्गों, किसानों, महिलाओं बच्चों, वृद्धों व विकलांगों के विकास के लिए आवश्यक सुविधायें उपलब्ध होना।
- विभिन्न आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विषमताओं को दूर करना ताकि समाज में समता लाते हुये सामाजिक बदलाव सम्भव हो सके।
- विदेशी निर्भरता कम करके राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनने के सचेत प्रयत्न करना।
- राष्ट्र के स्वाभिमान, अस्मिता व राष्ट्रीय पहचान को बनाये रखना।

1.5.3.2 सामाजिक उद्विकास एवं विकास— अकसर सामाजिक उद्विकास एवं विकास को समान ही समझ लिया जाता है, किन्तु इन दोनों में भी एक बड़ा अन्तर है जो निम्न प्रकार है—

- विकास सदैव उर्ध्वगामी होता है जबकि उद्विकास किसी भी दिशा में हो सकता है, यह ऊपर एवं नीचे किसी भी दिशा में हो सकता है।
- विकास में परिवर्तन पूर्व नियोजित ढंग से लाये जाते हैं जबकि उद्विकास में मानव का कोई हस्तक्षेप नहीं होता, वह स्वत: ही होता है।
- उद्विकास का सम्बन्ध मानव के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन से है, जबकि विकास सामाजिक जीवन के कुछ ही पक्षों में सम्भव है। इस प्रकार उद्विकास विकास की तुलना में एक व्यापक प्रक्रिया है।
- उद्विकास एक मूल्य रहित और तटस्थ अवधारणा है, यह अच्छाई व बुराई को प्रकट नहीं करती जबकि विकास में कुछ सीमा तक मूल्य जुड़े होते हैं। अत: यह तटस्थ प्रक्रिया न होकर प्रगति के अधिक नजदीक है।
- उद्विकास एक स्वत: चलित एवं अचेतन प्रक्रिया है जबकि विकास के लिए प्रयत्न किये जाते हैं और यह एक जागरूक प्रक्रिया है।
- उद्विकास कुछ निश्चित नियमों से व क्रमों द्वारा घटित होता है जो सभी समयों एवं समाजों में समान रूप से होता है जबकि विकास के नियम व क्रम तय नहीं हैं और प्रत्येक समाज में इसके क्रम भी भिन्न-भिन्न हैं।

5.3.3 सामजिक विकास तथा सामाजिक प्रगति—सामाजिक विकास तथा सामाजिक
ति दोनों ही अवधारणाओं में कुछ समानतायें हैं, जैसे— (1) दोनों ही मूल्यों पर आधारित
वधारणायें हैं (2) दोनों ही गुणात्मक परिवर्तन को प्रकट करती हैं तथा (3) दोनों मे ही
वेत एवं जागरूक प्रयत्न करने होते हैं। इन समानताओं के बावजूद भी इन दोनों में निम्न
न्तर हैं—

विकास साधन है जबकि प्रगति साध्य। विकास के प्रयत्नों से ही प्रगति आती है। बिना विकास के प्रगति नहीं आ सकती जबकि प्रगति के बिना भी विकास सम्भव है।

विकास का अधिकांश सम्बन्ध भौतिक संस्कृति से है जबकि प्रगति का अभौतिक संस्कृति से।

प्रगति की तुलना में विकास की माप सरल है, क्योंकि इसका सम्बन्ध भौतिक वस्तुओं से अधिक है।

विकास एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है, जबकि प्रगति की अवधारणा प्रत्येक समाज में अलग-अलग होती है।

प्रगति में परिवर्तन का क्षेत्र सीमित है जबकि विकास में व्यापक है।

प्रगति इच्छित लक्ष्यों की ओर होने वाला परिवर्तन है किन्तु विकास की कोई निश्चित दिशा नहीं होती।

विकास एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जबकि प्रगति के लिए सचेत रूप से प्रयत्न किये जाते हैं।

प्रगति की अवधारणा परिवर्तनशील है, सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन के साथ-साथ प्रगति की अवधारणा भी बदली रहती है। जबकि विकास की अवधारणा बहुत कुछ स्थायी है।

.6 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आपने सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक परिवर्तन की विभिन्न प्रक्रियाओं में प्रमुखत: उद्विकास, प्रगति एवं विकास की अवधारणात्मक एवं विवेचनात्मक जानकारी प्राप्त की। अब आप सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा,

उसकी विशेषताओं तथा सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न प्रतिमानों से अवगत हो गये हैं।

* उद्विकास के अर्थ के साथ-साथ डार्विन के उद्विकासीय सिद्धान्त एवं समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर द्वारा प्रस्तुत उद्विकास के सामाजिक सिद्धान्त को भली-भांति समझ गये हैं। स्पेन्सर ने अपने सिद्धान्त को डार्विन के जीवों पर आधारित उद्विकासीय सिद्धान्त के आधार पर प्रस्तुत किया।

* सामाजिक उद्विकास के विभिन्न स्तर हैं। (1) जंगली स्तर (2) बर्बरता का स्तर तथा (3) सभ्यता का स्तर। उद्विकास के इन सभी स्तरों का उल्लेख ऐनशिलएंट सोसाइटी नामक पुस्तक में किया गया है। यद्यपि सामाजिक उद्विकास, सामाजिक परिवर्तन का ही एक भाग है और दोनों का ही सम्बन्ध समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों से है, परन्तु फिर भी दोनों में एक बड़ा अन्तर है, जिसको आप इकाई के अध्ययन में समझ गये हैं।

* प्रस्तुत इकाई में सामाजिक प्रगति एवं सामाजिक विकास की अवधारणात्मक विवेचना के साथ-साथ उसकी विशेषताओं आदि का उल्लेख भी किया गया है जिससे आप पूर्णतया परिचित हो गये हैं। यद्यपि प्रगति सामाजिक परिवर्तन की एक प्रमुख प्रक्रिया है किन्तु फिर भी सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक प्रगति में काफी अन्तर है।

1.7 बोध प्रश्न एवं उत्तर

1. "समाज परिवर्तनशील एवं गत्यात्मक है" यह कथन किस समाजशास्त्री का है? (सही उत्तर के सामने सही (√) का निशान लगायें।

   (अ) गिलिन एवं गिलिन ( )

   (ब) अरस्तू ( )

   (स) मैकाइवर ( )

   (द) कार्ल मार्क्स ( )

2. किसने कहा था कि "सभी वस्तुएं परिवर्तन के बहाव में हैं।" (सही उत्तर के सामने सही (√) का निशान लगायें)।

(अ) हेरेक्लिटिस ( )

(ब) ग्रीन ( )

(स) कॉम्ट ( )

(द) आग्बर्न ( )

3. ''अपने मूल अर्थ में सामाजिक परिवर्तन का अर्थ सामाजिक ढांचे में परिवर्तन से है। '' किसने कहा था। (सही उत्तर के सामने सही (√) का निशान लगायें)।

(अ) जॉनसन ( )

(ब) मैकाइवर व पेज ( )

(स) आग्बर्न व निम्कॉफ ( )

(द) अ. डब्ल्यू . ग्रीन ( )

4. सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमानों के क्षेत्रों का तीन पंक्तियों में उल्लेख कीदिए।

_____

_____

_____

5. तीन पंक्तियों में 'उद्विकास' का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

_____

_____

_____

6. 'उद्विकास' का सामाजिक सिद्धान्त किस समाजशास्त्री ने प्रस्तुत किया। (सही उत्तर के सामने सही (√) का निशान लगायें)।

(अ) हरबर्ट स्पेन्सर ( )

(ब) कार्ल मार्क्स ( )

(स) मैकाइवर ( )

(द) जॉनसन ( )

7. 'उद्विकास' के कुल कितने स्तर हैं? उनके विभिन्न भागों का उल्लेख कीजिए।

8. किसने कहा है कि "प्रगति वातावरण के अनुसार गिरगिट की तरह रंग बदलने वाला तथ्य है।" (सही उत्तर के सामने सही (√) का निशान लगायें)।

(अ) चार्ल्स डार्विन ( )

(ब) मैकाइवर ( )

(स) जॉनसन ( )

(द) निम्कॉफ ( )

9. सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक प्रगति के मध्य को दस पंक्तियों में स्पष्ट करें।

10. सामाजिक विकास से आप क्या समझते हैं? (पाच पंक्तियों में स्पष्ट करें।)

11. सामाजिक उद्विकास एवं सामाजिक विकास के अन्तर के बारे में पाँच पंक्तियां लिखें।

12. सामाजिक विकास तथा सामाजिक प्रगति में अन्तर स्पष्ट करें। (उत्तर तीन पंक्तियों में दें)

ोध प्रश्न

. मैकाइवर (देखें 1.2)

. हेरोक्लिटिस (देखें 1.2)

. जॉनसन (देखें 1.2)

. देखें 1.4

5. देखें 1.5.1

6. देखें 1.5.1.1

7. देखें 1.5.1.2

8. मैकाइवर (देखें 1.5.2)

9. देखें 1.5.2.2

10. देखें 1.5.3

11. देखें 1.5.3.2

12. देखें 1.9.3.3

1.8 सन्दर्भ / सहायक ग्रन्थ

1. जानसन : सोशियोलॉजी

2. हॉब हाउस : स्पेशल इवोल्यूशन एण्ड पौलिटिकल थ्योरी

3. : सोशल डेवलपमेन्ट

4. जिन्स बर्ग : द आइडियाज ऑफ प्रोग्रेस

काई-2 अर्धविकास, विकास व स्थिर विकास

काई की रूपरेखा

.0 उद्देश्य

.1 प्रस्तावना

.2 अर्ध विकास अभिप्राय

.3 अर्ध विकास अवधारणा

.4 अर्ध विकास के कारण

.5 भारत में अर्ध विकास

.6 विकास के अभिप्राय

.7 सामाजिक विकास

.8 सामाजिक विकास के मापदण्ड

.9 सामाजिक विकास के आधार

.10 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

.11 सामाजिक विकास के प्रकार्य

.12 स्थिर विकास अभिप्राय व अवधारणा

.13 सारांश

.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

.15 प्रश्नोत्तर

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम विकास की विभिन्न अवधारणाओं जैसे—अर्धविकास, विकास व स्थिर विकास से अवगत हो सकेंगे एवं साथ ही हम यह भी जान सकेंगे कि किस प्रकार स्थिर विकास के स्तर को प्राप्त करने के लिये अनिवार्य है कि अर्ध विकसित देश विकसित देशों के स्तर को प्राप्त करें।

प्रस्तुत इकाई में हम अल्पविकास की अवधारणा से अवगत होंगे साथ ही अल्पविकास के कारणों विशेषकर भारतीय परिप्रेक्ष्य में अर्धविकास की स्थिति से अवगत होंगे। तत्पश्चात् विकास के प्रमुख क्षेत्र सामाजिक विकास को जानने का प्रयास करेंगे। सामाजिक विकास के

अन्तर्गत सामाजिक विकास के मापदण्ड, आधार, इसको प्रभावित करने वाले कारक व सामाजिक विकास के प्रकार्य से अवगत होंगे। अंत में वर्तमान में स्वीकृत व प्रचलित स्थिर विकास की अवधारणा व इससे क्या अभिप्राय है से भी अवगत होने का प्रयास करेंगे।

2.1 प्रस्तावना

परिवर्तन प्रकृति का नियम है प्रत्येक कल्याणकारी देश अपने नागरिकों के जीवन स्तर को अधिक से अधिक उन्नत बनाने के लिये परिवर्तन का सहारा लेता है। किसी अर्धविकसित देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में परिवर्तन के माध्यम से विकास ही उस देश को विकसित देशों की श्रेणी में रखता है विकास की भी एक सीमा होती है विकास देश के नागरिकों को तो सुख-सुविधा सम्पन्न जीवन उपलब्ध कराने में सक्षम होता है परन्तु यह विकास सामाजिक व आर्थिक असमानता, पर्यावरण क्षय व प्राकृतिक स्रोतों के असंतुलित दोहन पर आधारित होता है। अत: भावी पीढ़ियों को वर्तमान पीढ़ी के समान बेहतर व सुख सुविधा सम्पन्न जीवन प्रदान करने के लिये स्थिर विकास की अवधारणा को स्वीकृति प्रदान की गयी है।

प्रस्तुत इकाई एक प्रयास है जिसके माध्यम से हम विकास के इन विभिन्न स्तरों से अलग-अलग अवगत होंगे।

2.2 अल्प विकास (अभिप्राय)

अल्प विकास एक सापेक्ष विचार है। इसका आशय विकास की कमी से है। विकास की दृष्टि से विश्व को विभिन्न सामाजिक व आर्थिक व्यवस्थाओं को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है। (1) विकसित देश (2) अर्धविकसित देश। इसके अतिरिक्त विकास के परिप्रेक्ष्य से एक वर्गीकरण और किया जाता है वह है अविकसित देश। अविकसित देश के अन्तर्गत वे देश आते हैं जिनमें विकास का प्रकाश पहुँचा भी न हो सामान्यतया आदिम समाजों के लिये अविकसित व्यवस्था का प्रयोग किया जाता है।

जहां तक अल्पविकसित व विकासोन्मुख देशों का प्रश्न है, ये वे देश हैं जिनमें परिवर्तन व विकास की प्रक्रिया चल रही हो, लेकिन विकास सन्तोषजनक स्तर तक न पहुंच पा रहा हो। जिसके कारण सामाजिक विकास के विभिन्न मापदण्ड जैसे—शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आवास, रोजगार को प्राप्त नहीं किया जा सका हो। जनसंख्या का एक बड़ा भाग इनसे प्रभावित तथा पीड़ित हो। देश निम्न विकसित देश व विकासशील देशों के नाम से भी जाने जाते हैं। सामान्यतया विकासोन्मुख की संज्ञा का उपयोग तृतीय विश्व के देशों के लिये किया जाता है जिसके अन्तर्गत एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देश आते हैं। विकसित, अर्धविकसित तथा अविकसित देशों को निम्न रेखाचित्र द्वारा भी समझा जा सकता है।

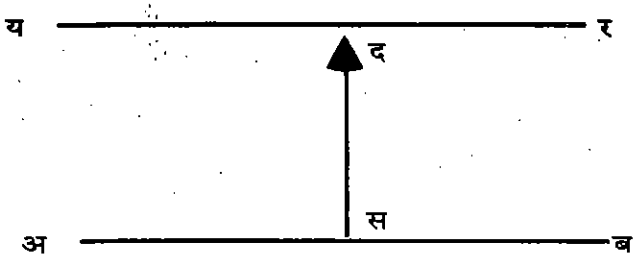

अ ब – आदिम समाज (अविकसित देश)

स द – विकासोन्मुख समाज (अर्द्धविकसित देश)

य र – विकसित समाज (विकसित देश

2.3 अर्द्ध विकास अवधारणा

अर्द्धविकसित देश की एक ऐसी परिभाषा देना, जिसमें सब आवश्यक तत्व सम्मिलित किये गये हों, अत्यन्त कठिन है फिर भी बेहतर सम विकसित करने के लिये कुछ प्रचलित परिभाषाओं पर ध्यान देना आवश्यक है—

(1) प्रतिव्यक्ति आय के आधार पर परिभाषाएं

(2) अल्प विकास के कारणों पर आधारित परिभाषाएं

(3) विकास के आधार पर परिभाषाएं

1. प्रतिव्यक्ति आय के आधार पर परिभाषाएं—संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार विकासोन्मुख देशों से अभिप्राय उन देशों से है जिनमें प्रति व्यक्ति वास्तविक आय अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, और पश्चिमी यूरोपीय देशों की प्रति व्यक्ति आय से कम हो। इस अर्थ में विकाससशील देश और निर्धन देश पर्यायवाची शब्द हैं।

अल्पविकास की इस अवधारणा में निहित तीन त्रुटियों पर ध्यानाकर्षण किया गया है।

1. इस परिभाषा में निहित है कि विकासशील देशों को विकसित देशो के समकक्ष आने के लिये आवश्यक है कि वे अपनी प्रति व्यक्ति आय इन विकसित देशों के समकक्ष करे। परन्तु आलोचकों के अनुसार कुछ विकसित देशों को आदर्श प्रतिमान स्वीकार करने में कहीं न कहीं पक्षपात प्रतीत होता है।
2. मात्र प्रतिव्यक्ति आय का विचार स्वीकार करने पर यह परिभाषा विशुद्ध आर्थिक प्रतीत होती है एवं सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को नजर अन्दाज करती है।
3. इस परिभाषा की आलोचना इस कारण भी की जाती है कि विकसित देशों और विकासशील देशों की परम्पराएं प्रथाएं सामाजिक सांस्कृतिक नियम, विधियां

अलग-अलग हैं। अत: केवल आर्थिक आधार व प्रति व्यक्ति आय के आधार पर इनकी तुलना करना भी गलत है।

1. प्रो० जे० आर० हिक्स के अनुसार—अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें तकनीकी एवं मौद्रिक साधनों की मात्रा उत्पादन और बचत के वास्तविक स्तर के समान ही निम्न होती है जिसके परिणामस्वरूप श्रमिकों को प्रति इकाई औसत पारिश्रमिक उस राशि से कम मिलता है जो तकनीकी व्यवस्था के बाद अधिक प्राप्त हो सकता था।

2. भारतीय योजना आयोग की दृष्टि में—एक अल्प विकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें मानवीय शक्ति का अल्प उपयोग या अनुपयोग एक ओर व प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग न होने की स्थिति दूसरी ओर साथ-साथ पायी जाती है।

उपरोक्त परिभाषाओं में से पहली परिभाषा मात्र आर्थिक व तकनीकी आधार पर होने के कारण आलोचना का शिकार होती है एवं दूसरी परिभाषा में भी सामाजिक, सांस्कृतिक पक्षों की अवहेलना की गयी है।

3. विकास के आधार पर परिभाषायें—

जैकब वाइनर के अनुसार—"अर्ध विकसित देश वह है जिसमें उपलब्ध पूंजी, श्रम शक्ति, प्राकृतिक साधनों आदि उपयोग की सम्भावनाएं हैं जिससे वर्तमान जनसंख्या के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा किया जा सके और प्रति व्यक्ति आय पहले से ही अधिक हो तो रहन सहन के स्तर को नीचा किये बिना अधिक जनसंख्या का निर्वाह किया जा सके।"

जे० वाइनर की उपरोक्त परिभाषा अधिक प्रचलित नहीं हो सकी जिसका मुख्य कारण इसका अत्यधिक तकनीकी व जटिल होना है।

अल्पविकास की आदर्श परिभाषा में आर्थिक के साथ-साथ सामाजिक सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि समस्त विकास के पक्षों को सम्मिलित करना अनिवार्य है जिससे कि सम्पूर्ण देश या समाज संतुलित विकास की ओर अग्रसर हो सके।

2.4 अल्प विकास के कारण

अल्प विकास के निम्न कारण हैं—

1. प्राकृतिक संसाधन और आर्थिक पिछड़ापन—प्राकृतिक संसाधनों की कमी को अल्पविकास का कारण माना जाता है परन्तु लैटिन अमेरिका, अफ्रीका, व दक्षिणी एशिया के देश प्राकृतिक संसाधनों में धनी होने के बावजूद भी अल्पविकसित है। इसके विपरीत विकसित देश कम प्राकृतिक संसाधनों के बावजूद भी विकसित है। अत: प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि आर्थिक विकास की पर्याप्त शर्त नहीं मानी जा सकती।

2. उपनिवेशवाद और आर्थिक पिछड़ापन—औपनिवेशिक शासन काल में प्राकृतिक संसाधनों का अनुचित दोहन, स्वार्थपूर्ण नीतियां, औद्योगीकरण के अभाव के कारण परतंत्र देश पनप नहीं सके। औपनिवेशिक शासनकाल को अल्पविकास का कारण तो माना जा सकता है परन्तु एकमात्र नहीं क्योंकि अनेक देशों में राष्ट्रवादी सरकारें तो दीर्घ मात्र से हैं परन्तु वे भी आर्थिक दृष्टि से पूर्ण उन्नत नहीं हो पाये।

3. अपर्याप्त पूंजी—अपर्याप्त पूंजी, पूंजी का अनुत्पादक क्षेत्रों में लगे होना, काला बाजारी आदि कारक निम्न औद्योगीकरण को जन्म देते हैं अत: समुचित विकास नहीं हो पाता।

4. तकनीकी पिछड़ापन—पिछड़ी तकनीक उत्पादन की ऊंची लागत के रूप में व्यक्त होती है क्योंकि पूंजी एवं श्रम दोनों की उत्पादिता निम्न ही रहती है।

5. कृषि प्रधानता—अल्पविकास का एक कारण द्वितीयक तथा तृतीयक सेवा क्षेत्रों की अपेक्षा प्राथमिक क्षेत्र में अधिक निर्भरता है। भारत में लगभग 70% जनसंख्या कृषि क्षेत्र में लगी है परन्तु सक घरेलू उत्पाद ने कृषि का योगदान मात्र 27% ही है।

6. तृतीयक क्षेत्र तथा अधोसंरचना का पिछड़ापन—अल्प विकास का एक और कारण तृतीयक क्षेत्र जैसे—व्यापार, बैंकिंग, बीमा आदि विभिन्न सेवाओं तथा अधोसंरचना जैसे—यातायात के साधन, बिजली, सिंचाई आदि की भी मात्रा तक अविकसित रहते हैं।

7. जनसंख्या की अधिकता—अर्द्धविकसित देशों में जनसंख्या का दबाव इतना गम्भीर होता है कि यह आर्थिक विकास एवं जीवन स्तर को ऊंचा करने के प्रयास को निष्फल कर देता है। **लीबिन्स्टीन के अनुसार** राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या में भी वृद्धि होती जाती है फलत: प्रति व्यक्ति आय निम्न बनी रहती है।

8. सांस्कृतिक व सामाजिक विशेषताएं—अल्प विकास में कुछ आर्थिकेत्तर कारक गहन रूप से प्रभावित करते हैं। जैसे—रूढ़ियों की प्रधानता, जातिप्रथा, अशिक्षा, स्त्रियों की निम्न स्थिति, भाग्यवादिता, श्रम की निम्न गतिशीलता, सामाजिक प्रतिष्ठा और शारीरिक श्रम का विरोधी होना आदि। जैसा कि विश्व बैंक के पूर्व प्रधान राबर्ट गार्नर का कहना है कि "आर्थिक विकास या इसका अभाव मुख्यत: विभिन्न देशों में रहने वाले लोगों की अभिवृत्तियों, रिवाजों, परम्पराओं और इनके परिणामस्वरूप उनके राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक संस्थानों में अन्तर के कारण है।"

9. राजनीतिक व प्रशासकीय कारक—औपनिवेशिक शासन सत्ता का प्रभाव, कार्य संस्कृति का अभाव, राजनीतिक व प्रशासनिक स्तर पर व्याप्त भ्रष्टाचार इच्छा शक्ति का अभाव आदि अनेक कारक हैं जो अल्प विकास हेतु उत्तरदायी हैं।

2.5 भारत में अल्पविकास

भारत केवल आर्थिक रूप से ही अर्द्धविकसित नहीं है वरन् सामाजिक व राजनैतिक दृष्टि से भी अल्पविकसित है। भारत प्राकृतिक संसाधन से धनी है परन्तु अपर्याप्त व अनियोजित संदोहन,

प्रति व्यक्ति आय का निम्न उत्तर, व्यापक निर्धनता, बेरोजगारी, जनसंख्या की अधिकता, कृषि का पिछड़ापन, तकनीकी पिछड़ापन, पूंजी निवेश में कमी, अधो संरचना का अभाव आदि अनेक आर्थिक कारक हैं जो भारत को अल्प विकसित देश की श्रेणी में सम्मिलित करते हैं। सामाजिक रूप से अल्पविकसित होने के लक्षण देश में विद्यमान जातिवाद, सामाजिक ऊंच-नीच, अस्पृश्यता, रूढ़ियों व पराम्पराओं का अधिक महत्व, सहयोग व सहकारिता के स्तर में कमी, निम्न साक्षरता, अंधविश्वास, विकास की प्रेरणा का अभाव इत्यादि है। भारत को स्वतन्त्र हुये आधी शताब्दी से अधिक समय हो गया है परन्तु जन सहयोग आधारित स्वस्थ प्रजातंत्र दिखायी नहीं देता। राजनीतिक व प्रशासकीय भ्रष्टाचार चारों और व्याप्त है जिसकी अभिव्यक्ति समय-समय पर होने वाले विराट प्रदर्शनों, जन आंदोलनों, हड़तालों, घेरावों और तोड़फोड़ इत्यादि में होती रही है। पंचायती राज व्यवस्था का भी परिणाम सन्तोषजनक नहीं है। चुनावों में भी क्षेत्रवाद, जातीय व साम्प्रदायिक हिंसा का प्रयोग बढ़ता गया है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आदि समन्वित रूप से भारत को अल्पविकसित देशों की श्रेणी में रखते हैं।

2.6 विकास के अभिप्राय

विकास एक सामाजिक प्रक्रिया है। वर्तमान में उद्‌विकास और प्रगति की अवधारणाओं को लगभग त्याग दिया गया है क्योंकि ये अवधारणायें वैज्ञानिक नहीं समझी गयी। विकास के अन्तर्गत परिवर्तन की निरन्तरता के साथ-साथ एक दिशा भी होती है इस दिशा का झुकाव प्रगति उन्मुख होता है। वास्तव में विकास की आवश्यकता प्रगति की प्राप्ति के लिये होती हैं।

विकास कई प्रकार के होते हैं—जिनमें प्रमुख हैं—

1. **आर्थिक विकास**—आर्थिक विकास प्रति व्यक्ति व राष्ट्रीय आय में वृद्धि दर्शाता है। आर्थिक विकास के अन्तर्गत तार्किकता व नैतिकता का भी समावेश रहता है।

2. **राजनीतिक विकास**—राष्ट्र कल्याण के लिये राजनीतिक विकास की नीति अपनायी जाती है। विशेषकर औपनिवेशिक शासन सत्ता से मुक्ति पाये देशों के लिये अनिवार्य हैं कि सामाजिक व आर्थिक प्रगति के लिये राजनीतिक स्थिरता बनाये रखी जाये।

3. **सामाजिक विकास**—सामाजिक विकास के अन्तर्गत उन समस्त पहलुओं का समावेश किया जाता है जो सामाजिक प्रगति के लिये अनिवार्य है जैसे—शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, आवास, जैसी आवश्यकताओं का पूरा किया जाना।

विकास से तात्पर्य सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ आर्थिक वृद्धि से भी है।

विकास = परिवर्तन + आर्थिक वृद्धि एवं यह परिवर्तन व वृद्धि गुणात्मक के साथ-साथ परिमाणात्मक भी होती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विकास वह परिवर्तन है जिससे गुणात्मक व परिणात्मक दोनों ही दृष्टिकोण से प्रगति होती है।

पानसियन के अनुसार "विकास संकुचित अर्थ में परिवर्तन है। यह वृद्धि से सम्बन्धित है जो पहले से ही अन्तर्निहित होती है।

समाजशास्त्र विषय से सम्बद्ध होने के कारण हमारा ध्येय सामाजिक विकास के प्रति समझ विकसित करने से है।

2.7 सामाजिक विकास

सामाजिक विकास एक ओर मानव आवश्यकताओं ओर दूसरी और सामाजिक नीतियों और कार्यक्रमों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिये नियोजित परिवर्तन की प्रक्रिया है। यह गरीबी, अज्ञानता, बीमारी, असमानता आदि के विरुद्ध कार्य करती है। इसका उद्देश्य सभी नागरिकों के जीवन की गुणवत्ता को सुधारना है।

सामाजिक विकास के विभिन्न विद्वानों ने निम्न प्रकार परिभाषित किया है—

1. जे० ए० पोनसियन—"सामाजिक विकास से तात्पर्य उन सम्बन्धों तथा संरचनाओं से है जो किसी समाज को इस योग्य बनाता है कि उसके सदस्यों की आवश्यकतायें पूरी हो सके।"

2. वी० एस० दिसूजा के अनुसार—"सामाजिक विकास एक प्रक्रिया है जिसके कारण एक सरल समाज, एक उच्चतर और विकसित समाज में रूपान्तरित होता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से निष्कर्ष निकलता है कि सामाजिक विकास एक नियोजित प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत सामाजिक लक्ष्यों की पूर्ति सम्भव की जाती है।

2.8 सामाजिक विकास के मापदण्ड

एल० टी० हाबहाउस ने सामाजिक विकास के 4 मापदण्ड निर्धारित किये हैं जो निम्नलिखित हैं—

आकार में वृद्धि—प्राणिशास्त्रीय के समान सामाजिक संरचनाओं में भी परिवर्तन आता रहता है। समूह से समुदाय और समुदाय बढ़ते-बढ़ते समाज बन जाते हैं, परन्तु दोनों की संरचनाओं में मौलिक अन्तर यह है कि जैविक संरचनाओं के बढ़ने की एक सीमा होती है जिसके आगे इनका आकार और अधिक नहीं बढ़ सकता जबकि सामाजिक संरचनाओं के आकार वृद्धि की सीमा नहीं रहती।

दक्षता में वृद्धि—एक शिशु की शारीरिक वृद्धि के बाद कुशलता में वृद्धि के समान सामाजिक संरचना के तत्व भी अपने अपने क्षेत्रों में अधिक दक्षता और कुशलता के साथ अपने-अपने कार्य को करने लगते हैं।

पारस्परिकता में वृद्धि—विकास की प्रक्रिया पारस्परिकता में भी वृद्धि करती है। पारस्परिकता के बढ़ने के दो कारण होते हैं। एक बढ़ता हुआ विभेदीकरण तथा दूसरा बढ़ता हुआ

विशेषीकरण। विभेदीकरण और विशेषीकरण की प्रक्रिया अन्तर्निर्भरता में भी वृद्धि करती है।

स्वाधीनता में वृद्धि—विकास की प्रक्रिया आत्मनिर्भरता में वृद्धि करती है। यह आत्मनिर्भरता स्वाधीनता की भावना पैदा करती है। समाज के विकास की प्रक्रिया के साथ-साथ सदस्यों की व्यक्तिगत, आर्थिक, राजनैतिक, नागरिक स्वाधीनताओं में भी वृद्धि होती जाती है।

इस प्रकार एल० टी० हाबहाउस ने समाज के प्रति सावयवी उपगात अपनाकर सामाजिक विकास की प्रकृति को समझने के लिये एक अर्न्तदृष्टि प्रदान की है।

2.9 सामाजिक विकास के आधार

आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन के द्वारा सामाजिक विकास हेतु निर्धारित आधार व मापदण्ड निम्न हैं :

1. पौष्टिक आहार की प्राप्ति 2. प्रति व्यक्ति अधिक वस्त्रों का उपभोग 3. आवास की व्यवस्था 4. स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता 5. शिक्षा का प्रसार 6. जन सम्पर्क साधनों का विस्तार 7. संचार व यातायात साधनों में वृद्धि 8. विद्युत शक्ति एवं शक्ति के अन्य स्रोतों का उपयोग 9. श्रमिकों की उद्योग में संलग्नता 10. मृत्युदर एवं जन्मदर में कमी 11. नगरीरकण की प्रक्रिया का तेज होना।

2.10 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

सामाजिक विकास को प्रभावित रकने वाले कारक निम्न हैं—

1. **आविष्कार**—आविष्कारों के परिणामस्वरूप समाज में प्राविधिक एवं अन्य प्रकार की उन्नति होती है जसका प्रभाव सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर पर भी दिखायी देता है।

2. **संचयन**—ज्ञान के संचयन से नये आविष्कार सम्भव होते हैं एवं इन आविष्कारों के फलस्वरूप प्रौद्योगिक प्रगति होती है जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक विकास सम्भव होता है।

3. **प्रसार**—औद्योगिक प्रगति और आविष्कारों के उद्भव व प्रसार के कारण विकास की प्रक्रिया तेज होती है। सामाजिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन आता है।

4. **सामंजस्य एवं संतुलन**—सामाजिक विकास के लिये आवश्यक है कि इसको प्रभावित करनेवाले अंगों में सामंजस्य व संतुलन अवश्य है।

5. **सीखने की प्रवृत्ति**—ज्ञान की प्राप्ति के प्रवृत्ति सामाजिक विकास को तीव्र करने में सहायक होती है।

6. **सामाजिक गतिशीलता**—सामाजिक गतिशीलता 2 प्रकार की होती है—(1) लम्बवत

2) क्षैतिज। इस गतिशीलता के फलस्वरूप आधुनिकीकरण होता है, जो कि सामाजिक विकास को सम्भव बनाता है।

'. **औद्योगीकरण व नगरीकरण**—औद्योगीकरण की प्रक्रिया नगरीकरण को तीव्र करती है। गरीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन आता है और यह ामाजिक विकास के लिये उत्तरदायी होता है।

. **राजनैतिक व्यवस्था**—विभिन्न देशों के अलग-अलग विकास की व्यवस्था में होने का ारण विभिन्न देशों की अलग-अलग राजनैतिक व्यवस्था का होना भी माना जाता है।

.11 सामाजिक विकास के प्रकार्य

ामाजिक विकास एक वृहद् अवधारणा है जिसके अन्तर्गत समाज के समस्त वर्गों के र्वांगीण विकास की भावना निहित होती है लोगों की जीविका अर्जन के अवसर सुलभ हो के एवं वे सुरक्षित व स्वस्थ परिस्थितियों में संतोषजनक कार्य की शर्तों पर कार्य कर सकें ादि सुनिश्चितता कायम करने की व्यवस्था की जाती है।

ामाजिक विकास की प्रक्रिया में सामान्यतया निम्न प्रकार्य सम्पादित किये जाते हैं—

. **जन जीवन की गुणवत्ता में सुधार लाना**—सामाजिक विकास जनकल्याण से सम्बद्ध वधारणा है। विकास के अन्तर्गत मनुष्य की जो बुनियादी आवश्यकतायें हैं उनकी न्यूनतम ूर्ति अवश्य होनी चाहिये। इन न्यूनतम आवश्यकताओं में भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा और वास्थ्य सम्मिलित है। इनकी परिमाणात्मक वह गुणात्मकत वृद्धि अनिवार्यत: जन-जीवन की ुणवत्ता में परिवर्तन लाती है।

. **सामाजिक न्याय का आश्वासन**—सामाजिक विकास तब तक सम्भव नहीं माना जा कता जब तक कि सामाजिक न्याय का ध्यान न रखा जाये। समाज के कमजोर वर्गों जैसे नुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़े वर्ग, महिलाओं व अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान ामाजिक विकास की प्रक्रिया में अनिवार्यत: रखा जाता है।

. **आय, संसाधन और प्रतिफल का समान बंटवारा**—सामाजिक विकास के अन्तर्गत ंसाधनों के दोहन व सरकारी उपक्रमों व आयात, निर्यात से प्राप्त लाभों का बटवारा इस तरह े किया जाता है कि जन साधारण भी इससे लाभ उठा सकें और यह भी ध्यान में रखा जाता ै। धन का केन्द्रीयकरण सीमित हाथों में न होने पाये।

. **शक्ति का बंटवारा**—जनता की शासन तक पहुंच सुलभ कराने में प्रजातंत्रीय शासन णाली का विशेष महत्व है। भारत में भी पंचायती राज व्यवस्था द्वारा राजनैतिक शक्ति का वेकेन्द्रीकरण ग्राम स्तर पर हो गया है। सामाजिक विकास की यह एक शर्त होती है कि शक्ति क केन्दीकरण पर रोक हो एवं शासन की प्रक्रिया में सभी लोगों की समान भागीदारी हो।

5. मानव संसाधन का विकास—सामाजिक आर्थिक विकास के लिये आवश्यक है कि मानव संसाधन के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाये। यह बात सत्य है कि जिन देशों में मानवीय संसाधन अधिक विकसित अवस्था में है वे देश भी विकसित है। यदि मानव को एक संसाधन के रूप में देखा जाये तो हमें उसका विकास जीवन के विभिन्न क्षेत्रों शिक्षा, प्रशिक्षण, उद्योग, स्वास्थ्य, आदि में करना चाहिये। भारतीय केन्द्रीय सरकार ने भी मानव संसाधन को महत्व देते हुये एक पृथक् मानव संसाधन विकास मंत्रालय बनाया है।

2.12 स्थिर विकास अभिप्राय व अवधारणा

विश्व के समस्त देशों में चाहे वे विकसित हों या विकासशील स्थिर विकास (समन्वित विकास) की प्रक्रिया अपनाने पर जोर दिया जा रहा है। यह सामाजिक विकास की एक ऐसी ही दीर्घकालीन प्रक्रिया है जिसमें निरन्तरता बनी रहती है। यह प्रक्रिया न केवल आर्थिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करती है वरन् सामाजिक सांस्कृतिक, पर्यावरणीय, स्वास्थ्य, शिक्षा अर्थात् जीवन की गुणवत्ता से सम्बद्ध समस्त पक्षों को सम्मिलित करती है।

'पर्यावरण एवं विकास की विश्व समिति' (WCED) द्वारा 1987 में ''ऑवर कॉमन फ्यूचर'' नामक शीर्षक के अन्तर्गत स्थिर विकास की निम्न परिभाषा दी गयी।

''स्थिर (समन्वित) विकास से अभिप्राय उस विकास से है जो वर्तमान की आवश्यकतायें तो पूरी करती हैं भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं के प्रति भी पूर्ण जवाबदेही रखता है।

स्थिर विकास की अवधारणा का प्रादुर्भाव व विकास 1980 में 'आई० यू० सी० एन० 'डब्ल्यू० डब्ल्यू० एफ०' एवं 'यू० एन० डी० पी०' द्वारा संयुक्त रूप से प्रायोजित विश्व संरक्षण प्रणाली के अन्तर्गत हुआ था। इसका लक्ष्य था सीमित होते जैव संसाधनों के संरक्षण द्वारा स्थिर विकास की उपलब्धियों को बढ़ाना। उसमें घोषणा की गयी थी कि विकास की तरह संरक्षण भी मनुष्य की आवश्यकता है। हमारा समाज सतत् परिवर्तनशील है। समाज में प्राकृतिक रूप से व मानव गत सामाजिक परिवर्तन होते रहते हैं परिवर्तित जटिल व्यवस्था से वर्तमान समाज व भावी पीढ़ियों कैसे अनुकूलन व सामंजस्य रख सके इसके लिये स्थिर विकास की संकल्पना सामने लगायी गयी। अनुभव द्वारा यह माना जाने लगा कि मात्र आर्थिक व तकनीकी प्रगति मानव जाति की समस्त समस्याओं का समाधान नहीं कर सकती वरन् प्राकृतिक संधनों के असीमित दोहन से पर्यावरण असंतुलन जैसी समस्यायें सामने आयी हैं। जैसा कि **माग्रेट मीड** का मानना है कि यदि हमने पर्यावरण को नष्ट किया तो हमारा समाज भी नष्ट हो जायेगा। अब यह माना जाने लगा है कि विकास का अन्तिम उद्देश्य समाज के प्रत्येक मानव के जीवन में गुणात्मक सुधार लाना है।

विकास सामाजिक समानता, सहभागिता, पर्यावरण संरक्षण, विकेन्द्रीकरण, आत्मनिर्भरता, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति जैसी समस्याओं से सम्बन्धित है इनकी प्राप्ति हेतु आवश्यक

है कि प्रत्येक व्यक्ति को भोजन वस्त्र, आवास, बिजली, पानी, परिवहन और संचार जैसी बुनियादी सुविधायें उपलब्ध हों। मनुष्य को उत्तम स्वास्थ्य, पोषक आहार, प्रदूषण रहित पर्यावरण की प्राप्ति सुनिश्चित हो जीवन स्तर में वृहद अन्तर न हो एवं लोगों की सामाजिक, राजनैतिक संसाधनों तथा अवसरों तक पहुंचने में कम से कम विषमतायें हों। जैस कि मानव विकास रिपोर्ट (1996) में उल्लिखित है ''ऐसा विकास हो जो असमानताओं को न तो शाश्वत बनाता है न ही पोषणीय और न इसे कायम रखा जाना चाहिये।''

स्थिर विकास की अवधारणा तीव्र जनसंख्या वृद्धि और मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रकृति के अंधाधुंध शोषण पर आपत्ति करती है विशेष रूप से इस विचारधारा पर की वर्तमान सुख सुविधा के लिये प्रकृति का असीमित दोहन नि:संकोच रूप से किया जाए। स्थायी विकास इस तथ्य को स्वीकार करता है कि पारिस्थितिकी तंत्र पूर्वजों से प्राप्त विरासत नहीं वरन् भावी पीढ़ियों की धरोहर है।

पर्यावरणीय असंतुलन को उत्पन्न करने वाले देशों की जवाबदेही निर्धारित करते हुये कई देशों के मध्य अनेक अन्तर्राष्ट्रीय समझौते हुये हैं जैसे-पर्यावरण सम्बन्धी समझौता, जलवायु परिवर्तन और भूखण्डलीय तापन समझौता। आवश्यकता इस बात की है कि इन समझौता का नियमानुसार पालन किया जाये। तकनीकी विकास व आर्थिक सक्षमता द्वारा विकसित देश विकासशील देशों को बाजार के रूप में देखने लगे हैं और नये प्रतिबन्धात्मक नियमों के माध्यम से इनका अधिकाधिक शोषण की नीति अपनाये हुये हैं।

स्थिर विकास की अवधारणा जो कि सामाजिक न्याय समानता, सहभागिता, विकेन्द्रीकरण आदि की नीति पर आधारित है की सफलता के लिये आवश्यक है कि विश्व के समस्त देश ईमानदारी से इस प्रक्रिया को अपनाने के लिये उद्यत हो एवं विकसित देश विकासशील देशों को राजनीतिक व आर्थिक दबावों से मुक्त रखें।

2.13 सारांश

प्रस्तुत इकाई अर्धविकास, विकास व स्थिर विकास की अवधारणा पर अलग-अलग प्रकाश डालती है। सर्वप्रथम हमने अर्धविकास की अवधारणा व अर्धविकास के क्या कारण हैं को जानने का प्रयास किया। अर्धविकास से अवगत होने के पश्चात् विकास के विभिन्न क्षेत्रों विशेषकर, सामाजिक विकास के मापदण्ड, आधार प्रभावित करने वाले कारक व सामाजिक विकास के प्रकाय से अवगत हुये। अंत में स्थिर विकास की अवधारणा से भी अवगत हुये।

2.14 संदर्भ ग्रन्थ/उपयोगी पुस्तकें

1. एल० टी० हाबहाउस, सोशल डेवलपमेण्ट, हेनरी हॉल एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1924
2. शंकर पाठक, ''सोशल डेवलपमेण्ट'' इन्साइक्लोपीडिया आफ सोशल वर्क इन इण्डिया, वाल्यूम 3

3. जी० ग्लेजर मैन-लाज ऑफ सोशल डेवलपमेण्ट

4. प्रो० मेराज अहमद, विकास का समाज शास्त्र, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली

5. डॉ० जी० आर० मदान-सोशल डेवलपमेण्ट, विवेक प्रकाशन, पृष्ठ 170-178

6. डा० इन्द्रा श्रीवास्तव व डॉ० शेखर श्रीवास्तव, के० के० पब्लिकेशन्स, स्टेनेबिल डेवलपमेण्ट पृ० 109 से 124

1.15 प्रश्नोत्तर

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्र० 1 अर्द्धविकास को परिभाषित करते हुये स्पष्ट करें कि वे क्या कारण हैं जो किसी दोश को अर्धविकसित सिद्ध करते हैं?

प्र० 2 विश्लेषित करें कि क्या भारत एक अर्द्धविकसित देश है।

प्र० 3 सामाजिक विकास से आप क्या समझते हैं? सामाजिक विकास के निर्धारक तत्वों की विवेचना करें।

प्र० 4 स्थिर विकास की आवश्यकता व उसकी प्रगति की आलोचनात्मक व्याख्या करें?

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्र० 1 अल्प विकास के सामाजिक कारकों पर प्रकाश डालें।

प्र० 2 उन कारणों को स्पष्ट करें जो सामाजिक विकास को प्रभावित करते है?

प्र० 3 किसी देश के लिये सामाजिक विकास की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।

प्र० 4 स्थिर विकास पर टिप्पणी लिखें?

बहुविकल्पीय प्रश्न

प्र० 1 "एक अल्पविकसित अर्थव्यवस्था वह है जिसमें मानवीय शक्ति का अल्प उपयोग या अनुपयोग एक ओर प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग न होने की स्थिति दूसरी ओर साथ-साथ पायी जाती है।"

यह परिभाषा किसके द्वारा दी गयी?

1. प्रो० जे० आर० हिक्स 2. महात्मा गांधी 3. योजना आयोग 4. जेकब वाइनर

प्र० 2 निम्न में से कौन सा कारक अल्पविकास का द्योतक नहीं है?

1. अधो संरचना का 2. जनसंख्या की अधिकता 3. कृषि प्रधान या पिछड़ापन

4. पूंजी निवेश की पर्याप्तता

3 एल० टी० हाबहाउस द्वारा सामाजिक विकास का निम्न में से कौन से मापदण्ड का उल्लेख नहीं किया गया है?

1. आकार में वृद्धि 2. दक्षता में वृद्धि 3. पारस्परिकता में वृद्धि 4. विश्वसनीयता में वृद्धि

4 "स्थिर विकास" से अभिप्राय उस विकास से है जो वर्तमान की आवश्यकतायें तो पूरी करता ही है, भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं के प्रति भी पूर्ण जवाबदेही रखता है। यह परिभाषा किस संस्था ने दी है।

(i) W.H.O (ii) UNICEF (iii) WCED (iv) UNDP

R (1) III (2) IV (3) IV (4) III

इकाई 3 : विकास के सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विकास के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा

3.4 विकास के आर्थिक सिद्धान्त

3.4.1 आदम स्मिथ का सिद्धान्त

3.4.2 रिकार्डो का सिद्धान्त

3.4.3 थामस राबर्ट, माल्थस का सिद्धान्त

3.4.4 जान स्टुअर्ट मिल का सिद्धान्त

3.4.5 कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त

3.4.6 शुम्पीटर का सिद्धान्त

3.4.7 डब्लू. डब्लू. रोस्टो का सिद्धान्त

3.5 विकास के संस्थागत, प्रतिक्रियात्मक और वैश्विक सिद्धान्त

3.6 सारांश

3.7 सम्बन्धित ग्रन्थ/ उपयोगी पुस्तकें

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

3.9 प्रश्नोत्तर

3.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप:

* विकास के सिद्धान्त का अर्थ व परिभाषा दे सकेंगे।
* विकास का आर्थिक सिद्धान्त का विश्लेषण अनेक विद्वानों के माध्यम से कर सकेंगे।
* प्रतिक्रियात्मक और वैश्विक सिद्धान्त का विवरण कर सकेंगे।

.2 प्रस्तावना

कास का व्यक्ति, समूह और समाज पर प्रभाव पड़ता है और सामाजिक परिवर्तन का विकास सह-सम्बन्ध है। विकास का प्रारूप आर्थिक हो अथवा सामाजिक, राजनैतिक हो अथवा स्थागत, भौतिक हो अथवा अभौतिक जन-भावना की सन्तुष्टीकरण से सैद्धान्तिक रूप से ड़ा है।

.3 विकास के सिद्धान्त का अर्थ एवं परिभाषा

ाकास एक उर्ध्वगामी प्रक्रिया है जिसे नियोजित किया जाता है। विकास एक पक्षीय वधारणा है। विकास की केवल एक ही गति है उर्ध्वगामी विकास । विकास एक मूल्यात्मक वधारणा है जिसके साथ किसी न किसी रूप में मूल्य अवश्य जुड़ा होता है। मूल्य से तात्पर्य वह अवधारणा जिसके साथ सामाजिकता का समर्थन व्यापक रूप से विद्यमान होता है। ाकास एक सचेतन प्रक्रिया है। विकास बिना जादरूक प्रयत्नों के नहीं हो पाता। विकास से ात्पर्य दो बातें है पहला विकास सम्बन्धी कार्य दूसरा विकास के परिणाम की स्थिति।

ाकास से सिद्धान्त से तात्पर्य है विकास के वे नियम जिन्हें समाज समय-काल परिस्थिति के नुसार अपनाया और जिनका प्रारूप विचारधारायें उद्देश्यों और लक्ष्यों के अनुरूप रही और नका गर समाज के लिए सामान्य परिणाम रहा अर्थात् जिनका विश्वव्यापी उपयोग रहा और ाधार वैज्ञानिक। विज्ञान के चरणों के आधार पर जो निष्कर्ष निकालते जाते हैं औजिन ाष्कर्षों में तटस्थता, सत्य और सर्वव्यापक उपयोग का गुण होता है उन्हें सिद्धान्त की संज्ञा ा जाती है और जिनका सीधा सम्बन्ध विकास से होता है उन्हें विकास से सिद्धान्त कहते हैं।

ाकास से सिद्धान्तों को प्रमुखतया आर्थिक, संस्थागत, प्रतिक्रियात्मक, वैश्विक आदि उपबन्धों विश्लेषित किया जा सकता है।

.4 विकास के आर्थिक सिद्धान्त

ाकास के आर्थिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत आदमस्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, मिल, मार्क्स, ुम्पीटर, कीन्स, रोस्टो, गरचेन्क्रान, नुर्कस, लेविस, फी-रानिस, जोरगेन्सन, हैरिस, टोडारो, ीबेन्स्टीन, नेल्शन, रोसेन्स्टीन रोडान, गुन्नार मिरडा आदि अर्थशास्त्रियों एवं विद्वानों के सिद्धान्तों की चर्चा एवं विश्लेषण किया जा सकता है।

.4.1 आदम स्मिथ का सिद्धान्त

ापनी पुस्तक 'ऐन इन्क्वायरी इन्टू दी नेचर एण्ड काजेज आफ दी वेल्थ आफ नेशन्स' जिसका ाथम प्रकाशन 1776 में हुआ था और जो आर्थिक विकास के संदर्भ में प्रारम्भिक रूप से थी ादम स्मिथ का महत्वपूर्ण कार्य माना जा सकता है।

(1) प्राकृतिक नियम

आदमस्मिथ का मानना है कि आर्थिक कारोबार प्राकृतिक नियम पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति अपने हितों का निर्धारक एवं निर्णायक होता है और यदि उसे स्वतंत्ररूप से कार्य करने दिया जाये तो वह अपना भला तो करेगा ही सार्वजनिक हित में भी कार्य करेगा और अपने अर्थ साध्य का अधिकतम रूप प्राप्त करने में सफल होगा और अपना धन अधिक से अधिकतम बनाने में सफल होगा। इसीलिये वे लैसे फेयरे (Laisserz - faire) की नीति के समर्थक थे और सरकारी मध्यस्थता विशेषकर उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में होने का विरोध करते रहे।

(2) श्रमविभाजन

श्रमविभाजन से श्रमिक उत्पादन की वृद्धि में सुधार लाकर उत्पादन बढ़ायेगा क्योंकि (1) कार्यकुशलता बढ़ेगी (2) उत्पादन में श्रम-समय की बचत होगी और (3) श्रम बचाने वाले मशीनों का आविष्कार बढ़ेगा। परन्तु अंतिम परिणाम अर्थात् मशीनों के आविष्कार और नये मशीनों की खोज, हेतु पूंजी की आवश्यकता होगी। नये तकनीक, नये बाजार श्रमविभाजन बढ़ायेगा। वाणिज्य और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में वृद्धि होगी।

(3) पूंजी विस्तार से आर्थिक प्रगति होगी

(4) राष्ट्रीय बचत की स्थिति उत्पन्न होगी।

(5) अंतत: स्थिरता की स्थिति अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों की कमी हो जायेगी, जनसंख्यावृद्धि, प्रतियोगिता, पूंजीस, लाभ सबकी स्थिति गतिहीन हो जायेगी।

आदम स्मिथ के सिद्धान्त का आधार ग्रेट ब्रिटेन और योरप है विकासशील और अविकसित देश नहीं है। कीन्स के अनुसार अविकसित देशों में जनसंख्या का बोझ पूंजी बनने ही देता। शुम्पीटर के साहसिक निवेशकों की भूमिका की अनदेखी मिलती है जबकि शुम्पीटर नयापन को विकास का आधार मानते हैं और नयापन परिवर्तन का आधार भी है और विकास का भी।

3.4.2 रिकोर्डों का सिद्धान्त

डैविड रिकार्डों अपनी पुस्तक 'दी प्रिन्सीपुल्स आफ पोलिटिकल इकानामिक एंड टैक्शेशन' जिसका प्रकाशन 1917 में हुआ था ऐसे विचारों से भरा हुआ है जिसे अनेक अर्थशास्त्री आर्थिक विचारों से भरा हुआ है। जिसे अनेक अर्थशास्त्री आर्थिक विकास का आधार बनाया।

(1) रिकार्डियन सिद्धान्त का आधार 'मारजिनल' तथा 'सरप्लस' सिद्धान्त राष्ट्रीय उत्पादन में खर्च के विवरण अर्थात् 'शेयर आफ रेन्ट' से सम्बन्धित विवरण प्रस्तुत करता है और 'सरप्लस' सिद्धान्त बचे हुए भाग (शेयर) का वेतन और लाभ में विभाजन बताता है।

(2) प्रमुख मान्यतायें जिन पर रिकार्डियन, सिद्धान्त आधारित है :-

(i) सभी भूमि अन्न उत्पादन में प्रयोग की जाती है और कृषि में लगी हुई श्रमशक्ति से उद्योग में लगने वाली श्रमशक्ति का निर्धारण होता है।

(ii) कृषि से उत्पादन कम होने लगता है।

(iii) भूमि सीमित है।

(iv) अन्न की मांग कभी कम कभी अधिक होती है।

(v) श्रमिकों तथा पूंजी की प्राप्ति बदलती रहती है।

(vi) श्रमिकों को निर्वाह हेतु ही वेतन प्राप्त होता है।

(vii) पूर्ण प्रतियोगिता होती है।

(viii) लाभ में पूंजी निर्मित होती है।

(ix) भूमि स्वामी, श्रमिक, पूंजीपति तीन अर्थ व्यवस्था के आधार पर स्तम्भ होते हैं।

(x) पूंजी बचत एवं बचत की इच्छा से बढ़ती है।

(xi) रिकार्डो स्वतंत्र व्यापार के समर्थक हैं।

इनके सिद्धान्त में (1) तकनीकि के प्रभाव का प्रभाव नहीं दर्शाया गया है। (2) द्धान्त का आधार 'लैसे फेयरे' नीति पर आधारित है जो अव्यवाहिक है। (3) संस्थागत रकों की अवहेलना की गयी है जबकि संस्थायें विकास का आधार स्तम्भ है। (4) यह तरण का सिद्धान्त है न कि विकास का सिद्धान्त है। (5) भूमि खाद्यान्न के अतिरिक्त अन्य र्थ भी उत्पन्न करता है।

4.3 थामस राबर्ट माल्थस का सिद्धान्त

ल्थस की पुस्तक 'प्रिंसिपुल्स आफ पोलिटिकल अकानामी' का प्रकाशन 1820 में हुआ सके 'बुक-II' जिसका शीर्षक है "दी प्राग्रेस आफ वेल्थ" में आर्थिक विकास का श्लेषण है। इनका सिद्धान्त जनसंख्या का सिद्धान्त है।

(i) आर्थिक विकास की अवधारणा—माल्थस का मानना था कि आर्थिक विकास अपने आप नहीं होता बल्कि जनसाधारण के प्रयासों से ही सम्भव है।

(ii) जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास केवल जनसंख्या में वृद्धि से ही आर्थिक विकास नहीं होता। पूंजी विस्तार से श्रमिकों की मांग बढ़ती है।

(iii) उत्पादन एवं वितरण सही अनुपात में राष्ट्र को विकास के पथ पर ले जाते हैं।

(iv) भूमि, श्रम, पूंजी और संगठन पर राष्ट्रीय आधारित होता है।

इनका सिद्धान्त अनेक प्रकार से पिछड़े देशों के लिये उपयोगी है। स्पेन, पुर्तगाल, हंगरी, टर्की, आयरलैण्ड तथा सम्पूर्ण एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के आर्थिक विकास के कारणों पर प्रकाश डाला है। कृशि के विकास से औद्योगिक क्षेत्र का विकास इन्होंने माना है कि बाधित होता है। गरीबी दूर करने के उपायों में इन्होंने भूमि सुधार पर बल दिया है। अविकसित देशों में आय का स्तर न्यून होता है, उपभोग की ओर रूझान उपभोग को बढ़ाती हैं और वचत का स्तर न्यूनतम। आवश्यक है कि सेवायोजन के स्तर को बढ़ाया जाये, आय वृद्धि हो, और विकास हेतु बचत हो।

3.4.4 जान स्टूअर्ट गिल का सिद्धान्त

गिल 1848 में अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपुल्स आफ पोलिटिकल इकानामी प्रकाशित की। इन्होंने भूमि, श्रमिक और पूंजी को आर्थिक विकास का आधार माना। टूल्स, मशीन, श्रमशक्ति की गुणवता को ही सम्पति माना। गिल माल्युसियन की जनसंख्या सिद्धान्त के समर्थक थे। वर्कशक्ति को ही गिल जनसंख्या मानते रहे और तकनीकी प्रगति के फल से सिक्त होने की श्रमिकों की स्थिति को पूंजी वृद्धि का आधार माना। वेतन वृद्धि पर उन्होंने बल दिया। लाभांस की बचत को पूंजीवृद्धि का आधार माना। लैसे फेयरे में उनका विश्वास था। तकनीकी प्रगति, बचत पूंजीवृद्धि को पिछड़े देशों के विकास में सहायक माना।

3.4.5 कार्ल मार्क्स का सिद्धान्त

मार्क्स और एंजिल्स की 'कम्यूनिस्ट मैनीफेस्टो' और कार्लमार्क्स की 'दास कैपिटल' में साम्यवाद की सामाजिक एवं आर्थिक विकास की अन्तिम अवस्था की भविष्यवाणी का आधार उनका (1) इतिहास का भौतिकवादी विश्लेषण, (2) पूंजीवादी विकास की शक्तियों के प्रति अनादर का भाव, (3) आर्थिक विकास का सुनियोजित विकास में उनकी आस्था प्रमुख थी।

उनका विश्वास था कि इतिहास 'उत्पादन की विधि' और 'उत्पन्न सम्बन्धों' के आधार पर उत्पन्न 'वर्ग संघर्ष' से भरा पड़ा है। शुम्पीटर ने 'मार्क्सवाद' को धर्म माना। मार्क्स 'पूंजीपति' और 'सर्वहारा' समाज को दो वर्गों में देखा। और उत्पन्न संघर्ष को 'सामाजिक क्रान्ति' की संज्ञा दी। वह लाभ जो केवल पूंजीपति ही सहेजते हैं और जो श्रमिकों के श्रम की देन है को उन्होंने 'सरप्लस वैलू' माना जो अन्ततः वर्ग संघर्ष का कारण बनता है।

मार्क्स का सिद्धान्त पश्चिमी दुनिया में पूंजीवाद के विस्तार और सम्बन्धित समस्याओं से सम्बन्धित है।

4.6 शुम्पीटर का सिद्धान्त

सेफ अन्नायस शुम्पीटर की पुस्तक 'थियरी आफ इकनामिक डेवलपमेन्ट जर्मन में 1911 में ाशित हुई जिसका अंग्रेजी रूपान्तर वर्ष 1934 में आया। इनकी 'विजिनेश सायकिल्स' 39 में और 'कैपिटालिज्म, सोशलिज्म और डिमाक्रेसी 1942 में प्रकाशित हुई।

ीटर 'चक्रिय वहाब' को आर्थिक व्यवस्था का प्रारूप मानते हैं और 'नवीनता' पर बल देते और मानते हैं कि नये साहसिक व्यक्ति, नये उत्पाद, नये बाजार, नये तकनीक, नये कच्चे ल से नये उत्पाद, नये बाजार, नये तकनीक, नये कच्चे माल से नये उत्पाद विकास के मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। नयापन लाने वाले कर्ता को आदर्शपुरष मानते हैं। आर्थिक विकास क्रेय बहाव का परिणाम है। बैंकिंग व्यवस्था पर उन्होंने बल दिया और पूंजीवाद से ाजवाद की ओर समाज का झुकाव माना है।

4.7 डब्लू० डब्लू० रोस्टो का सिद्धान्त

प्रोफेसर रोस्टो की पुस्तक 'दी स्टेजेज आफ इकनामिक ग्रोथ, 1960 में 'दी प्रोसेस फ इकनामिक ग्रोथ, 1953 में आयी। रोस्टो आर्थिक विकास के पाँच स्तर स्पष्ट किये :

(i) परम्परागत समाज का स्तर,

(ii) 'टेक आफ' से पूर्व का स्तर,

(iii) 'टेक आफ' का स्तर,

(iv) परिपक्वता का स्तर,

(v) उच्च प्रकार के उपभोक्ता की स्थिति का स्तर,

पहले स्तर को न्यूटोनियम विज्ञान से पूर्व की दशा का स्तर माना जिसमें तकनीक और ज्ञान और भौतिक संसार के प्रति रुझान तो कम न थी परन्तु ज्ञान का अभाव रहा तकनीक ा कमी थी औजारों की कमी थी, कृषि आजीविका का प्रमुख साधन था। सामाजिक संरचना चानात्मक थी परिवार और वंशावली का बोलबाला था।

दूसरा स्तर 'टेक आफ' से पहले का था जिसमें चार शक्तियाँ—नया ज्ञान प्राप्ति जागरण ा अवस्था, नये प्रकार का राजतंत्र, नया विश्व और नया धर्म अथवा सुधार की दशा की ुख भूमिका रही। 'आस्था' और 'शक्ति' का स्थान ' 'तर्क' और 'अविश्वास / संदेह' ने ले ाया। सामाजिक प्रवृत्ति प्रत्याशा, संरचना और मूल्यों में परिवर्तन आया और लगभग सभी त्रों में अनेक परिवर्तन हुए।

तीसरे 'टेक - आफ' के स्तर पर आधुनिकता की शकित्यों का आगमन हुआ। आदतों ार संस्थाओं में भारी परिवर्तन आया। ग्रेट ब्रिटेन में यह स्तर 178-1802 में, फ्रांस में 1830-360 और जापान में 1878-1900 और भारत तथा चीन में 1952 में प्रारम्भ हो गया था।

चौथा स्तर 'परिकल्पना' का आधुनिक तकनीक लगभग सभी संसाधनों के उपयोग में छा गयी थी और विकास धारणीय स्तर पर पहुँच गया था। ग्रेट ब्रिटेन में 1850, यूनाइटेड स्टेटस में 1900 जर्मनी में 1910, फ्रांस में 1910, स्वेडेन में 1930, जापान में 1940, रूस में 1950 और कनाडा में भी 1950 में तकनीकी परिपक्वता का स्तर आ गया था। लोग नगरीय क्षेत्रों में निवास करना, श्रमिक शक्ति का 'स्किल्ड' होना, वेतन वृद्धि और श्रमिक संगठन का बोलबाला, आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा का विकास होना प्रारम्भ हो गया था। औद्योगीकरण बढ़ा और प्रबन्धक नया नया परिवर्तन लाये।

पांचवा अंतिम स्तर 'उच्च उपभोक्ता' के सार्वजनिक प्रारूप का आया। नगरों की ओर प्रवास, स्वचालित, मशीनों, कारों, गृह सामग्रियों उपभोक्ता सामग्रियों का प्रचलन सामने आया। वितरण से मांग का स्तर उच्च होता गया।

3.5 विकास के संस्थागत, प्रतिक्रियात्मक और वैश्विक सिद्धान्त

जीन हर्स (Jeanne Herseh) के शब्दों में शक्ति (Power) ''वह योग्यता है जो वस्तुओं और व्यक्तियों पर अपनी धारणा लादी जाती है।'' (Power is defined, in Jeanne Hersch's words as the ability to impose one's own will on things on human beings.) प्रत्येक मानव कार्यों में शक्ति व्याप्त है। परम्परागत स्थायित्व का सिद्धान्त हो अथवा नियो-क्लाशीसिज्म (Neo-Classicism) हो आर्थिक सोंच में शक्ति का स्थान आधार स्तम्भ स्वरूप वाला है। शक्ति का प्रारुप बहुआयामी, तकनीकी, राजनैतिक तथा सामाजिक है। इसीलिए 'सामूहिक जागरूकता' (Collective Consciousness) की आवश्यकता सरकार को भी शक्ति के संदर्भ में पड़ती है। इसीलिए विकास के नये उपागम में जे० पी० सारत्रे (J.P. Sartre) का कथन राष्ट्र के भीतर और राष्ट्रों में 'बैड-फेथ' विश्व समुदाय के सामने एक चुनौती बना हुआ है। और आज 'हितों के संघर्ष' की स्थिति में संसार अवगत है और अग्रसर भी। आज इसी संदर्भ में संघर्ष का औचित्य ढूढ़ने की आवश्यकता आ गयी है दो सान्य माडल्स वर्गीकरण और खोज की आवश्यकता हेतु केवल दशाओं से अवगत होने हेतु उद्धत किये जा सकते हैं और वे हैं (1) मैक्स वेबर माडेल और दूसरा (2) एंटी-वेबर माडेल।

मॅक्स वेबर माडेल में तीन आदर्श प्रारूपों में औचित्य के आधार पर शक्ति बनती है और आधार हैं परम्परा, उपयोग, और चमत्कार जो पारस्परिक रूप में एक दूसरे का प्रभावित करती हैं और आदर्श प्रारूप निर्मित करतीं हैं। विधिक निर्णयों के साथ औचित्य की अवधारणा विद्यमान होती है तभी निर्णय कार्यान्वित होती है। परन्तु अदालती निर्णय और चुनाव के निर्णय की कार्यविधियाँ अनेक संदेहों से परे होती है पर विचार करना आवश्यक है और औचित्य नैतिकता तो और भी विचारणीय है।

न्टी – वेबर माडेल को तो एक ही बात से अभिव्यक्ति हो जाती कि 'हिन्सा के समापन से जनीति का प्रारम्भ हो जाता है (Politics begins where violence ends). विधिक रूप हिंसा जो संस्थागत जीवन का ही प्रभाग है का गहन अध्ययन करके ही हिन्सा को कम किया जा सकता है। समाज विविध वर्गों का समग्र है और कुछ की बातें 'कहीं' और कुछ की अनकही' रह जाते हैं। संस्थागत जीवन में विवेचनाओं से अनेक बातें उभरकर सामने आती । इस माडेल सांस्कृतिक परिवर्तन की दशायें प्रशस्त होती हैं। सांस्कृतिक आदान प्रदान बढ़ने व्यक्ति की आन्तरिक दशायें सामने आयेगी प्रत्याशायों बढ़ेगी और विकास का स्तर र्वभौमिक होगा। आर्थिक और सामाजिक विकास की अस दशा को समाज की आत्मा की ागृति की अवस्था कह सकते हैं। यूनेस्को ने अपने 1977-82 के योजना के पृ० 64 पैराग्राफ 106 पर लिखा है कि 'More and more, development is thought of as an awak-ning of the very soul of society.'

त: आज का युग है, मानव क्षमताओं के पहचाननें की, पूंजी निवेश, पूंजी निर्माण, रचनात्मक अभिवृद्धि, निर्माण, उत्पादन में वृद्धि, उत्पादन मशीनों के आयात निर्यात, उत्पादन वितरण की। बहुआयामी अभिवृद्धि से वैश्विक आत्मनिर्भरता शान्ति प्रक्रिया, पर्यावरण धार, मानव संसाधनों का सदुपयोग और प्राकृतिक संसाधनों का सांस्कृतिक उपयोग होगा। रस्परिक सहयोग की दशाओं की वृद्धि होगा और विश्व की नयी विकास की नीति का ाधार होगा। सबका सर्वाधिक विकास। नयी संस्थायें, नयी कम्पनियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनिया, हुराष्ट्रीय तकनीकी कम्पनियां बर्ल्ड बैंक, बैंकिंग व्यवस्था, सूचना तकनीकि का आदान-दान, संयुक्त साहसिकता, वाणिज्य और उत्पादन सहयोग और प्रतिभागिता, ऋण, तकनीकी ादान प्रदान, सभी का नयी नीति से क्रियान्वयन वैश्विक संरचना का विकास चरम सीमा पर हुँच सकेगा 1980 में फर्दीनन्द टानीज की जर्मनी में योगदान सामाजिक सम्बन्धों को विकास संदर्भ में दो भागों में (1) औद्योगिकरण के पूर्व और (2) औद्योगिक समाजों के रूप में र्थात् गेमीन्सैफ्ट और जेलेससैफ्ट प्रारूपों में देखा जा सकता है पहले में एकता और दूसरे में नेकता का प्रकार विद्यमान होना। मार्क्स, वेबर, दुर्खीम, लिन्डन, जोम्बाई ने भी इसी ाधारभूत बात को स्पष्ट किया और डैनियल लर्नर ने अपनी पुस्तक 'दी पासिंग आफ डेशनल सोसायटी में परम्परागत समाज को अ-सहभागी और आधुनिक समाज को सहभागी माज माना। परन्तु टानीज की घनिष्टता। सम्बन्ध, साथ-साथ रहने का सम्बन्ध गेमीन्सैफ्ट समुदाय) की विशेषता है और जेसेलसैफ्ट (समाज) सार्वजनिक जीवन का प्रतिमान है जिसे सार माना जा सकता है। इसी प्रकार का जोड़े वाली तुलना टालकट पारसन्स का पैटर्न रियेबुल्स का भी है। टालकट पारसन्स, इडवर्ड शिल्स, नेन जो स्मेल्सर, राबर्ट एफ० बेल्स ने ामाजिक विकास की बात की। बेल्स की अर्न्तक्रिया की प्रक्रिया का विवरण तीन प्रकार की भिन्नताओं (1) सामूहिक कार्यों की विभिन्नता (2) विभिन्न कार्यों में लगे व्यक्तियों की भिन्नता, और (3) कार्य की दशा में समय की विभिन्नता, से सम्बन्ध रखता है।

मेरिकन मूल्यों की प्रवृति से सम्बन्धित कुछ बातें क्लाइड क्लूक्खोन (Clyde Kulckhohn) की हैं वे निम्नांकित है :

(1) ''सामूहिक मूल्यों'' की तुलना में व्यक्तिगत मूल्य का महत्व के हो रहे हैं भले ही वे एक संगठन के, एक समुदाय के, एक सामाजिक वर्ग के, किसी एक व्यवसाय, एक अल्पसंख्यक अथवा एक हित परक समूह के ही क्यों न हों।

(2) ''मनोवैज्ञानिक मूल्यों'' जैसे मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी, शिक्षा, बाल प्रशिक्षण से सम्बन्धित मूल्यों में वृद्धि हो रही है।

(3) ''सम्मानीय और सुरक्षा'' के मूल्य ''भावी सफलता'' के मूल्य को पछाड़ रहे हैं।

(4) सौन्दर्य सम्बन्धी मूल्यों की वृद्धि हुई है।

(5) संस्थागत धार्मिक मूल्य बढ़े हैं।

(6) ''विजातियता'' अमेरिकन मूल्य व्यवस्था को संगठित करने लगी है।

(7) वाह्य मूल्यों को बढ़ावा मिल रहा है।

तात्पर्य है कि क्लूक्खोन और बेल की मान्यता है कि सामूहिक कृत्यों से समयान्तर परिवर्तन हो रहे हैं। जो स्तरों पर होती है। स्मेलरभी मानते हैं कि मूल्यो में परिवर्तन हो रहे हैं और वे संस्थागत जीवन के भाग बनते जा रहे हैं।

डैनियल लर्नन की ''पसिंग आफ ट्रेडिशनल सोसाइटी''

स्मेलक ने हँ संरचनात्मक - संस्थागत अर्थों में औद्योगिक युग के आगमन की बात कही हैं डैनियल लर्नर ने जीवन के झुकावों में मनोवैज्ञानिक-सांस्कृतिक झुकाव दर्शाया है जिनसे मूल्यों की प्राथमिकताओं में परिवर्तन आया है। ''ग्रामीण ग्रोसर आफ बालगाट पर आधारित फिल्म की कहानी ग्रोसर को नये संसार की झलक देकर नये ग्रोसरी स्टोर बनाने की स्वप्न दिखा देता है और अनेक इच्छायें भर देता है। कल्पना और इच्छा पर आधारित एक वास्तविक ग्लोसरी स्टोर ''लोहे की शीटों की दीवाल वाला, ऊपर से नीचे तक और अगल बगल भी वैसा ही, जिसपर अनेक गोल सन्दूकें रखी हैं, साफ सुथरा और इस प्रकार से सुसज्जित जैसे परेड के सिपाही हों।'' इसमें भविष्य की इच्छा की पूर्ति की मनोकामना है। लर्नर का सिद्धन्त धर्मनिरपेक्ष मूल्यों का आधुनिकीकरण है। मानसिक क्षितिज के आकार प्रकार में बढ़ोतरी अनुभव के क्षितिज में भी वृद्धि करता है ऐगे आने वाले कल की आवश्यकताओं से अवगत कराता है। इसी को मनो-सांस्कृतिक आधुनिकीकरण लर्नर मानते हैं। जब ये इच्छायें संस्थागत, आर्थिक, जनांकिकीय कारकों के कारण संतोष नहीं दे पाती तो ''बढ़ते हुए असंतोष और कुण्ठा की क्रान्ति'' उत्पन्न होती है।

मैक्लीलैण्ड की ''अचीमिग सोशायिटी''

मैक्लीलैण्ड 'प्राप्ति' प्रेरक अध्ययन 'मूल्यों' और ' आर्थिक विकास' में सम्बन्ध दर्शाये हैं। मैक्सवेबर से लेकर लगभग सभी विचारकों ने माना संस्कृति विशेष वाले आर्थिक विकास

ी ओर अधिक उन्मुख होते हैं। मैक्लीलैण्ड अपने 'अचीमिंग सोसाइटी में मनो-सांस्कृतिक ारकों को आर्थिक विकास हेतु अधिक महत्व दिया है। ये मनोवैज्ञानिक कारक "प्राप्ति की रमावश्यक" तत्व हैं। उनका मानना है कि विकास की दर / गति का प्राप्ति की प्रेरणा से त्यन्त घनिष्ठ सह-सम्बन्ध है। इतिहास भी इसकी पुष्टि करता है। मैक्लीलैण्ड, अटकिंसन, लार्क और लावेल ने एक विधि विकसि की (अपनी पुस्तक 'दी अचांममेन्ट मोटिंग, न्यूयार्क : अपिल्टन-सेन्चुरी-क्रोफ्टस, 1953) जिससे प्राप्ति की आवश्यकता का पता लगाना ौर मापन हो सकता था अर्थात् प्रतियोगिता की स्थितियों से आगे बढ़ने की आवश्यकता मझना। इस विधि का नाम 'यूजिंग थिमैटिक एयरसेप्सन टेस्ट' रखा जो व्यक्ति की कल्पना ी उड़ान सम्बन्धी विचार सीमित समय में कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त हो जाता है।

'प्राप्ति" के सम्बन्ध में अध्ययनों के निम्नांकि निष्कर्ष स्पष्टीकरण के योग्य है :-

1) निश्चित संस्कृति के कुछ सामाजिक - आर्थिक समूह दूसरों की तुलमा में अत्यधिक प्राप्ति - प्रेरणा वाले होते हैं।

2) अपने इतिहास के दौरान सभ्यता विशेष के लोगों की विशेषता रही कि उनकी प्राप्ति की प्रेरणा अत्यधिक अंशो वाली रही।

3) कुछ संस्कृतियों में प्राप्ति की प्रेरणा अन्य संस्कृतियों की तुलना में अधिक सह-सम्बन्धित है।

4) कई धर्मों से सम्बन्धित समूह में प्राप्ति के प्रति अधिक प्रेरणा होती है और प्राप्ति की कल्पना (achievement imagery) कुछ धार्मिक व्यवस्थाओं में अन्यों की अपेक्षाकृत अधिक होती है।

प्राप्ति की कल्पना' भौतिक पर्यावरण से भी सम्बन्धित होती है। भौतिक पर्यावरण में परिवर्तन प्राप्ति की कल्पना' और प्राप्ति की प्रेरणा में भी परिवर्तन लाता है। 'अवसर संरचना' से भी ये ाली भाँति सम्बन्धित होते हैं। ऐसे समाजों में जहाँ कट्टरता के कारण परिवर्तन सम्भव नहीं ोता वहाँ लोग 'निराशा' और 'भाग्य में विश्वास' करना प्रारम्भ कर देते हैं। ऐसे समाजों के वकास से ही सभी का विकास सम्भव होगा।

3.6 सारांश

वकास के सिद्धान्तों के अन्तर्गत, आदम स्मिथ, रिकार्डो, माल्थस, मिल, मार्क्स, शुम्पीटर, रोष्टो ादि अर्थशास्त्रियों के आर्थिक विकास के सिद्धान्तों से अवगत कराने का प्रयास किया गया । विकास के संस्थागत, प्रतिक्रियात्मक और वैश्विक सिद्धान्तों के अन्तर्गत जीन हर्स, क्सवेबर, टानीज, क्लूकहान् डैनियल लर्नर, मैक्लीलैण्ड आदि के विचारों का विकास से म्बन्ध दर्शाने का प्रयास किया गया है। यूनाइटेड नेशंस की भूमिका से सम्बन्धित पर्यावरणीय शाओं पर भी विचार व्यक्ति किया गया है। टालकट पारसन्स, शिल्स, स्मेलशर, बेल्स के

विचारों से भी संदर्भों को जोड़ने का प्रयास किया गया है। सारांश में यह भी व्यक्त किया गया है कि पिछड़े देशों के सर्वमुखी विकास से ही संसार का विकास सम्भव है।

3.7 संदर्भ ग्रंथ/उपयोगी पुस्तकें

1. एम० एल० झिंगरन : दी इक्नामिक्स आफ डेवलपमेन्ट एण्ड प्लानिंग विकास पब्लिकेशंस (पी.) लिमिटेड, दिल्ली, 1997.
2. कुलबीर सिंह : भारत में सामाजिक परिवर्तन अनु प्रकाशन, मेरठ, 1976.
3. हंस वान गिंकेल आदि (इडि०): ह्यूमन डेवलपमेन्ट एण्ड दी इन्वायरनमेन्ट (चैलेन्जेज) फार दी यूनाइटेड नेशन्स इन दी न्यू मिलैनियम, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एण्ड नयी दिल्ली, 2003.
4. बी. बी. मिश्रा : दी इन्डियन मिडिल क्लाशे; देअर ग्रोथ इन मार्डन टाइम्स (लन्दन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1961)
5. नेल जे. स्मल्सर : दी सोशिआलोजी, आफ इकनामिक लाइफ (इन्गलवुड क्लिफ्स, न्यू जेकेसी; प्रेंटिस हाल, इनक, 1963).
6. मैक्सवेबर : दी प्रोटेस्टेन्ट एथिक एण्ड दी स्पिरिट ऑफ कैपिटालिज्म ट्रांसलेटेड, बाइ जार्ज सिम्पसन (ग्लेन्को, इलिनोस : दी फी प्रेस, 1960)
7. डैविड सी. मैक्लीलैण्ड : दी अचीमिंग सोसायटी (प्रिंस्टन, एन. जे. पी. वैन नास्ट्रैण्ड कम्पनी, इन्क. 1961)
8. डैविड रीजमैन विथ नाथान ग्लेजर एण्ड रीयूल डेनी, दी लोन्ली क्राउड (न्यू हेवैन : येल युनिवर्सिटी प्रेस, 1963.
9. डैनियल लर्नर : दी पासिंग आफ ट्रेडिशनल सोसायिटी (न्यूयार्क : जी फ्री प्रेस, 1958)
10. मैक्सवेबर : सोशिआलोजी आफ रिलिजन, (बोस्टन, बीकन प्रेस, 1963) ट्रांसलेटेड बाइ इफ्रेम फिस्काफ.

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

(1) दीर्घ-उत्तरीय प्रश्न

अ. विकास किसी आर्थिक सिद्धान्त की विवेचना कीजिये।

ब. वेबर के विकास के सिद्धान्त में आदर्श प्रारूप के औचित्य पर प्रकाश डालिये।

स. रोस्टो के विकास के स्तरों को स्पष्ट कीजिये।

द. विकास के सिद्धान्त के संदर्भ में कार्ल मार्क्स के वर्ग-संघर्ष की विवेचना कीजिये।

(2) लघु-उत्तरीय प्रश्न

य. विकास के वैश्विक सिद्धान्त पर प्रकाश डालिये।

र. शुम्पीटर 'नवीनता' को विकास से किस प्रकार सम्बन्धित करते हैं ?

ल. विश्व की नयी विकास नीति क्या है ?

व. जनसंख्या वृद्धि और आर्थिक विकास के सम्बन्ध दर्शाइये।

(3) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(i) जनसंख्या का सिद्धान्त किसका है ?

श. मिरडाल

ष. माल्थस

स. कीन्स

ह. गिल

(ii) वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त किसका है?

क. शुम्पीटर

ख. मैक्सवेबर

ग. आदम स्मिथ

घ. कार्ल मार्क्स

(iii) आर्थिक विकास के स्तरों को किस विचारक ने लिखा है ?

च. कार्ल मार्क्स

छ. मिरडाल

ज. रोस्टो

झ. गिल

(iv) 'सर्वहारा' वर्ग से तात्पर्य है कार्ल मार्क्स का ?

ट. पूंजीपति

ठ. किसान

ड. व्यापारी

ढ. श्रमिक

3.9 प्रश्नोत्तर

(i) (ष)

(ii) (घ)

(iii) (ज)

(iv) (ढ)

इकाई 4 विकास के मॉडेल

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 विकास के मॉडल प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषा

4.3 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

4.4 पूँजीवादी विकास के प्रारूप

4.4.1 जोन मेयनार्ड कीन्स मॉडल

4.4.2 टालकाट पारसन्स मॉडल

4.4.3 मैक्स बेवर का मॉडल

4.5 सामाजिक विकास के प्रारूप

1.5.1 उद्विकास (अर्थ एवं परिभाषा)

4.5.1 कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिच इन्जेल्स का विकास का प्रारूप

4.5.2 आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, विनोवा भावे, महात्मा गाँधी की वैकल्पिक मॉडल

4.6 गाँधीवादी विकास का प्रारूप

4.7 सारांश

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 प्रश्नोत्तर

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

* विकास के माडेल/ प्रारूप का अर्थ जान पायेंगे एवं परिभाषा कर सकेंगे।
* पूँजीवादी विकास के प्रारूप को अनेक विद्वानों के विचारों के माध्यम से उल्लेख कर सकेंगे।

* सामाजिक विकास के प्रारूप को भी कुछ विद्वानों के विचारों के माध्यम से उल्लेख कर सकेंगे।

* गाँधीवादी विकास का प्रारूप का विवरण कर सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना

टालकाट पारसन्स, मैक्सवेबर, कार्ल मार्क्स, डैनियल लर्नर, मैन्क्लीलैण्ड आदि के विकास के प्रारूपों से ज्ञात होता है कि विकास का सम्बन्ध पूंजीवादी व्यवस्था के घनिष्ठ रूप से प्रभावित है जिसमें मनोवैज्ञानिक, भौतिक पर्यावरण, औद्योगिक क्रियाकलाप और वर्गीय आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, संस्थागत स्थितियों का महत्वपूर्ण स्थान है। समाजवादी प्रवृत्ति का विकास का प्रारूप का आधार अनेक प्रकार की समानतायें हैं जिनके संदर्भ में आचार्य विनोबाभावे, नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण के योगदान हैं। गांधीवादी विकास का प्रारूप ग्रामीण उद्योगों, कुटीर उद्योगों और सर्वोदयी है।

4.3 विकास के माडेल/प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषा

विकास के प्रारूप का आर्थ है कि विभिन्न प्रकार के सामाजिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत विकास का प्रारूप क्या होगा ? अर्थात् विकास का आधार, विकास की प्रमुख विशेषतायें, विकास का सामाजिक, आर्थिक संरचना, प्रभाव, परिवर्तन और परिणाम स्पष्ट करना। विकास के प्रारूप को सुनिश्चित करने में व्यवस्था विशेष की अभिरूचि, रूझान, समाज में व्याप्त दशा, शासन की नीति, प्रकार आदि सम्मिलित प्रक्रियायें और दशायें सम्मिलित हैं जो विकास के प्रारूप को कार्यकारी बनाने में सहायक होती है। अत: विकास के विशिष्ट प्रारूप को अवस्था विशेष के संदर्भ में ही परिभाषित किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप पूंजीवादी से सम्बन्धित विकास का प्रारूप पूँजीवादी व्यवस्था को विकसित करने में सहायक होगा और इसी प्रकार अन्य प्रकार की व्यवस्थायें भी परिभाषित की जा सकती है।

4.4 पूंजीवादी विकास के प्रारूप

आर. एफ. हेराड, ई. डोमर, जे. आर. हिक्स, आर. सोलो आदि के विचार केनेसियन माडेल पर आधारित हैं अत: केनेसियन माडेल का विश्लेषण आवश्यक हो जाता है।

4.4.1जोन मेयनार्ड कीन्स माडेल – ए. सिसिल पिगू के सामान्य एकरूपता के सिद्धान्त पर आधारित जे. एम. कीन्स के माडेल की प्रमुख विशेषतायें हैं :

(1) धन ऐसे पर्यावरण में भरण करता है जिसमें उसके प्रभाव का त्वरित विस्तार होता है।

(2) ब्याज की दर से बढ़ने और घटने पर विकसित पूंजी वाली आर्थिक व्यवस्था में अनुपयुक्त पूंजी का उपयोग बढ़ता है।

(3) अनुपयुक्त संसाधनों का भी उपयोग होने लगता है जैसे प्रशिक्षित श्रमिकों, उत्पादन के मशीनों आदि का उपयोग होने लगता है।

(4) ऋण का भुगतान, खर्च से बचत, आयात में वृद्धि होती है।

(5) अधिक धनराशि और अधिक धनराशि का आगमन होता है।

(6) अनिक्षित बेरोजगारी विकास में बड़ी बाधा नहीं बनती

(7) निर्यात की बहुलता पूंजी निवेष जैसी प्रभावी बन जाती है।

कीन्स के माडेल की सफलता सम्बन्धी उपरोक्त बातों का विकासशील देशों में नेम्नलिखित प्रभाव देखे जा सकते हैं :

(1) धन के आगमन का प्रभाव अनेक प्रकार का विस्तार प्राप्त करता है।

(2) अनुपयुक्त संसाधनों, का उपयोग और श्रमिकों को प्रशिक्षित करना और उत्पादन यंत्रों की बढ़ोत्तरी करनी होती है।

(3) संरचनात्मक कारकों के कारण विकासशील देशों के ऋणग्रस्तता बढ़ती है, पूर्व-पूंजीवाद, प्रकार की वचत होती है और आवश्यक सामग्रियों का (जैसे भोजन पदार्थों) आयात करना पड़ता है।

(4) कृषि उत्पादन पर भार बढ़ता है।

(5) आयात की वृद्धि होती है।

कीन्स का माडेल विकसित देशों के लिये तो है परन्तु विकासशील देशों के सन्दर्भ में उतना प्रभावी इस लिये नहीं माना जा सकता क्योंकि विकसित देशों से विकास हेतु ही उनका माडल अधिक महत्वपूर्ण है।

4.4.2टालकाट पारसन्स माडेल / टालकाट पारसन्स एक्शन माडेल—

पारसन्स का मानना है कि परिवर्तन दो प्रमुख आधारभूत प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है :

(1) कार्य करने की प्रक्रिया जिनसे बाधायें दूर की जाती हैं और एकीकरण वाली संरचनात्मक व्यवस्था को जैसे का तैसा बना रहने दिया जाता है। अनुकूलन की प्रक्रिया में तेजी लायी जाती है।

(2) सीख की प्रक्रिया से व्यवस्था से संरचनात्मक परिवर्तन लाया जाता है।

पारसंस का अमेरिकन समाज की मान्यता सम्बन्धी तार्किक बातें निम्नांकित है:

(1) प्राप्ति हेतु प्रशिक्षण,

(2) स्वतंत्रता, दायित्वबोध और उच्चशिखर की क्षमता,

(3) परिवार, मित्रता आदि से कार्य की दशाओं के प्रति अधिक कर्त्तव्य बोध,

(4) दायित्वबोध में तात्पर्य है मनोवैज्ञानिक शक्ति के आधार पर आन्तरिक एवं वाह्य दबावों पर नियंत्रण रखने की निर्णय रखने की क्षमता।

पारसंस सीरोकिन, रीजमैन और क्लूकोहन से सहमत नहीं है।

4.4.3 मैक्स वेबर का माडेल— वेबर का मानना है कि प्रत्येक संस्कृति के लोग मशीन युग की आवश्यकतानुसार अपने प्रकार से सक्रिय रूप से तादाम्य स्थापित कर कार्य करेंगे। विवेकीकरण में उनका अटूट विश्वास था जिन पर आधुनिक व संस्थागत कार्य होंगे और देश विास के पथ पर अग्रसर होगा। आधुनिकता बहु-आयामी, बहु-उद्देश्यीय होगी। सुधार आधार होगा। सभी विकास का। विचार स्वतंत्र परिर्वतनीय प्रकार का होगा। पश्चिम में पूंजीवाद के विस्तार का आधार प्रोटेस्टेन्ट नीतिसार है। औद्योगीकरण विभिन्न सामाजिक, आर्थिक संस्थाओं का सृजन करेगा।

वेबर के पूंजीवाद के विश्व इतिहास की व्याख्या की वोल्फगैण्य मोमसेन तथा रीनहार्ड बेनेडिक्स ने आलोचना भी की और कहा कि उन्हें वैज्ञानिकर और तकनीकी प्रगति के बने रहने पर शंका थी।

4.5 समाजवादी विकास के प्रारूप

समाजवादी विकास के प्रारूप के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि इसका आधार नये प्रकार के विकास की मांग से सह-सम्बन्धित है जिसके उद्देश्य और तरीके अथवा ढंग दोनों बहु-आयामी हैं। इसका पूरा जोर विकासशील और औद्योगिक देशों के सम्पूर्ण सामाजिक, राजनैतिक आर्थिक संरचनात्मक ढांचे को पूरी तरह से पुनः संरचित करने पर रहा।

4.5.1कार्ल मार्क्स और फ्रीडरिच इन्जेल्स का विकास का प्रारूप — प्रथम विश्व युद्ध तक के अविकसित देशों के बारे में उनकी सोच का दायरा स्पष्ट था। इंग्लैण्ड के औद्योगिक पूंजीवाद जिसका प्रभाव योरोप के सभी देशों पर था उनके पर्यवेक्षण और ऐतिहासिक सोच की विषयवस्तु थी। मार्क्स की सोच का आधार उनका दर्शन था कि औद्योगिक देशों के सामाजिक और आर्थिक रूप से त्रसित, शोषित और पिछड़े लोगों को उनकी गिरी हुई दशा से कैसे मुक्त किया जा सकता है? मार्क्स आदर के पात्र इसलिये बने कि मानव को उसके दुःखों, कष्टों, कमियों से कैसे मुक्त किया जा सकता है। उनका तर्कसंगत विचार कि भौतिक वास्तविकताओं से मुक्ति की शक्ति सह प्रेरणा स्रोत में ही है। इस द्वन्द का स्वरूप था कि क्रिया और उसकी प्रतिक्रिया अनुभागों में संरचना में परिवर्तन तो लाते हैं परन्तु परिणाम में उत्पन्न मात्र पूर्व अनुभागों के टुकड़ो पर ही भिन्न प्रारूप में देखी

ा सकती है। मार्क्स हीगल के भौतिक जीवन से सम्बन्धित विचार से विचार समता रखता । पूंजीवाद का समापन समाजवाद के विविध प्रकारों में 'अ-पूंजीवादी समाज' के लिए द्वार ोल देता है और ऐसी व्यवस्था उत्पन्न होती है जो शोषण, अलगाव और दबाव से मुक्त हो। ूंजीवाद अपने विकास से ही अपने समापन का कारण बनता है क्योंकि सरप्लस मूल्य, ूंजीनिर्माण फिर लाभ दर की कमी और उनके आपस की टकराहट से पूंजीवाद अन्तिम स्थिति ुंजित कर देती है।

.5.2आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, विनोवा भावे, महात्मा गाँधी ा वैकल्पिक माडेल— आचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण का समाजवाद सबको समानता' बिना किसी भेद-भाव के, बिना किसी जाति-पाति-धर्म, के बन्धन को प्रदान करता । सभी को अपने अधिकार और कतव्यों का निर्वाह करना समाज द्वारा अपेक्षित है। आर्थिक, ामाजिक न्याय का अधिकार सभी का है। क्षेत्र, भाषा, प्रजाति, रंग, लिंग आदि अनेक आधारों र कोई किसी से अलग नहीं समझा जाना चाहिये। अपने व्यक्तिगत - सामाजिक - राजनैतिक ं सभी को अपना विकास करने का अवसर मिलना चाहिए। आजीविका अर्तिक करने का वसर सभी को प्राप्त होना अनिवार्य है। शिक्षा, दीक्षा, रोजगार, तीज त्योहार, कर्मकाण्ड का पना अधिकार सभी जातियों, धर्मों व्यक्तियों, प्रत्येक क्षेत्र के लोगों को समानता के आधार पर पलब्ध कराना समाज, सरकार का कर्तव्य है और कल्याणकारी राज्य का दायित्व भी।

आचार्य विनोवा भावे आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बनाने के लिए भूमिहीन किसानों वं मजदूरों में हजारों एकड़ भूमि देश के भू-स्वामियों से लेकर वांटा ताकि उस भूमि में उन्हें पनी आजीविका अर्जित करने में कठिनाई न हो और वे अपना तथा अपने आश्रितों एवं रिवारों की देखरेख कर सकें।

.6 गाँधी वादी विकास का प्रारूप

ांधी सत्य अहिंसा के पुजारी थे और दरिद्र नारायण की सेवा में विश्वास करते थे। ग्रामीण एवं ामों में रहने वाली जनसख्या की शक्ति से परिचित थे जिन्हें उन्होंने स्वतंत्रता का अर्थ मझाया और आवश्यकता बतायी तथा जिनके विकास और आत्मनिर्भरता के लिए सदैव कार्य रते रहे और जिन्हें अपने सभी आन्दोलनों में सहभागी बनाया और स्वतंत्रता की लड़ाई बिना किसी हथियार और हिंसा के लड़ी और ब्रिटिश साम्राज्य की नीव हिलाकर देश को स्वतंत्र राया।

ात्मबल का सहारा लेकर जनजागरण का कार्य किया। समाज में कुरीतियों को दूर करने का ार्य किया। सबकी अनिवार्य शिक्षा विशेष कर बालकों और महिलाओं की शिक्षा पर बल दया। लोगों में अपने अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया और विकास की खण्ड ज्योति जलायी।

ग्रामीणों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के लिए कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया। कृषि उप्पादन बढ़ाने हेतु किसानों और श्रमिकों को प्रशिक्षण प्राप्त करनें की सलाह दी। चरखा कातने का प्रशिक्षण घर-घर में चलाकर लोगों में आर्थिक उत्साह भरा। शारीरिक श्रम पर बल देते हुए उसे आर्थिक रूप से सम्पन्नता की ओर ले जाने का प्रयास किया।

सामाजिक बुराइयों में छुआछूत, महिला, उत्पीड़न, अन्ध विश्वास, दहेज प्रथा, अशिक्षा, आदि दूर करने का प्रयास किया। सामाजिक मूल्यों के प्रति लोगों में सत्य, अहिंसा इमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा, नैतिकता का भाव भरा। स्वास्थाय के प्रति लोगों को जागरूक किया। सामाजिक एकता बढ़ाने पर ही सामाजिक विकास सम्भव होगा। सामुदायिक विकास हेतु सभी सम्प्रदायों को मिलजुल कर राष्ट्रीय एकता बढ़ाने पर जोर दिया।

सर्वोदय की अवधारणा गांधी की समाज की अनुपम देन है। वे सबका विकास चाहते थे जिसके लिये हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया। किसी भी अन्याय से समाज का अहित ही होगा। व्यक्ति, समूह, समाज, समुदाय, देश और विश्व के हित में होगा कि सभी समान भाव से सबके साथ सद्भाव रखें। बलपूर्वक सहयोग प्राप्त नहीं किया जा सकता। सहयोग प्राप्त करने के लिये सहभागी होना आवश्यक है इसीलिये उन्होंने सर्वोदय के लिए हृदय परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दिया। हिंसा से दूर रहकर अहिंसा और सत्य का मार्ग अपना कर ही सर्वोदय प्राप्त किया जा सकता है।

गांधी की 'ट्रस्टीशिप' की अवधारणा विश्वविख्यात है। सम्पत्ति के मालिक को मानना चाहिये कि वे सम्पत्ति के स्वामी न होकर उसके ट्रस्टी अथवा देखभाल एवं सुरक्षा करने वाले हैं क्योंकि समाज के प्रति उनके दायित्व हैं कि सम्पति का लाभ उसे भी मिले जो धनहीन और निर्धन है। समाज अपव्यय दूर करने का भी उन्होंने प्रयास किया और आवश्यकतानुसार उपभोग कर बल दिया।

गांधी सभी धर्मावलम्बियों को समानता के आधार पर अन्य धर्मों को आदर और सम्मान देने की बात कही। गीता, बाइबिल, कुरान आदि सभी धर्म ग्रन्थों का आदर करने की बात की और उनसे प्रभावित भी हुए। बौद्ध धर्म, जैन धर्म के अभिलेखों की चर्चा सदा करते रहें।

गांधी की अफ्रीका की यात्रा और निवास उनके जीवन में जागृति का ऐसा संचार किया कि मानवता के प्रति उनका प्रेम अद्वितीय रहा और अपने जीवन काल में ही उन्हें समाज से इतना आदर मिला कि देश के ही नहीं विश्व के महान नेता और विचारक तथा अग्रदृष्टा बन गये। भारत तो उन्हें 'महात्मा गांधी' एवं 'राष्ट्रपिता' सम्बोधित करता है। उनकी अमर आत्मा मानव कल्याण के प्रति सदैव समर्पित है। देश के विकास में उनका योगदान अपरिमित है।

4.7 सारांश

विकास का माडेल अथवा प्रारूप को पूंजीवादी, समाजवादी, वैकल्पिक, गांधीवादी आदि प्रकारों के अन्तर्गत व्याख्या की गयी है और उक्त व्यवस्थाओं में उनके महत्वों और उपयोग

विचार करते हुए विभिन्न विचारकों से सम्बन्धित विकास के माडेल / प्रारूप प्रस्तुत किया
ा है। अर्थात् विकास का आधार, प्रमुख विशेषतायें, विकास का आर्थिक, सामाजिक
चनात्मक प्रभाव, परिवर्तन, परिणाम पर कींस, टालकाट पारसंस, मैक्स वेबर, मार्क्स आचार्य
न्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, विनोवाभावे, महात्मा गांधी आदि के विकास के माडेल /
रूप का विवरण व्यक्त किया गया है। डैनियल लर्नर, मैक्सीलैण्ड के माडेल जो विकास के
रूपों से सम्बन्धित हैं की विवेचना की गयी है।

न्स के विकास के माडेल की प्रमुख विशेषताओं के साथ उनका पिछड़े और विकासशील
ों में प्रभावों की विवेचना की गयी है। टालकाट पारसंस के विकास के प्रारूप उनकी क्रिया
सिद्धान्त का सामाजिक व्यवस्था के विकास अनुकूलन की प्रक्रिया, सीख की प्रक्रिया, प्राप्ति
प्रशिक्षण की आवश्यकता, स्वतंत्रता, दायित्वबोध, उच्चशिखर की क्षमता, कार्य दशाओं के
त कर्त्तव्य बोध, दायित्व बोध, मनोवैज्ञानिक शक्ति से आन्तरिक एवं बाह्य दबाओं पर
यंत्रण आदि की विवेचना की गयी है जिनका विकास से गहन सम्बन्ध है।

मसवेबर के विकास के माडेल के संदर्भ में उनके विचार उनकी 'प्रोटेस्टेन्थ एथिक' से सह-
म्बन्धित किया गया है जिसमें रूझान, समय-परिप्रेक्ष्य, कार्यकुलश का विवरण विकास प्रारूप
। आधार मानकर दिया गया है। जिसे पूंजीवाद का घनिष्ट सम्बन्ध है। मैक्सवेबर की धारणा
कि विवेकीकरण, आधुनिकता, औद्योगीकरण, सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक विकास
। आधारशिला हैं जिनका विकास प्रोटेस्टेन्ट नीतिशार पर आधारित है।

माजवादी विचारों के आधार पर समाजवादी विकास प्रारूप आधारित है। समाजवादी विकास
ो प्रकार के विकास की आवश्यकता और मांग से सह-सम्बन्धित माना गया है और इसका
ृश्य और आधार बहु-आयामी है जिसमें औद्योगिक देशों की सामाजिक, आर्थिक,
जनैतिक संरचनायें पूरी तरह नये ढंग की होंगी और पुन: संरचित प्रकार की होंगी जिनका
ाधार होगा समानता, एकरूपता, सुऔसर की प्राप्ति और मानव कल्याण। शोषण में मुक्त
माज की स्थापना इसका परम लक्ष्य होगा।

ार्लमार्क्स के विचारों पर आधारित विकास का प्रारूप पूंजीवादी व्यवस्था के समापन के साथ
प्रारम्भ होने लगती है और समाजवाद की ओर उन्मुखता में वृद्धि हो जाती है। पूंजीवाद का
स उसके विकास में ही निहित है जो आर्थिक संकट उत्पन्न करने में सहायक होकर
माजवाद के विकास का मार्ग प्रशस्त कर देती है। स्पष्ट शब्दों में मार्क्स व्यक्त करते हैं कि
जीवाद अपने विकास से ही अपने समापन का कारण बनता है क्योंकि सरप्लस मूल्य
जीनिर्माण, फिर लाभ दर की कमी और इनके आपस की टकराहत से उत्पन्न संकट से
जीवाद अपनी अन्तिम स्थिति सृजित करती है।

ाचार्य नरेन्द्र देव, जय प्रकाश नारायण, विनोबा भावे और गांधी के वैकल्पिक विकास के
डेल समानता और सर्वोदय पर आधारित समाज का विकास लाने पर बल देते हैं जिससे
भी को सुअवसर प्राप्ति का वास्तविक लाभ प्राप्त हो सके, और समानता पर आधारित समाज

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर सामाजिक रूप से सहभागी और राजनैतिक तथा सांस्कृतिक रूप में जागरूक और दायित्वबोध से सक्रिय हो सके और अपने विकास के लिये दूसरों पर आश्रित न रहे। शोषण मुक्त समाज समानता पर आधारित होगी और आत्मनिर्भरता उसके विकास का प्रमुख उपागम होगा। धनी-गरीब की खाई समाप्त होकर विकास में सबकी सहभागिता सुनिश्चित करने में सफल होगी। कुरीतियों से बच कर समाज शिक्षा, प्रशिक्षण के माध्यम से बाल कल्याण, महिला उत्थान, अछूतोद्धार, अन्याय, ऊंच नींच की भावना से मुक्त हो पायेगा तभी साकार हो सकेगा गांधी के 'सर्वोदय' की कल्पना।

4.8 संदर्भ ग्रंथ/उपयोगी पुस्तकें

1. मैक्सवेबर : दी प्रोटेस्टेन्ट एथिक एण्ड दी स्पिरिट ऑफ कैपिटालिज्म (ट्रांसलेटेड, बाइ जार्ज सिम्पसन) आफ कैपिटालिज्म, (ग्लेन्को, इलिनोस : दी फी प्रेस, 1960)।
2. डैविड सी. मैक्लीलैण्ड : दी अचीमिंग सोसायटी (प्रिंस्टन, एन. जे. पी. वैन नास्ट्रैण्ड कम्पनी, इन्क. 1961)।
3. डैनियल लर्नर, : दी पासिंग आफ ट्रेडिशनल सोसायिटी (न्यू यार्क : दी फ्री प्रेस, 1958)।
4. बी. बी. मिश्रा : दी इन्डियन मिडिल क्लासेज, देअर ग्रोथ इन मार्डन टाइम्स (लन्दन, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1961)।
5. कुलबीर सिंह : भारत में सामाजिक परिवर्तन, अनुप्रकाशन, मेरठ, 1976.
6. फ्रेंक्वास पेराक्स : ए न्यू कांसेप्ट आफ डेवलपमेन्ट (बेसिक टेनेट्स) पेरिस, यूनेस्को, 1983).

4.9 संबंधित प्रश्न

(1) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

अ. विकास के माडेल / प्रारूप की व्याख्या कीजिये।

ब. विकास के पूंजीवादी माडेल पर एक लेख लिखिए।

स. विकास के समाजवादी माडेल की विवेचना कीजिये।

द. विकास के वैकल्पिक माडेल समझाइये।

) लघु उत्तरीय प्रश्न

य. विकास के माडेल का अर्थ एवं परिभाषा दीजिये।

र. पूंजीवादी माडेल पर मैक्सवेबर के विचार बताये।

ल. समाजवादी माडेल पर कार्ल मार्क्स के विचारों की व्याख्या कीजिये।

व. गांधीवादी विकास का माडेल समझायें।

) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) 'सर्वोदय' की अवधारणा निम्नांकित में से किसकी है ?

श. मार्क्स

ष. पारसन्स

उ. लर्नर

ऊ. गांधी

2) भूदान आन्दोलन को किसने चलाया ?

क. गांधी

ख. नेहरू

ग. विनोवा भावे

घ. नरेन्द्र देव

3) पूंजीवाद के विकास में प्रोटेस्टेन्ट एथिक सहायक है पर सर्वप्रथम लिखने वाले निम्नांकित में से कौन है ?

च. लर्नर

छ. पारसंस

ज. वेबर

झ. मैक्लीलैण्ड

4) 'दी अचीनिंग सोशायटी' के लेखके हैं

ट. मैक्ली लैण्ड

ठ. कींस

ड. रोस्टो

ढ. मार्क्स

प्रश्नोत्तर

(1) (ऊ)

(2) (ग)

(3) (ज)

(4) (ट)

खण्ड

2

आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन

इकाई 5

आर्थिक विकास : (अवधारणा पूर्वापेक्षाय एवं स्तर)

इकाई 6

सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास (कार्यकारण सम्बन्ध एवं आर्थिक विकास के सामाजिक सांस्कृतिक अवरोध)

इकाई 7

आर्थिक विकास की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरण समस्याएं एवं परिणाम

इकाई 8

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण (अवधारणा एवं आर्थिक परिणाम)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विकास का समाजशास्त्र

खण्ड - 2 : खण्ड परिचय - आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन

इस खण्ड में आर्थिक विकास एवं सामाजिक परिवर्तन को स्पष्ट किया गया है। **पहली इकाई** का शीर्षक है ''आर्थिक विकास''। इसमें आर्थिक विकास की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। आर्थिक विकास के स्तर एवं क्षेत्रीय विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता को स्पष्ट किया गया है। सातवीं, आठवीं एवं नवीं पंचवर्षीय योजना को व्याख्यायित किया गया है । **दूसरी इकाई** का शीर्षक है ''सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास'। इसमें सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। सामाजिक परिवर्तन की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। आर्थिक विकास के अवरोधों और उनके निराकरण के सुझावों को स्पष्ट किया गया है। **तीसरी इकाई** का शीर्षक है ''आर्थिक विकास की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय समस्याएं एवं परिणाम''। इस इकाई में आर्थिक विकास के सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं को स्पष्ट किया गया है। पर्यावरण के विनाश को रोकने के सुझाव दिये गये हैं। **चौथी इकाई** का शीर्षक है ''उदारीकरण एवं वैश्वीकरण''। इसमें उदारीकरण एवं वैश्वीकरण को स्पष्ट किया गया है। इनके आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिणामों पर प्रकाश डाला गया है।

इकाई 5 आर्थिक विकास

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 आर्थिक विकास की अवधारणा

5.4 आर्थिक विकास के स्तर

5.5 क्षेत्रीय विषमताएँ

5.5.1 संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता

5.6 संतुलित क्षेत्रीय विकास की नीति

5.7 सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

5.8 आठवीं पंचवर्षीय योजना

5.9 नवीं पंचवर्षीय योजना

5.10 सारांश

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

5.12 प्रश्नोत्तर

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

* आर्थिक विकास की अवधारणा और स्तरों को स्पष्ट कर सकेंगे।
* क्षेत्रीय विषमताओं पर टिप्पणी कर सकेंगे।
* संतुलित क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता व सम्बन्धित नीति का उल्लेख कर सकेंगे।
* कुछ पंचवर्षीय योजनाओं का उदाहरण दे सकेंगे।

5.2 प्रस्तावना

आर्थिक विकास का सीधा सम्बन्ध आर्थिक विकास की समस्याओं से है विशेषकर अविकसित और विकासशील देशों के सम्बन्ध में जिस पर सर्वप्रथम ध्यान अर्थशास्त्रियों का आकर्षित हुआ और आदम स्मिथ में लेकर मार्क्स और कीन्स तक ने इस पर विचार व्यक्त की परन्तु उनके विचारों का आधार केवल पश्चिमी और योरोपियन सामाजि संस्थागत जीवन से सम्बन्धित था। परन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् 20वीं शताब्दी के 40 वें वर्ष में उनका ध्यान अविकसित देशों की ओर गया और उनके विकास के सिद्धान्त और माडेल निर्मित किये गये। परन्तु सिद्धान्तों और माडेल बनाने अथवा निर्मित करने का आधार विकसित देशों के विकास

के सिद्धान्तों और माडेल पर आधारित था इसीलिये मिरडाल ने अपनी पुस्तक 'इकनामिक थियरी एण्ड अन्डर डेवेलपड रीजन' में लिखा कि अविकसित देशों के विकास के सिद्धान्त और माडेल उनकी दशाओं पर आधारित होना चाहिए। न कि विकसित देशों की दशाओं पर।

आर्थिक विकास के अन्तर्गत आर्थिक वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, उत्पादन में वृद्धि आदि भी है तथा साथ ही साथ तकनीकी परिवर्तन और संगठनात्मक ढांचे तथा कार्य प्रणाली में भी परिवर्तन है। अत: विकास का क्षेत्र व्यापक है।

5.3 आर्थिक विकास की अवधारणा

आर्थिक विकास के तात्पर्य अविकसित देशों की आर्थिक दशा में विकास से है। आदम स्मिथ से लेकर माल्थस, मार्क्स, शुम्पीटर रोस्टो, कीन्स तक ने अपना योगदान दिया है और सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन को आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन से सम्बन्धित किया है, अनेक सिद्धान्तों और विकास के माडल निर्मिद्य किये गये। 20वीं शताब्दी के 40 वें वर्ष से ही इस और विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। दूसरे महायुद्ध के बाद का काल एशिया और अफ्रीका के देशों के विकास से सम्बद्ध हो गये। गरीबी समृद्धि और विकास के लिये घातक है और गरीबी का उन्मूलन अति आवश्यक है तभी विकास का प्रारम्भ हो सकेगा। व्यक्ति, समूह, समाज विकास की दिशायें अग्रसर हो सकेगा।

दुनिया के सभी देश गरीबी दूर करन क लिय कटिबद्ध हुए। विशेषकर अविकसित देशों में गरीबी दूर करने के लिए संसार के विकसित देश आगे आये परन्तु उनके प्रेरक तत्व का आधार था अपने उद्देश्यों को पूरा करना। अविकसित देशों को अपनी ओर झुकाना। गुनार मिरडा ने इसी लिये कहा था कि विकसित देशों के विकास के सिद्धान्तों को अविकसित देश अन्धानुकरण नहीं करते। ए. मेडिसन ने व्यक्ति किया है कि विकसित देशों आय के स्तर में वृद्धि को आर्थिक वृद्धि गरीब देशों में आर्थिक विकास मानते हैं। श्रीमती यू० हिक्स में अविकसित देशों की आर्थिक समस्याओं का आधार संसाधनों के उपयोग के ज्ञान होने के बावजूद संसाधनों का उपयोग नहीं करने से है। शुम्पीटर ने विकास को क्रमश: परिवर्तित होने वाली स्थिति माना है जो अचानक हों और क्रमबद्ध भले ही न हों परन्तु दशाओं में परिवर्तन अवश्य ला देते हैं।

किन्डल वर्जर ने आर्थिक वृद्धि और आर्थिक विकास में अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि आर्थिक वृद्धि से तात्पर्य है अधिक उत्पादन परन्तु आर्थिक विकास से तात्पर्य है अधिक उत्पादन और तकनीकी तथा संस्थागत संगठनों जिनके माध्यम से उत्पादन सम्बन्धित है में भारी परिवर्तन। तात्पर्य यह कि आर्थिक वृद्धि का आधार प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, श्रम शक्ति में विस्तार, उपभोग-पूंजी-व्यापार में वृद्धि से है। परन्तु आर्थिक विकास से तात्पर्य आर्थिक वृद्धि से अधिक अवधारणा वाला है। विकास को वृद्धि और परिवर्तन का सम्मिश्रित अथवा मिलाजुला प्रारूप माना जाता है।

गुन्नार मिरडाल के अनुसार आर्थिक आवश्यकताओं, वस्तुओं इन्सेंटिभज, संस्थाओं, उत्पादन, ज्ञान आदि में औ सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में भारी गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है जो

च्चतर विकास का द्योतक है। विकास अन्तर्निहित आधारों का निर्धारक होता है जिससे कनीकी विकास और संरचनात्मक विकास बढ़ जाता है। आर्थिक विकास वृद्धि और ह्रास का मिलाजुला प्रारूप माना जा सकता है क्योंकि आर्थिक दशा की वृद्धि तो होती है परन्तु विकास हीं हो पाता क्योंकि गरीबी, बेरोजगारी और असानता विद्यमान होने से तकनीकी और संरचनात्मक परिवर्तन का अभाव बना रहता है और विकास की गति तथा पूरा स्वरूप ही बाधित हो जाता है। त्वरित जनसंख्या वृद्धि की दशा में प्रति व्यक्ति आय की कमी और बिना आर्थिक वृद्धि को विकास की कल्पना कठिन है। कभी-कभी तो कुछ अर्थशास्त्रियों ने वृद्धि, प्रगति और विकास शब्दों का प्रयोग सिनानिम के रूप में किया है जैसा कि आर्थर लेविस अपनी पुस्तक दी थियरी आफ इकनामिक ग्रोथ में लिखा है कि 'वृद्धि' का प्रयोग अधिकांश किया गया है परन्तु विकल्प के रूप में 'प्रगति' और 'विकास' का प्रयोग भी किया गया है।

5.4 आर्थिक विकास के स्तर

रोस्टो ने आर्थिक विकास के स्तरों को पाँच प्रभागों में विभक्त किया है :-

(1) परम्परागत समाज का स्तर

(2) दी टेक आफ अथवा आगे बढ़ने का स्तर / अभिवृद्धि का स्तर आदि से पूर्व की दशा का स्तर

(3) अभिवृद्धि का स्तर

(4) परिपक्वता का स्तर

(5) उच्च प्रकार के उपभोक्ता काल का स्तर

पहले स्तर के रोस्टो न्यूटोनिय विज्ञान और तकनीकि से पूर्व का स्तर माना है जिसमें आर्थिक परिवर्तन की दशायें सीमित थी और कृषि के कार्य में भू-भाग का वृहत क्षेत्र में था। जनसंख्या की वृद्धि का दवाब कृषि उत्पादन पर था। कृषि आय का प्रमुख स्रोत रहा। धार्मिक स्थलों के निर्माण कार्य, खर्चीली विवाहोत्सव, यादगार के निर्माण, अन्तिम संस्कार और युद्ध आदि पर अधिक व्यय का भार था।

दूसरा स्तर अभिवृद्धि से पूर्व की दशा का स्तर था जिसे परिवर्तन का काल माना जा सकता था। जो 15वीं शताब्दी के अन्त का काल और 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ का काल कहा जा सकता है। ब्रिटेन और यूरोप में विकास का स्तर धारणीयता वाले विकास का स्तर रहा। इस काल में चार प्रकार की शक्तियों का बोल बाला रहा (1) नयी शिक्षा जागरण का काल (2) नयी राज्य सत्ता अथवा राजतंत्र, (3) नया संसार, (4) नवीन धर्म अथवा सुधार का काल। इनसे 'आस्था' और 'सत्ता' के स्थान पर 'तर्क वितर्क' और 'सन्देह' का आधिपत्य बढ़ा। नये आविष्कार, साहसिकता, धनी वर्ग का उदय, अभिजात वर्ग का महत्व और नये व्यापारिक नगरों का उदय हुआ। इन शक्तियों ने सामाजिक प्रवृत्तियों, प्रत्याशाओं, संरचना और सामाजिक मूल्यों में भारी परिवर्तन लाकर निजीकरण, शिक्षा, राष्ट्रीयता और आधुनिकता, पूंजी, सरकार, यातायात, संचार, वाणिज्य, तकनीकि पर बल दिया और औद्योगिकरण और उत्पादन वृद्धि हुई।

तीसरे स्तर में 'विकास' की दशायें सामान्य बात हो गया। इसम आद्यागक क्रान्त हुइ, पूंजी निवेश बढ़ा, निर्माण बढ़ा, राजनैतिक, सामाजिक और संस्थागत आधुनिकता की अभिवृद्धि हुई।

चौथे अर्थात् 'परिवक्वता के स्तर' में आधुनिक तकनीक का विस्तार विस्मित धारणीयता वाला आर्थिक विकास का युग कहलाया। ग्रेट ब्रिटेन, यूनाइटेड स्टेट्स, जर्मनी, फांस, स्वेडेन जापान, रूस और कनाडा तकनीकी परिपक्वता वाले देश वन गये और अनेक प्रकार से समृद्ध देश हो गये।

पांचवे अर्थात् उच्च-उपभोक्ता स्तर में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि देशों अधिक आप्रवास हुआ। स्वचालित मशीने और मोटर वाहन तथा घरेलू कार्यों में उपभोक्ता सामगियां स्वचालित हो गयीं।

5.5 क्षेत्रीय विषमतायें

भारत के संदर्भ में एक क्षेत्र देश का वह भू-भाग है जो भाषा, भूमि, संस्कृति आदि के संदर्भ में एक रूपता रखता है और समानता की अन्य अनेक आधार पर परिलक्षित हो। आर्थिक आधार और सामाजिक पृष्ठभूमि लगभग समान हो और खान-पान, भेष-भूसा, उपज, श्रम, उत्पादन, मेला, हाट की समानतायें हों। ऐसे क्षेत्र, जनपद, नगर, गांव और उनका समिश्रित रूप हो सकता है।

लगभग संसार के सभी देशों में विकसित एवं अविकसित क्षेत्र होते हैं। प्राकृतिक दशाओं के आधार पर भी क्षेत्र बंटे हुए हैं जैसे पेरू, कोलम्बिया और इक्वाडोर समुद्रीतट, जंगल और पहाड़ी पठारों में विभाजित हैं। भाषा और प्रजति के आधार पर भारत और वेलजियम में क्षेत्र देखे जा सकते हैं। हालैण्ड पश्चिमी और पूर्वी क्षेत्रों में वटे हुए हैं। भारत में आर्थिक आधार पर भी धनी, गरीब, विकसित और पिछड़े हुए क्षेत्र हैं। अमेरिका में पिछड़े हुए क्षेत्र का विकास सर्वप्रथम टेनेसी वैली के विकास की योजना थी। सोवियट रूस में स्टालिन पूंजीवादी शक्तियों से बचाने हेतु पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास पर बल दिया। द्वितीय विश्व युद्ध जिसमें जर्मनी ने इंग्लैण्ड पर आक्रमण किया और इंगलैण्ड में औद्योगिक संस्थान पिछड़े हुए क्षेत्रों में स्थापित हुए। बोरलों कमीशन 1937 में और पेप (पोलिटिकल एण्ड इकनामिक प्लानिंग) समूह 1939 में उद्योगों को पिछड़े क्षेत्रों में ले जाने की संस्तुति की ताकि उनका आर्थिक विकास सम्भव हो सके। तत्पश्चात् दुनिया के सारे विकसित देशों का ध्यान पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास की ओर गया।

5.5.1 संतुलित क्षेत्रिय विकास की आवश्यकता

पिछड़े हुए क्षेत्रों का संतुलित विकास नितान्त आवश्यक है। आर्थिक दशा का त्वरित विकास नितान्त आवश्यक है क्योंकि तभी सम्पूर्ण देश का आर्थिक विकास सम्भव हो सकेगा। संसाधनों का समुचित उपयोग आर्थिक ढाचे के विस्तार और सन्तुलन के लिए आवश्यक है। खनिज पदार्थ, जंगल, कृषि एवं मानव संसाधनों का समुचित उपयोग ही आर्थिक विकास का आधार है। राजनैतिक स्थायित्व और देश की सुरक्षा, सीमाओं की सुरक्षा आर्थिक विकास

सम्बन्धित हैं। क्षेत्रीय विकास से सामाजिक बुराइयाँ कुरीतियां भी दूर हो सकेगी और तभी म्भव हो सकेगा सबको रोजगार का समुचित अवसर की उपलब्धता।

.6 संतुलित क्षेत्रीय विकास की नीति

र्वप्रथम निश्चित आधारों पर पिछड़े हुए क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना और उनकी क्षेत्र सीमा निश्चित किया जाना आवश्यक होगा ताकि ऐसे कोई क्षेत्र न बच सकें कि उन्हें शिकायत हो क उनके साथ अन्यास किया जा रहा हैं और विकास में उनकी सहभागिता सुनिश्चित नही हो ही है अथवा विकास के परिणामों से वे वंचित होते जा रहे हैं।

न्द्र द्वारा राज्यों को पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु उचित एवं पर्याप्त मात्रा में धन उपलब्ध राया जाना चाहिये। धन के आवंटन और वितरण में क्षेत्र विशेष की मूलभूत सामाजिक ार्थिक, औद्योगिक, सांस्कृतिक आवश्यकताओं प्रदेश सरकारों पर सम्पूर्ण दायित्व का भार ापना आवश्यक है। प्रत्येक क्षेत्र में विकास हेतु अलग-अलग विकास कार्यक्रम तैयार किया ाना चाहिए। आवश्यक होन पर तकनीकी - आर्थिक सर्वेक्षम भी कराया जाना चाहिये। र्वेक्षण के आधार पर अलग-अलग क्षेत्रों के लिए अलग-अलग विकास कार्यक्रम निर्मित ौर क्रियान्वित किया जाना चाहिये। पिछड़े हुए क्षेत्रों के औद्योगिक विकास हेतु तीसरी और ौथी पंचवर्षीय योजना काल में औद्योगिक प्रष्ठिानों और औद्योगिक विकास क्षेत्रों का स्थापना ी गयी तथा जल, विद्युत यातायात,संचार आदि के साधन जुटाने हेतु ऋण सुविधायें दी गयी ाकि पिछड़े क्षेत्रों में योजनायें प्रारम्भ की जायें। इन क्षेत्रों में औद्योगिक विकास प्राधिकरणों ी स्थापनी भी की गयी ताकि वे पिछडे क्षेत्रों का औद्योगिक विकास कर सकें। गांवों के छड़े क्षेत्रों का औद्योगिक विकास कर सकें। गांवों के विकास हेतु एकीकृत विकास कार्यक्रम लाये गये ताकि लघु उद्योगों का विकास हो सके। राज्य सरकार को चाहिये कि पिछड़े क्षेत्रों बिजली, पानी, यातायात, संचार, प्रशिक्षण संस्थायें वित्त आदि की व्यवस्था करें। देश के दो ान्तों पंजाब और हरियाणा का विकास कृषि विकास द्वारा हुआ। बिहार, यू० पी० मध्य प्रदेश ा विकास कृषकों को उत्पादक खाद, सिंचाई की सुविधायें, कीट नाशक, दवाइयों, शोधों ीजों को राज्य सरकारें कृषकों को प्रदान कर कृषि का विकास करें। गरीबों को रोजगार के वसर उपलब्ध कराकर उनकी आय में बढोत्तरी लायी जा सकती है। क्षेत्रिय विषमताओं को र करने हेतु महाराष्ट्र सरकार द्वारा गठित वर्ष 1954 में डांडेकर कमेटी के सुधाओं के अनुसार ाच डाग एथारिटी के माध्यम में क्षेत्रिय असंतुलन का निवारण नीतिगत कार्यक्रमों के ्रयान्वयन हेतु एक ठोस कदम है।

.7 सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)

ारतीय नियोजन के प्रमुख उद्देश्य वृद्धि, आधुनिकता, आत्मनिर्भरता और सामाजिक - न्याय ाप्त करना है। सातवीं योजना के तीन प्रमुख उद्देश्य थे - (1) खाद्यान्न उत्पादन में वृद्दि (2) जगार के अवसर बढ़ाना (3) उत्पादन में वृद्धि। इनका सीधा सम्बन्ध गरीबी की समस्या, रोजगारी और क्षेत्रिय विषमताओं से हैं जिनसे पार पाने हेतु इस योजना का प्रमुख उद्देश्य रहा।

खाद्यान उत्पादन में वृद्धि सिंचाई सुविधायें बढ़ाकर, नयी कृषि उत्पादन की तकनीक अपना कर उन्हों छोटे किसानों तक पहुँचकर खाद्यान्नों के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। खाद्यान्न खाद्य तेल आदि का उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। खाद्यान्नों को कृपकों से लेकर भण्डारण करना और, आवश्यकता पड़ने पर उनके सार्वजनिक हित में वितरण की व्यवस्था पर जोर दिया गया। सेवा योजन के अवसर बढ़ाने हेतु कृषिकार्य, ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण एवं लघु उद्योग, निर्माण, प्रशासन एवं अन्य क्षेत्रों में सेवायोजन के अवसर ढूंढे गये। आवास, नगरीय सुविधाओं, सड़क एवं ग्रामीण-संरचना आदि के कार्यों में सेवा योजन के अवसर उपलब्धता पर बल दिया गया। और उत्पादन में वृद्धि की गयी। लोगों की बेकारी कम की गयी और उपभोग की वस्तुओं में वृद्धि और विकास का आधार नयी प्रकार की कृषि प्रणाली, शोधेबीजों का उपयोग, कीटनाशक पदार्थों का उपयोग, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, ग्रामीण विकास में तेजी और सक्रियता बढ़ा, नये प्रकार के खादों का प्रयोग, कृषि यन्त्रों का प्रयोग बढ़ा और आर्थिक विकास अग्रसर हुआ।

5.8 आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97)

आठवीं पंचवर्षीय योजना, के प्रमुख उद्देश्य थे :

(1) सेवायोजन के स्तर को लगभग सम्पूर्णता के स्तर तल लाना ताकि सबको रोजगार का अवसर उपलब्ध हो सके।

(2) जन सहयोग से जनसंख्या वृद्धि पर अभूतपूर्व नियंत्रण को अधिक सक्रिय और प्रभावी बनाना।

(3) प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य बनाना और सम्पूर्ण 15 से 35 वर्ष आयु-वर्ग के लोगों से निरक्षता मिटाना।

(4) सभी ग्रामों में स्वक्ष पीने योग जल उपलब्ध कराना, प्रारम्भिक स्वास्थ्य सुविधायें जुटाना ताकि सम्पूर्ण जनसंख्या को स्वच्छ जल एवं स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त हो सके। मल-मूत्र ढोने की प्रथा का पूर्णत: समापन।

(5) कृषि काइतना विकास हो ताकि भोजन सामग्री की उपलब्धता आत्मनिर्भकता का स्तर प्राप्त कर सके और देश विदेशों में भी अपना अन्न निर्यात कर सके।

(6) शक्ति, संचार, यातायात, सिंचाई को इतना व्यापक प्रारूप का बनाया जा सके कि वृद्धि की प्रक्रिया धारणीयता के आधार वाला बन सके।

5.9 नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2000)

इस योजना के प्रमुख उद्देश्य थे सामाजिक न्याय और समानता में अभिवृद्धि जिसकी प्रमुख विशेतायें थीं:

(1) कृषि और ग्रामीण विकास की प्राथमिकता ताकि अत्यधिक उत्पादक सेवायोजन हो सके और गरीबी का उन्मूलन सुनिश्चित किया जा सके।

:) वस्तुओं के मूल्यों में स्थायित्व के साथ-साथ अर्थव्यवस्था के विकास दर को बढ़ाया जा सके।

:) सभी के लिये भोजन और स्वास्थ्यवर्धक सुरक्षा उपलब्ध कराया जा सके और विशेषकर कमजोर आय वर्ग के लोगों को भोजन और स्वास्थ्यवर्धक वस्तुएं अवश्य उपलब्ध हो सकें।

I) स्वच्छ निर्मल पेय जल, प्रारम्भिक स्वास्थ्य सुविधायें, अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा, शरणस्थली और सह-सम्बन्ध स्थापन सुनिश्चित कराया जा सके।

;) जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण

;) सभी स्तरों के लोगों की सहभागिता सुनिश्चित करायी जा सके तथा विकासी पर्यावरण बना रहे और विकास की प्रक्रियायें धारणीयता का स्तर बनाये रखें।

') सामाजिक - आर्थिक विकास के अभिकरण के रूप में अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ेवर्ग के लोग, अल्पसंख्यक वर्ग के लोग सक्रिय हों। महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिले।

3) पंचायती राज्य संस्थाओं, सहकारिता और स्वयंसेवी समूहों को समुन्नत करना ताकि लोगों में सहभागिता बढ़े और विकासोन्मुख कार्यक्रमों को बढ़ावा मिले, गुणात्मक नागरिकता की अभिवृद्धि को बढ़ावा मिले, गुणात्मक नागरिकता की अभिवृद्धि एवं विकास हो, राष्ट्रीयता की भावना, सृजनात्मक दृष्टिकोण, हर प्रकार की समानता का विकास एवं विकास की प्रमुखता को शक्ति एवं सम्पन्नता प्राप्त हो सके।

)) आत्मनिर्भरता की बढ़ोत्तरी हो और आत्मनिर्भरता को शक्ति प्राप्त हो सके।

.10 सारांश

ार्थिक विकास से तात्पर्य आर्थिक वृद्धि के साथ-साथ विकास तकनीकी क्षेत्रों में परिवर्तन से । सम्बन्धित है। सामाजिक परिवर्तन तकनीकी परिवर्तन और आर्थिक विकास का पर्याय भी और परिणाम भी। क्षेत्रिय असंतुलन देश के आर्थिक विकास में बाधा है जिसे समाप्त करके । विकास की सम्भावनायें बढ़ती हैं। उत्पादन में वृद्धि, निर्माण के कार्य, प्रशासनिक सुधार ादि का सम्बन्ध आर्थिक विकास से सह-सम्बन्धित है।

त्रिय विषमतायें क्षेत्र विशेष को गरीबी, बेरोजगारी, असमानता की ओर ले जाती है जिससे त्र विशेष पिछड़ जाता है और अन्य क्षेत्र जहाँ विषमतायें नहीं है आगे बढ़ जाते हैं और उनके ाकास होते हैं और विषमताओं वाले क्षेत्र सामाजिक - आर्थिक - सांस्कृतिक रूप में पीछे रह ाते हैं अतः सभी क्षेत्रों का सन्तुलित विकास होने से ही देश विकास के मार्ग पर हो सकता । सन्तुलित क्षेत्रिय विकास हेतु केन्द्र और राज्य सरकारों को योजनाबद्ध कार्यक्रमों को मयबद्ध तरीके से कार्यान्वित करना होगा।

श की पंचवर्षीय योजनायें विगत 50 वर्षों में कृषि उत्पादन में वृद्धि, औद्योगिक उत्पादन में द्धि तकनीकी परिवर्तनों का सहारा लेकर देश को विकास के पथ पर अग्रसर करने में

प्रयासरत हैं। संसाधनों की बढ़ोत्तरी करके, सुख-सुविधा के अवसर जुटाने में लगे देश धन का व्यय करके देश की आर्थिक दशा सुधारने का कार्य सम्पादित कर रहा है। नये बीजो, उर्वरकों के प्रयोग, तकनीकी प्रशिक्षण, कृषि में नये प्रयोग कर पशुओं के नस्लसुधार कार्यक्रमों को अपना कर, जनसंख्या की वृद्धि को नियंत्रित करके, देश के मानव संसाधनों में गुणात्मक परिवर्तन लाकर, सिंचाई, बिजली, पानी, पेयजल, खाद्यान्न आदि उपलब्ध कर देश के विकास के पथ पर चलाने का प्रयत्न करने में केन्द्र और राज्य सरकारें समुचित प्रयास करने में तत्पर हैं। शिक्षण, प्रशिक्षण की सुविधायें जुटाकर रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर सम्पूर्ण देश का विकास करने हेतु सरकार की भूमिका महत्वपूर्ण है।

5.11 संदर्भ ग्रन्थ/उपयोगी पुस्तकें

1. एम० एल० झिंगरन : दी इकनामिक्स आफ डेवलपमेन्ट एण्ड प्लानिंग वृन्दा पब्लिकेशन्स (प्रा०) लिमिटेड, दिल्ली, 37 वां इडीशन : 2003
2. यू० एन०डी०पी०. : ह्यूमन डेवलपमेन्ट रिपोर्ट (आक्सफोर्ड ओ.यू.पी., 1992)
3. वर्ल्ड बैंक : वर्ल्ड डेवलपमेन्ट रिपोर्ट : पावर्टी (वाशिंगटन, डी. सी. : वर्ल्ड बैंक, 1990)
4. एम० एस० स्वामीनाथन : आई प्रेडिक्ट : ए सेन्चुरी आफ होय-हारमनी विथ नेचर एण्ड फ्रीडं फ्राम हंगर (मद्रास : इस्ट वेस्ट बुक्स, 1999)
5. : व्हीट रिवाल्यूशन : ए डाइलाग (मद्रास : मैकमिलन, इण्डिया, 1993)
6. ए. डी. बी. : पावर्टी रिडक्शन : व्हाट इज न्यू एण्ड व्हाट इज डिफेरेन्ट ? (मनीला : एशियन डेवलपमेन्ट बैंक, 2001)
7. बर्ल्ड ड़ेवलपमेन्ट रिपोर्ट 1984
8. जी- मिरडाल एशियन ड्रामा, 1968
9. जे० एस० उप्पल : (इडी) इन्द्रियाज इकनामिक प्राबल्मस, 1975

5.12 प्रश्नोत्तर

(अ) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) आर्थिक विकास की अवधारणा स्पष्ट कीजिये।

२) आर्थिक विकास के सम्बन्ध में क्षेत्रिय विषमताओं को दूर करने के उपाय सुझायें।

३) संतुलित क्षेत्रयि विकास सम्बन्धी भारत सरकार की नीतियों का उल्लेख कीजिये।

४) सातवीं, आठवीं और नवीं पंचवर्षीय योजनाओं के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिये।

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न

१) आर्थिक वृद्धि और आर्थिक विकास में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

२) क्षेत्र को परिभाषित कीजिये।

३) क्षेत्र सुनिश्चयन के आधार क्या है।

४) आर्थिक विकास समझाइये।

स) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

१) क्षेत्र परिसीमन का आधार होता है :-

(क) खनिज पदार्थ

(ख) धर्म

(ग) जाति

(घ) भाषा

२) आर्थिक विकास से तात्पर्य है :

(य) खाद्यान्नों की अधिकता।

(र) अस्पतालों में डाक्टरों की संख्या में वृद्धि।

(ल) आर्थिक समृद्धि और तकनीकी परिवर्तन

(व) सेवायोजन की अधिकता

३) भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ देश के किस प्रधानमंत्री के कार्य काल में हुआ था ?

(प) लाल बहादुर शास्त्री

(फ) इन्दिरा गांधी

(ब) पी० वी० नगसिहाराव

(म) पं० जवाहर लाल नेहरू

४) भारत की पंचवर्षीय योजनाओं की कार्य अवधि कितने वर्षों की होती है ?

(च) 6 वर्षों की

(छ) 5 वर्षों की

(ज) 4 वर्षों की

(झ) 10 वर्षों की

5.13 प्रश्नोत्तर (केवल वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के)

(1) घ

(2) ल

(3) भ

(4) छ

काई 6 सामाजिक एवं आर्थिक विकास

काई की रूपरेखा

1 उद्देश्य
2 प्रस्तावना
3 अर्थ एवं परिभाषा
4 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं
5 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन दो भिन्न धारणायें
6 सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास के कार्यकारण
7 आर्थिक विकास के अवरोध
8 सारांश
9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10 प्रश्नोत्तर

.1 उद्देश्य

स इकाई का प्रमुख उद्देश्य है:

सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास की अवधारणा को अवगत कराना।

सम्बन्धित कार्य कारण पर प्रकाश डालना।

आर्थिक विकास के अवरोधों को इंगित करना और उनके निराकरण तथा उन्हें नियन्त्रित करने सम्बन्धित सुझाव प्रस्तुत करना है।

आर्थिक विकास के लिये जनसहभागिता की आवश्यकता को समझना।

.2 प्रस्तावना

ामाजिक परिवर्तन से तात्पर्य सामाजिक सम्बन्धों संसथाओं जनरीतियों, दशाओं में होने वाले रिवर्तन से है। सामाजिक परिवर्तन स्वाभाविक और अवश्यम्भावी है समाज का आधारभूत काई व्यक्ति होता है जिसका स्वभाव परिवर्तनशील होता है। वह नयापन चाहता है। बोझिल ीवन से पार पाने हेतु भी उसे परिवर्तन का सहारा लेना पड़ता। समरूपता में विविधता की ोर उसका झुकाव होता है। इसीलिये उसे सामन्जस्य स्थापना की आवश्यकता पड़ती है। ग्रीन इसीलिये कहा था "परिवर्तन से सामंजस्य स्थापित करना ही हमारे जीवन का एक तरीका न चुका है। परिवर्तन की गति तीव्र हो या धीमी बिना परिवर्तन के न विकास सम्भव है और वृद्धि। लुम्ले ने कहा था 'कई कारणों से परिवर्तन अवश्यम्भावी रहा है। और है। सामाजिक रिवर्तन परिवर्तन का भाग है और सभी प्रकार के परिवर्तनों को सामाजिक परिवर्तन के

अन्तर्गत नहीं आता परन्तु व्यक्ति, समाज समूह, राष्ट्र भावना पर उनसे पड़ने वाले प्रभाव, संस्थाओं पर आने वाले परिवर्तन का प्रभाव मानवजीवन, पर्यावरण और सम्बन्धों पर पड़ने वाले प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव सामाजिक परिवर्तन अवश्य कहलायेगा। गिलिन और गिलिन के अनुसार ''सामाजिक परिवर्तन जीवन पद्धतियों एवं स्वीकृत तरीकों में होने वाले वैभिन्य को कहते हैं। जो भले ही भौगोलिक दशाओं में परिवर्तन से हों अथवा सांस्कृतिक उपकरणों का जनसंख्या की संरचना एवं मनोधारणाओं में परिवर्तन के कारणों से हो या प्रसार से था उस समूह में लाये गये हं अथवा उसी समूह ने उन्हें आविष्कृत किया हो।''

6.3 अर्थ एवं परिभाषा

परिवर्तन से तात्पर्य है भौतिक, जैवकीय, सामाजिक, सांस्कृति आदि सभी क्षेत्रों में बदलाव अथवा परिवर्तन। परिवर्तन शब्द सीमारहित है परन्तु सामाजि परिवर्तन की सीमायें सामाजिक क्षेत्र और सामाजिक सम्बन्ध है जिनपर पड़ने वाले सभी प्रभाव अथवा जिनको परिवर्तित करने वाली सभी दशायें सामाजिक परिवर्तन की परिधि बनाता है। एल्ड्रज एवं मेरिल सामाजिक परिवर्तन का आधार मानव क्रियाओं को मानते हैं जो मानव संवन्धों की जननी है। जोन्स के अनुसार ''सामाजिक परिवर्तन वह शब्द है जो सामाजिक प्रक्रियाओं, सामाजिक प्रतिमानों, सामाजिक अन्तक्रियाओं अथवा सामाजिक संगठन के किसी भाग में घटित होने वाली हेर-फेर या संशोधनों / बदलाव के लिए प्रयोग किया जाता है।''

किग्सले डेविड के अनुसार सामाजिक परिवर्तन वह बदलाव है जो सामाजिक संगठन अर्थात् सामाजिक संरचना एवं कार्यों में होता है। अत: सामाजिक परिवर्तन सामाजिक प्रक्रियाओं सामाजिक स्थितियों एवं कार्यों, सामाजि संगठनों, सामाजिक संरचनाओं, सामाजिक अन्तक्रियाओं एवं सामाजिक सम्बन्धों में होने वाला परिवर्तन है।

6.4 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

(i) परिवर्तन की प्रकृति सामाजिक होता है न कि वैयक्तिक / अर्थात् एक इकाई में होने वाले परिवर्तन को सम्पूर्ण समाज में होने वाला परिवर्तन नहीं माना जा सकता है।

(ii) सामाजिक परिवर्तन सार्वभौमिक होता है अर्थात् यह सर्वत्र व्यापक होता है।

(iii) सामाजिक परिवर्तन अवश्यमभावी एवं स्वाभाविक है अर्थात् इसकी प्रकृति अनिवार्यता की है।

(iv) सामाजिक परिवर्तन की गति प्रत्येक सामाज में समान प्रकार की नहीं होती। अर्थात् उदाहरणार्थ विकसित एवं अविकसित देशों में सामाजिक परिवर्तन की गति समान प्रकार की नहीं होती है।

(v) सामाजिक परिवर्तन के विषय में भविष्यवाणी करना सम्भव नहीं है। अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है तो सही या गलत हो सकता है।

(vi) सामाजिक परिवर्तन अमूर्त है क्योंकि समाज और सामाजिक सम्बन्ध दोनों अमूर्त हैं।

(vii) सामाजिक परिवर्तन तुलनात्मक एवं सापेक्ष होता है। क्योंकि सामाजिक अवधारणायें

अन्तिम नहीं हो सकतीं हैं केवल सापेक्ष एवं तुलनात्मक ही हो सकती हैं।

(viii) सामाजिक परिवर्तन के अनेक प्रतिमान होते हैं जैसे एक रेखीय चक्रिय आदि।

6.5 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन दो भिन्न धारणायें

(i) क्योंकि समाज अमूर्त धारणा है परन्तु संस्कृति अपेक्षाकृत मूर्त धारणा है।

(ii) सामाजिक परिवर्तन गति को आधार पर देखा जाये तो सामाजिक परिवर्तन की गति धीमी होती है परन्तु सांस्कृतिक परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत तीव्र होती है। उदाहरण के लिये सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन धीरे-धीरे होता है परन्तु फैशन, कला, मोटरकार, कपड़ो, केशविन्यास, मेज कुर्सी, मकान आदि के बनाने के ढंगों में परिवर्तन की गति तीव्र होती है।

(iii) सांस्कृतिक परिवर्तन की व्यापकता 'समाज' से तात्पर्य केवल सामाजिक सम्बन्धों से हैं जबकि संस्कृति के अन्तर्गत कला, विज्ञान, दर्शन, धर्म, प्रौद्योगिकी, विश्वास, आचार-विचार, कर्मकाण्ड, भौतिक उपकरण, सोंचने विचारने समझने, संचार के तरीके आदि अनेक नियम, स्वरूप, तत्व आदि आते हैं। अत: सामाजिक परिवर्तन एवं सांस्कृतिक परिवर्तन घनिष्ठ रूप में सम्बन्धित तो हैं सांस्कृतिक परिवर्तन की अवधारणा व्यापक है।

6.6 सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास के कार्यकारण

देश में नियोजित सामाजिक परिवर्तन को राजाराम मोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्म समाज' के समय से ले सकते हैं। राजाराम मोहन राय ने सर्वप्रथम सतीप्रथा एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ नियोजित व्यवस्थित एवं संगठित परिवर्तन लाने का प्रयास किया। 40 वर्षों बाद बम्बई में महादेव गोविन्द रानाडे ने (प्रार्थना समाज) की स्थापना की। राजाराम मोहन राय ने तत्कालीन अंग्रेजी सरकार पर प्रभाव डालकर हिन्दू कुरीतियों से विरुद्ध कई कानून पास कराये जिनमें से 'सती निरोध अधिनिमय' प्रमुख रहा। 1875 में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य समाज' की स्थापनी की। बेमेल विवाह, बाल-विवाह, दहेज प्रथा पर श्री स्वामी जी ने तीक्ष्ण प्रहार किये। सती प्रथा समाप्त कराने एवं विधवावों के पुन: विवाह कराने हेतु महर्षि के प्रयत्न सफल रहे। 'स्वभाषा', 'स्वराष्ट्र' एवं 'स्वदेशी' की धारणायें देकर उन्होंने अनेकों पाखण्ड एवं धर्म परिवर्तन को रोका। 'शुद्धि आन्दोलन चलाया परिवर्तित धर्म वालों को पुन: धर्म में लौट आने का अवसर प्रदान किया। 1998 में विवेकानन्द ने 'राधाकृष्ण मिशन' की स्थापनी की और तत्पश्चात् आये महात्मागाँधी जिन्होंने सामाजिक-राजनैतिक धरातल अपना छाप छोड़कर देश को 15 अगस्त 1947 में स्वतंत्रता दिलायी। गांधी के ही अहिंसात्मक एवं रामराज्य तथा सर्वोदय के सिद्धान्त को आधार मान कर चले सर्वोदयी नेता आचार्य विनोबाभावे जिन्होंने भूमिहीन किसानों श्रमिकों में हजारों एकड़ भूमि बँटवाकर भूमिदान एवं ग्रामदान के आदर्श को आगे बढ़ाया। दूसरे सर्वोदयी नेती श्री जय प्रकाश नारायण ने सैकड़ो डाकुओं का सामूहिक

आत्म समर्पण करवाया और उस समस्या का हल ढूंढा जिससे कई राज्य सरकारें बीसों वर्षों से कराह रही थीं और हल नहीं ढूंढ पा रही थीं।

वर्ष 1950 में राष्ट्रीय स्तर पर एक योजना आयोग का गठन हुआ और 1952 में प्रथम पंचवर्षीय योजना के रूप में विकास का एक नियोजित कार्यक्रम लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया गया जो आगे के वर्षों में देश की आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं जनसंख्या सम्बन्धी समस्याओं के निराकरण एंव देश के आर्थिक विकास को प्रशस्त करने में लग गया। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से जो नियोजित परिवर्तन लक्षित किया गया उसके प्रमुख उद्देश्य हैं :

1. तीव्र आर्थिक एवं भौतिक विकास,
2. लोगों के रहन-सहन के स्तर को उठाना,
3. निम्नवर्गों अनुसूचित जातियों, जनजातियों अन्य पिछड़े वर्गों अल्पसंख्यकों, महिलाओं, शिशुओं, आदि के लिये उत्थान के विशेष अवसर उपलब्ध कराना,
4. गरीबी रेखा से नीचे के आर्थिक रूप से कमजोर आय वर्गों के लोगों, बेरोजगार युवकों के लिये आय के स्रोत उत्पन्न करना, बेरोजगारी दूर करना आदि।
5. सामाजिक संरचना में आधारभूत परिवर्तन लाना।
6. वित्तीय नीति एवं मूल्यनीति का निर्धारण।

6.7 आर्थिक विकास के अवरोध

(i) निर्धनता, बेरोजगारी एवं कृषि पर आधारित अर्थ व्यवस्था

देश की निर्धनता अत्यधिक कष्टकारी। प्रतिव्यक्ति आय निम्नतम, अशिक्षित जनसंख्या का आर्थिक स्तर न्यूनतम, बेरोजगारी दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और कृषि पर आधारित अर्थ व्यवस्था का स्तर शोचनीय है।

(ii) स्पष्ट वैचारिकी का अभाव

कभी देश की अर्थव्यवस्था का आधार, समाजवादी प्रतिमान, कभी मिश्रित अर्थव्यवस्था, कभी उदारवादी और वैश्वीकरण की नीति का समर्थन। अत: आज आश्यकता है स्पष्ट वैचारिकी का जिसके माध्यम देश का समुचित आर्थिक विकास सम्भव हो सके।

(iii) जनसंख्या विस्फोट पर नियंत्रण का अभाव

आज भारत की जनसंख्या विस्फोटक स्तर तक पहुँच चुकी है। जनसंख्या के सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उपलब्ध संसाधन एवं अधो संरचना सक्षम नहीं दिखाई देती है। जन जागरण ही जनसंख्या विष्फोट को नियंत्रित करने में सक्षम है।

(iv) जन-सहभागिता का अभाव

विकास कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता आवश्यक है जिनका विकास लक्ष्य है। विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में जन-सहभागिता सुनिश्चित कराना नितान्त आवश्यक। जन -

र की समस्यायें प्रशासन उनके सहयोग से ही हल करने में सफल हो सकेगी।

अशिक्षा की वृद्धि

अशिक्षा को अनेक गम्भीर सामाजिक समस्याओं की जननी मानी जाती है। अशिक्षा से ये बिना देश के विकास की ओर अग्रसर होने में देश सफल होना तो दूर की बात है कार्यक्रमों को उन्हें बोधगम्य कराने तक में भी सफल नहीं हो सकेगी।

) राष्ट्रीय एकीकरण की भावना की गिरावट का स्तर

एकीकरण की भावना का विकास किये बिना देश क्षेत्रियता के दोषों पर नियंत्रण रखने न नहीं हो सकेगा। अत: आवश्यकता है कि सम्पूर्ण देशवासियों में राष्ट्र के प्रति अपने ं के प्रति और अधिक सक्रिय बनाया जाये और उनमें राष्ट्रीय प्रेम की ज्योति जलायी

) क्षेत्रिय असमानता की स्थिति

देश क्षेत्रीय असमानता से तड़प रहा है किसी क्षेत्र में राजनैतिक कारणों से विकास चरम है तो किसी क्षेत्र में विकास पहुंचा ही नहीं के बराबर। भौगोलिक परिस्थितियों के नाते क्षेत्र अत्यन्त पिछड़े हुए हैं तो कई क्षेत्र औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए हैं और कई क्षेत्रों की कमी है और कई क्षेत्रों में पूंजीनिवेशकों की। किसी क्षेत्र में कच्ची सामग्री और सम्पदा की भारमार तो है परन्तु संसाधनों के अभाव में उनका दोहन सम्भव नहीं हो

i) जातिवाद, भाषावाद, प्रान्तवाद, धर्म के आधार जनसंख्या का विभाजित होना

के मार्ग में विशेषकर आर्थिक विकास के मार्ग में जातिवाद, धर्म, भाषा प्रान्त, आदि टान सरीखे बाधक बन कर देश के विकास और विशेषकर आर्थिक विकास के मार्ग में उत्पन्न करने में समय समय पर अप्रत्यासित भूमिकायें उपस्थित कर देते हैं जिनसे पार दूर अन्य गुणित बाधायें उत्पन्न हो जाती हैं। उदारहण के लिए सम्बन्धित तत्वों द्वारा मय पर आन्दोलनों के दौरान भारी राष्ट्रीय सम्पत्ति को नष्ट करना आर्थिक विकास में नहीं है तो और क्या है ?

भ्रष्टाचार का असीमित रूप

स प्रकार के आचरण का आने वाली भावी पीढियों पर क्या प्रभाव होगा पर विचार लानि ही हो सकती है। सरकार, प्रशासन की अक्षमता को दर्शाने वाली आये दिन की ग्रष्टाचार के असीमित रूप को प्रकट करती रही हैं। आये दिन के घोटाले, राजनैतिक, , क्षेत्रिय असंतोष की विभिषिका, धार्मिक उन्माद, जातिय संरक्षण, हिंसा, घोर बैंक डकैतिया, रोड होल्डपास की घटनायें, क्षेत्रिय तनाव की दशायें राष्ट्रीय क्षति को और देश का स्थान अन्य देशों से सहभागिता निभाने में पिछड़े सहायक हो रही हैं। ता है आज देश को नैतिक और राष्ट्रीय मूल्यों को उजागर करने की ताकि देश का म्भव हो सके।

(x) नवीन सूचना तकनीक का दुरूपयोग

नवीन सूचना तकनीकि का उपयोग संचार संसाधनों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए था जैसा कि अन्य विकसित देशों में होता है परन्तु भारत के बड़े नगरों से लेकर छोटे नगरों तथा अन्य प्रतिष्ठानों में नवीन सूचना तकनीकि का दुरूपयोग यह बताता है कि देश में ऐसे तत्वों की कमी नहीं है जो साइबर केफ, कम्प्यूटर, इमेल, फैक्स, टेलीफोन और मोबाइल का दुरूपयोग समाजविरोधी अपराधी गतिविधियों के लिए अधिक करते हैं और अनैतिक कार्यों की वृदिध तथा अपराध में बढ़ावा दे रहे हैं। यदि उनका आर्थिक विकास हेतु उपयोग होता तो श्रेयस्कर विकास कार्य के क्रियान्वयन में बढ़ावा मिलता।

(xi) प्राकृतिक आपदायें

आर्थिक विकास में बाधा के रूप में प्राकृतिक आपदायें जैसे बाढ़, सूखा, महामारी, भूचाल, समुद्री तूफान, भूस्खलन आदि महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभाती हैं। जिससे आर्थिक विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। उत्पादन कम हो जाता है। कभी-कभी भारी जान-माल का नुकसान हो जाता है। स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। सोनामी लहरों का ताण्डव लाखों जाने ली, लाखों को घर/आवास से नहरूम कर दिया, लाखों बच्चों को अनाथ और अभिभावकों को अपनों से छीन लिया और असहाय बना दिया। जंगलों में अग्नि का ताण्डव जो आर्थिक विकास को क्षतिग्रस्त करता है से सभी अवगत हैं।

(xii) दुर्घटनायें

रेल, रोड़, जैसे सिलेण्डर, वायुयान, शार्ट सर्किटिंग से आग लगने की घटनायें आर्थिक विकास के मार्ग में बाधक होती हैं और करोड़ों की धनराशि की हानि होती हैं। खदानों की घटनायें भी दुर्घटनायें, अनेक निर्माण कार्यों का त्वरित ध्वस्त हो जाना तथा आतंकवाद और आक्रामक शक्तियों द्वारा विछायी विद्धवंशक सामग्रियां समय-समय पर आर्थिक विकास में वाधा बनी है। विदेशी आक्रमणों को भी दुर्घटना की ही संज्ञा दी जा सकती है जिससे भारी मात्रा में जान-माल की हानि से देश को आर्थिक हानि उठानी पड़ी है।

6.8 सारांश

सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास आपस में एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। आर्थिक विकास में परिवर्तन होता है। सामाजिक परिवर्तन का आर्थिक विकास का आधार भी है औ नयी मानसिकता, नये संस्थागत परिवर्तन, सामाजिक सम्बन्ध बनाने में सहायक होता है। आर्थिक रूप से विकसित समाजों में जीवन यापन के ढंग, साहसिकता, राष्ट्र के प्रति प्रेम पनपता है और परिवार समूह के प्रति सम्मान, प्रेम, सहानुभूति सहायता और दायित्वों में वृ होती है। समाज की उन्नति और विकास में आर्थिक विकास का योगदान अपरिमित प्रकार का होता है।

आर्थिक विकास से राष्ट्र सम्पन्नता की ओर बढ़ता है। राष्ट्रीय एकीकरण की भावना सुदृढ़ होती है। विकसित राष्ट्र विकसित समाज का आधार बनता है। पूंजी का आधार नवीनता का आधार माना जाता है। ज्ञान विभाग सचना प्रोद्योकी. बैंकिंग व्यवस्था, वाणिज्य, शिक्षण

यें, नये उद्योग धन्धों को जन्म देते हैं। सुख सुविधाओं में वृद्धि होती है। निवेशकों का
निवेश में बल मिलता है। संचार के साधनों का विस्तार होता है। मानवसंसाधन गुणात्मक
है और आर्थिक आधार पर राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय स्थान प्राप्त करने में सक्षम होता है। जीवन
में सुधार का आधार प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि से ही सम्भव है। वर्गीय शक्तियाँ शासन,
न एवं सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को पूर्ण रूप से क्रियान्वित करन में सहयोग
हैं। और आर्थिक विकास के मार्ग में आने वाले अवरोध को पर जन-सहयोग के माध्यम
जय प्राप्त करने में सहायता मिलती है। अत: सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास
ामी प्रक्रिया के माध्यम से राष्ट्रीय विकास में सहायता पहुँचाती है और दोनों एक दूसरे के
के रूप में सक्रिय होते हैं और विकास का मार्ग सुरक्षित और स्थायी रूप से अग्रसर होता

9 संदर्भ ग्रन्थ/उपयोगी पुस्तकें

कुलबीर सिंह : भारत में सामाजिक परिवर्तन, अनु प्रकाशन, मेरठ, 1976

फ्रैंक्वास पोराक्स : ए न्यू कान्सेप्ट आफ डेवलपमेन्ट बेसिक टेनेटस यूनेस्को, पेरिस, 1983

रत्ना दत्ता : वैलूज इन माडेल्स आफ मार्डर्नाइजेशन, विकास पब्लिकेशंस, दिल्ली, बाम्बे, बंगलोर, कानपुर, लंदन, 1971.

एन० जे० स्मेल्सर : सोशल्ल चेन्ज इन दी इन्डस्ट्रियल रिवाल्यूशन, शिकागो : यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, 1959.

डैविड सी० मैक्लीलैण्ड : दी अचीमिंग सोशायटी (प्रिंस्टन, न्यू जेरेशी : डी वान नास्टैण्ड कम्पनी, इन्क. 1961.

डैनियल लर्नर : दी पासिंग आफ ट्रेडिशनल सोशायिटी (न्यू यार्क : दी फ्री प्रेस, 1959

.10 सम्बन्धित प्रश्न

1) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

अ. सामाजिक परिवर्तन का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषतायें स्पष्ट कीजिये।

ब. सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास के कार्यकरण की विवेचना कीजिये।

स. आर्थिक विकास के अवरोधों की विवेचना कीजिये।

द. आर्थिक विकास एवं सामजिक परिवर्तन में सम्बन्ध दर्शाइये।

(2) लघु उत्तरीय प्रश्न

य. आर्थिक विकास स्पष्ट कीजिये।

र. सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन में अन्तर बताइये।

ल. क्षेत्रिय असमानता क्या है ?

व. आर्थिक विकास के मार्ग में अवरोधक कौन-कौन से हैं।

(3) वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(i) सामाजिक सम्बन्ध का आधार है :

स. समाज

ष. सरकार

श. प्रशासन

ह. राजनीति

(ii) निम्नांकित में से 'समाज' की अवधारणा है :

प. मूर्त

फ. अमूर्त

ब. ठोस

भ. दुनियावी

(iii) आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन है :

य. एक दूसरे के विरोधी

र. एक दूसरे से सम्बन्धित

ल. एक दूसरे को कम करने वाले

व. एक दूसरे को पीछे लो जाने वाले

(iv) निम्नांकित में से कौन सा आर्थिक विकास का अवरोधक नहीं है :

इ. भ्रष्टाचार

ई. राष्ट्रीय एकीकरण

उ. प्राकृतिक आपदायें

ऊ. क्षेत्रवाद

उत्तर (1) (स)

(2) (फ)

(3) (र)

(4) (ई)

इकाई 7 आर्थिक विकास की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय समस्याएं एवं परिणाम

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 समस्याएं एवं ध्यान देने योग्य बातें

7.3 सामाजिक समस्याएं

- 7.3.1 खर्चीले संस्कार
- 7.3.2 शारीरिक श्रम के प्रति अरुचि
- 7.3.3 भिक्षावृत्ति
- 7.3.4 भूस्वामित्व प्रणाली
- 7.3.5 संयुक्त परिवार प्रथा
- 7.3.6 जाति प्रथा

7.4 संस्कृति एवं विकास में प्रगाढ़ संबंध

7.5 अभौतिक संस्कृति का प्रभाव

- 7.5.1 शिक्षा
- 7.5.2 शिक्षा का महत्व
- 7.5.3 शिक्षा विकास की जड़
- 7.5.4 आर्थिक विकास में शिक्षा का योगदान
- 7.5.5 धर्म एवं आर्थिक विकास
- 7.5.6 राष्ट्रीयता एवं आर्थिक विकास
- 7.5.7 नैतिक मूल्य एवं आर्थिक विकास

7.6 पर्यावरणगत समस्याएं एवं परिणाम

- 7.6.1 पर्यावरण के विनाश को रोकने के सुझाव

7.7 सारांश

7.8 प्रश्न

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जानकारी कर सकेंगे :

- आर्थिक विकास की आर्थिकेतर समस्याओं के विषय में

- सामाजिक समस्याओं एवं उनके परिणामों के बारे में
- सांस्कृतिक समस्याओं एवं उनके प्रतिफलों के विषय में
- पर्यावरण के अनुचित दोहन से उत्पन्न खतरों के विषय में

7.1 प्रस्तावना

विकास का उत्साह ठंड न पड़े, विकास से जीवन की गुणवत्ता का विकास हो, विकास फायदेमन्द रहे, उसके हानिकारक प्रभाव को दूर कर विकास को लाभोन्मुख बनाया जा सके, प्राकृतिक संसाधनों का दोहन उसी सीमा तक हो जिससे प्रकृति कराहने न पाये हेतु विकास के मार्ग में आने वाली सभी रुकावटों की जानकारी होनी चाहिए। विकास अपनी धारणीय सीमा से आगे न बढ़ने पाये इसलिए विकास से जुड़ी समस्याओं एवं विकास के प्रभावों पर ध्यान रखना अनिवार्य एवं उचित है। उक्त लिहाजों से ही आर्थिक विकास की अनार्थिक समस्याओं की अनदेखी नहीं करनी चाहिए, का विचार पुष्ट होता है और प्रस्तुत इकाई में इन अनार्थिक समस्याओं एवं उनके प्रभावों का विश्लेषण एवं विवेचन इस इकाई में प्रस्तावित है।

7.2 समस्याएँ एवं ध्यान देने योग्य बातें

किसी कार्य को प्रारम्भ करने के बाद कुछ चुनौतियों अथवा बाधाओं का सामना कर्ताओं को करना पड़ता है जिन्हें समस्याएं कहना अधिक पसन्द किया जाता है। कोई भी कार्य निर्विघ्न होता रहे। इसके लिये बाधक तत्वों की जानकारी कर उनसे सावधान रहने की आवश्कता है आर्थिक विकास का मार्ग भी चुनौतिओं अथवा बाधाओं से रहित नहीं है। प्रारम्भ में ये बाधाएं अज्ञात रहती हैं अथवा मालूम नहीं होतीं परन्तु कालान्तर में ये उभर कर सामने आ जाती हैं।

आर्थिक विकास के विषय में सबसे बड़ी बाधा विकास को लेकर ही है। प्रश्न है कि क्या असीमित विकास होता रहे या फिर उसकी अति कहीं निर्धारित हो। विकास के लिए अनिर्धारित अति समस्या बन जाती है क्योंकि 'अति सर्वत्र वर्जयेत्' की नीति एक सुन्दर एवं अनुसरणीय नीति है। आवश्यकता से अधिक विकास व्यक्ति, समाज तथा राष्ट्र के हित में न होगा। विकास का बोझ प्रकृति पर उतना ही डाला जाना चाहिए जितना वह सहन कर सके। इतना विकास न हो, इतना प्रकृति का दोहन न हो कि प्रकृति उसका बोझ ही न सह सके और कराहने लगे अथवा लड़खड़ाने लगे। 'उतना गुदगुदाओ जितने में हंसी आए' की नीति सर्वाधिक उपयुक्त है। प्रकृति को इतना न गुदगुदाया जाये कि वह आंसू बहाने लगे। अभिप्राय यह है कि प्राकृतिक संसाधनों का इतना शोषण हो जितना प्रकृति सह सके। **आर्थिक विकास का प्रभाव (दीर्घकाल) प्रकृति और मानव पर अनुकूल पड़े तो उसे 'धारणीय विकास कहते हैं।** किसी भी देश में विकास धारणीयता की सीमा को पार न करे

ो समस्याएं पैदा होने लगेंगी।

ोयता के अलावा भी किसी देश अथवा समाज के सामाजिक सांस्कृतिक कारकों का ध्यान भी आवश्यक है क्योंकि ये विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं। ये कारक स की गति को मंद करते हैं अथवा विकास की अग्रगति को अवरुद्ध करते हैं। नतीजा ोता है कि निर्धारित समय सीमा के अन्तर्गत विकास के वांछित और इच्छित परिणाम नहीं हो पाते हैं।

ध्यान देने की एक अन्य बात यह भी है कि विकास शून्य में नहीं होता। इसके लिए जैक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि चाहिए। विकास इस पृष्ठभूमि से अवश्यमेव प्रभावित होता है। ंस्थितियाँ सामाजिक विकास के उत्प्रेरक तत्व है। क्योंकि ये उदास नहीं रहती हैं। ये स को मन्द अथवा धीमा करती हैं। यदि वे विकास के अनुकूल हैं तो विकास की गति ज भी कर देती हैं।

काई में समस्याओं को तीन वर्गों में बांट कर उनका ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है—

- सामाजिक समस्याएं
- संस्कृतिक समस्याएं
- पर्यावरणीय समस्याएं

सामाजिक समस्याएँ

4, इकाई 'विकासशील समाजों की समस्याएँ शीर्षक के अन्तर्गत कुछ सामाजिक ओं पर प्रकाश डाला जा चुका है इसलिए यहाँ पर उन्हें सम्मिलित नहीं किया गया हे। बिन्दुओं पर हम वहाँ प्रकाश डाल चुके हैं—

पुरानी आदतें, विचार पद्धितियां एवं संस्थाएं

विकास की प्रबल प्रेरणा एवं इच्छाशक्ति की कमी।

सहयोग एवं सहयोग की क्षमता का अभाव

रूढ़ियाँ एवं परम्पराएँ

नसंख्या वृद्धि

के अलावा भी कुछ सामाजिक बाधाएं हैं उनका उल्लेख एवं विवेचन यहां प्रस्तुत किया ा है।

1 **खर्चीले संस्कार**—भारतीय समाज में जीवन भर संस्कारों का दौर चलता रहता है ं अत्यधिक धन रु र्च हो जाता है जिससे विकास के लिए आवश्यक धन में कमी आ से विकास में रुकावट आती है।

2 **शारीरिक श्रम के प्रति अरुचि**—विकास के लिए शारीरिक श्रम की भी आवश्कता है। शारीरिक श्रम को जहाँ हेय एवं अप्रतिष्ठित माना जाता हो वहां विकास पर

प्रतिकूल प्रभाव पड़ना ही है। प्रतिष्ठा वाले व्यवसायों की ओर मनुष्य आकृष्ट होते हैं भले ही उन्हें श्रम अधिक करने पर पारिश्रमिक कम क्यों न मिले? भारतवर्ष में लोग गांवों में जाकर कार्य करने के लिए जल्दी तैयार नहीं होते हैं। वे शहरों में रहकर काम करना अधिक पसन्द करते हैं। इससे सेवा भाव का उनमें लोप होने लगता है जो विकास के लिए हानिकारक है। समाज में श्रम को प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। गाँव हो या शहर हर जगह युवकों को काम करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

7.3.3 भिक्षावृत्ति—भिक्षावृत्ति समाज एवं विकास दोनों के लिए अभिशाप है आलसी एवं निकम्मा लोग हट्टा-कट्टा होने पर भी भीख मांगकर जीवन निर्वाह करने लगते हैं। धर्मभीरूता एवं दयालुता के कारण लोग भिक्षा दे भी देते हैं। भिक्षावृत्ति को रोकने का प्रयास करने की आवश्यकता है यदि विकास का अभीष्ट करने का इरादा है।

7.3.4 भूस्वामित्व प्रणाली—स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हो गया जिससे किसानों के शोषण पर रोक लग गयी। भूमि वितरण की नई व्यवस्था लागू की गयी। कृषि पर सीलिंग व्यवस्था लागू की गयी। जिन लोगों के पास सीलिंग से अधिक जमीन थी उनसे ले ली गयी। इस ली गयी भूमि का वितरण भूमिहीनों तथा हरिजनों में होना था। भूमि वितरण के समय निहित स्वार्थों ने भूमि पर कब्जा कर लिया। कहीं-कहीं पर पट्टा भूमिहीनों और हरिजनों के नाम किया भी गया पर वह जमीन उन्हें मिल नहीं सकी क्योंकि उस पर कब्जा दबंगों का ही रहा। इन दबंगों के विरुद्ध आवाज उठाने की क्षमता एवं साहस इन भूमिहीनों और हरिजनों में नहीं था। भू-स्वामित्व प्रणाली में सुधार हुए। भू-स्वामित्व अधिकारों में परिवर्तन हुए। असामियों (टेनेन्ट्स) को कानूनी संरक्षण मिला। भारतवर्ष में इन भूमिसुधार का छिपे तौर पर विरोध हुआ। मध्यस्थों का उन्मूलन किया गया। भारतवर्ष में मध्यस्थों के नीचे जो असामी अथवा काश्तकार होते हैं वे भी हमेशा उस स्तर पर खेती नहीं करते हैं। ये शिकमी काश्तकारों (सब टेनेन्ट्स) को खेती करने के लिए भूमि देते हैं। कमाल है कि मध्यस्थों का उन्मूलन होने पर भी शिकमी काश्तकारों की प्रथा मौजूद है।

इन भूमि सुधारों का सफल एवं प्रभावी क्रियान्वयन न होने से आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। अक्रियान्वयन् भारत के भूमि सुधारों की सबसे बड़ी दुर्घटना है। भूमि सुधारों का इतिहास उनके क्रियान्वयन् की असफलता से भरा पड़ा है।

7.3.5 संयुक्त परिवार प्रथा—परिवार की संरचना आर्थिक विकास को कई तरह से प्रभावित करती है।

व्यक्ति का कार्य के प्रति दृष्टिकोण, बचत करने की प्रवृत्ति, कार्य करने की प्रेरणा, व्यवसाय को परिवार तक सीमित रखने की प्रवृत्ति द्वारा आर्थिक वातावरण प्रभावित होता है। संयुक्त परिवार को एक बड़ी दुर्बलता यह है कि यहाँ आलसी और निकम्मों की आवश्यकताएं भी पूरी होती हैं जिससे निकम्मों की सेना तैयार होने लगती है और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है। यहाँ स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। उन्हें बाहर निकलने की अनुमति नहीं थी अर्थात् उन्हें घर से बाहर कार्य करने की इजाजत नहीं थी जिससे आर्थिक विकास में

उनका कोई योगदान नहीं मिल पाया। यहां पर ध्यान देने योग्य बिन्दु है—

1. आर्थिक विकास में स्त्री-पुरुष दोनों के योगदान की आवश्यकता है।
2. निष्क्रिय व्यक्तियों की वृद्धि से उपयोग और बचत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

आर्थर ल्युइस के इस मत का समर्थन करना तर्कसंगत लगता है कि आर्थिक विकास को गति प्रदान करने के लिए अथवा राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए सबसे अच्छा प्रभाव घर से बाहर महिलाओं के लिए रोजगार का सृजन करना सार्थक है। संयुक्त परिवार का कार्य महिलाओं को आगे आने से रोकने का रहा है। संयुक्त परिवार प्रणाली बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए अनुपयुक्त थी। यहाँ केवल लघु उद्योगों की स्थापना आसानी से हो सकती थी क्योंकि ये परिवार छोटे-छोटे उद्योगों को विकसित करने के लिए अधिक उपयुक्त थे।

संयुक्त परिवार श्रम की गतिशीलता को रोककर, आपसी संघर्ष व कलह को बढ़ाकर आलस्य की भावना को संरक्षण देकर, वैयक्तिक उद्यम और प्रेरणा को ठेस पहुँचाकर अर्थिक विकास में बाधक बनता है।

परिवारों का बटवारा हो जाने से जोत का आकार छोटा हो जाता है जिससे मशीनों (टैक्टर आदि) के प्रयोग में अड़चन पड़ती है। उत्तराधिकार के नियम उत्तराधिकारियों को आलसी बना देते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि उत्तराधिकार में कुछ न कुछ अवश्य मिलेगा। फलत: वे स्वावलम्बन पर ध्यान नहीं देते। किसी प्रकार की पराधीनता अथवा परावलंबन आर्थिक विकास में बाधक है।

7.3.6 जाति प्रथा—एक व्यक्ति जाति में पैदा होता है वहीं बड़ा होता है और जीवन पर्यन्त वहीं रहता है। ऐसे में जाति के प्रति उसमें अगाध प्रेम हो जाना स्वाभाविक है। जाति एक व्यक्ति के लिए उसका रक्षा कवच है। वह अपनी जाति के दायरे तक सीमित है। अपनी जाति के विकास में उसकी दिलचस्पी रहती है। अपनी जाति को श्रेष्ठ समझता है। ऐसी हालत में तीन हजार जातियों में से कोई दस बीस जातियों के विकास से सम्पूर्ण भारतीय समाज का विकास कैसे हो सकता है। **जातीयता अथवा जातिवाद एक संकीर्ण विचारधारा है जो राष्ट्रीय विकास एवं एकीकरण में बाधक है। जाति के नियम और जातियाँ आर्थिक विकास में सदा से बाधक रहे हैं।**

जातियता के अलावा जातिजन्य छुआछुत पूर्वाग्रह को जन्म देकर विकास में रोड़ा अटकाने का काम करती है और मनुष्यों को छूत-अछूत वर्गों में बाटने का काम करती है। इस प्रकार का भेद विकास पर कभी भी अनुकूल प्रभाव नहीं डाल सकता। विकास के लिए छूच-अछूत दोनों का सहयोग चाहिए। यह भेद विशेषाधिकारों एवं निर्योग्यताओं को उपजाता है। ये निर्योग्यताएं आर्थिक विकास को आगे बढ़ने से रोकती हैं। प्रभुजातियाँ अपने विशेषाधिकारों के प्रति सजग रहती हैं और इनकी रक्षा इसलिए करती है क्योंकि इनमें इनका लाभ निहित है। प्रत्येक जाति अपने जातीय पेशे को महत्व देती है। जाति के सदस्य उसी व्यवसाय को करते हैं। जाति की व्यवसायगत बाधाएं श्रम की गतिशीलता पर रोक लगाती हैं

जब जन्म ही पेशे का निर्णायक तत्व हो तो अर्जित योग्यताओं और कुशलताओं का वहां कोई मूल्य नहीं रह जाता है। पेशे की पवित्रता अपवित्रता की धारणा आर्थिक विकास को ठेस पहुँचाने का कार्य करती है।

पेशे की जातिगत मान्यताओं का संस्कृतिकरण, पश्चिमीकरण एवं भूमण्डलीकरण द्वारा खण्डन किया जा चुका है। फिर भी प्रच्छन्न रूप से जातीयता का विचार उपजाकर समाजव्यापी एवं राष्ट्रव्यापी आर्थिक विकास को अवरुद्ध करने का कार्य जाति प्रथा द्वारा किया जा रहा है।

अनेक जातीय परिवर्तन हो जाने के बाद भी जातियाँ अपने-अपने हितों को पूरा करने में, अपनी आर्थिक प्रगति और उन्नयन में संलग्न हैं। यह स्थिति आर्थिक विकास को अपनी मंजिल तक जाने से रोकती है।

7.4 संस्कृति एवं विकास में प्रगाढ़ संबंध

संस्कृति एवं सांस्कृतिक मूल्य आर्थिक विकास को प्रभावित करते हैं और उल्टे ये आर्थिक विकास से प्रभावित भी होते हैं। अत: संस्कृति आर्थिक विकास का प्रभावक होने के साथ-साथ उससे प्रभावित भी हैं। दोनों में पारस्परिकता का संबंध है। उसी आर्थिक सम्वृद्धि को आर्थिक विकास कहते हैं जिस आर्थिक सम्वृद्धि को संस्कृति एवं सांस्कृतिक मूल्य अनुमति और समर्थन देते हैं। इसे एक उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है। मुर्गीपालन में वृद्धि और अंडों में वृद्धि उस समाज के लिए विकास नहीं है। जिसकी संस्कृति मांस और अंडों के सेवन को अभक्ष्य मानती है। पर जिस संस्कृति में मांस और अंडों का प्रयोग भक्ष्य माना जाता है वहां मुर्गी पालन एवं अंडों में वृद्धि को आर्थिक विकास मान लिया जाया है।

प्राय: आर्थिक विकास को आधुनिकीकरण के रूप में समझा जाता है। पुरानी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं रूढ़ियों के रहते आधुनिकीकरण एक कल्पना मात्र है। सांस्कृतिक परम्पराएं कार्य के पुराने तरीकों को समर्थन देती हैं। हल बैल से कृषि करना एक परम्परागत तरीका है। आधुनिकीकरण में विज्ञान, आविष्कारों एवं प्रौद्योगिकी का प्रयोग निहित है। पुराने ढंग से और पुराने उपकरणों से खेती करने से कृषि उत्पादन को नहीं बढ़ाया जा सकता है। उन्नत हल, उन्नत किस्म के बीजों, रासायनिक उर्वरकों कीटनाशक दवाइयों एवं उपयुक्त सिंचाई सुविधाओं के माध्यम से कृषि पैदावार को बढ़ाया जा सकता है। भौतिक संस्कृति में परिवर्तन आसानी से स्वीकार कर लिये जाते हैं पर भौतिक संस्कृति में परिवर्तन इतनी आसानी एवं शीघ्रता से स्वीकार नहीं हो पाते। अत: अभौतिक संस्कृति परिवर्तन पर प्रतिकूल प्रभाव डालकर विकास की प्रक्रिया को कुंठित करती है।

7.5 अभौतिक संस्कृति का प्रभाव

7.5.1 शिक्षा—हाल में हुए शोध कार्यों (जैसे डब्ल्यू शुल्ज द्वारा किया गया शोध कार्य) से स्पष्ट हो चुका है कि आर्थिक विकास भौतिक साधनों के निवेश के साथ-साथ शिक्षा में

किये गये निवेश का परिणाम है। अशिक्षा, अज्ञानता और अप्रशिक्षण विकास के लिए बाधक हैं। विकास के अच्छे साधनों में मनुष्य की क्षमताओं का विस्तार, उसके ज्ञान और कुशलताओं में वृद्धि को गिना जाता है।

7.5.2 शिक्षा पर व्यय—

शिक्षा का महत्व—पहले यह मान्यता थी की शिक्षा पर व्यय उपभोग है। अब यह धारणा निर्मूल हो चुकी है। यह धारणा आज बीते युग की धारणा बन चुकी है। नियोजकों, विकासवेत्ताओं तथा अर्थशास्त्रियों ने शिक्षा पर किये गये व्यय के महत्व को अच्छी तरह समझ लिया है। आजकल भौतिक साधनों में निवेश के साथ 'मनुष्य में निवेश' और मानवीय योग्यता में निवेश को आवश्यक माना जाने लगा है। **शिक्षा पर व्यय भौतिक साधनों के कुशल उपयोग हेतु वांछनीय है।** भौतिक पूँजी का उपयोग, मनुष्य ही करते हैं और कोई नहीं। उनके ज्ञान, कौशल एवं क्षमताओं के बल पर भौतिक पूँजी का उपयोग सार्थक सिद्ध होता है। तकनीकी, व्यावसायिक और प्रशासन में निपुण व्यक्ति प्रभावी ढंग से भौतिक पूंजी की वृद्धि कर सकते हैं। शिक्षा मनुष्य का चतुर्दिक विकास करती है। शिक्षा की आर्थिक विकास के लिए उपादेयता सर्वत्र एवं सार्वकालिक है। विशाल जन समूह को अंधकार से आलोक की ओर लाने हेतु शिक्षा का विस्तार अपरिहार्य है।

7.5.3 विकास की जड़—शिक्षा विकास की जड़ है। 'सामाजिक पूंजी' में सुधार शिक्षा द्वारा ही संभव है और सामाजिक पूंजी में सुधार के बिना विकास संभव नहीं है। आज सभी एक स्वर से कहते हैं कि बौद्धिक विकास पर व्यय उत्पादक होता है। अब इसके अनुत्पादक होने की बात कोई नहीं कहता शिक्षा में निवेश आर्थिक विकास का मूल है।

7.5.4 आर्थिक विकास में शिक्षा का योगदान—शिक्षा सामाजिक क्रान्ति लाने में सहायक है—सामाजिक ढांचे में परिवर्तन लाकर शिक्षा आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव डालती है। मनोवृत्तियों, मूल्यों एवं विचारों में बदलाव शिक्षा का प्रतिफल है। मूल्य एवं विचार हमारे कार्यों का मार्ग दर्शन करते हैं। समाज में प्रचलित बुराइयों और अन्धविश्वासों का अन्त करने की जिम्मेदारी शिक्षा पर है। छुआछूत श्रम के प्रतिं अरुचि, भाषा, क्षेत्र, समप्रदाय एवं जातिगत संकीर्णताएं विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं। पर शिक्षा प्रसार के फायदे विकास के लिए अनुकूल हैं। जैसे शिक्षा के प्रसार से नारी की स्थिति में बदलाव आया है, कार्य के प्रति दृष्टिकोण में अन्तर आता है, अनुचित एवं हानिकारक मूल्यों को हटाने में सहायता मिली है आदि आदि।

शिक्षा उत्पादन क्षमता को बढ़ाती है। उन्नत तकनीक का प्रयोग शिक्षित श्रमिकों पर आधारित है। पूंजी के सदुपयोग के लिए मजदूरों के शिक्षा स्तर में सुधार की आवश्यकता है। शिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा ही उच्च तकनीक युक्त मशीनों एवं उपकरणों का उपयोग संभव है। किसी उद्योग के प्रबन्धकों एवं श्रमिकों में ताल-मेल के लिए शिक्षा की उपयोगिता जग जाहिर है। पढ़ा-लिखा श्रमिक या प्रशिक्षक विदेशी प्रशिक्षकों से उत्पादन तकनीक सुगमता से सीख लेता है। शिक्षा श्रम की गतिशीलता में वृद्धि करके भी उत्पादन क्षमता को बढ़ाने में मदद करती है।

शिक्षा द्वारा तकनीकी एवं कुशल श्रमिकों की पूर्ति शीघ्र होती है। आर्थिक विकास तकनीकी एवं कुशल श्रमिकों द्वारा संभव है। कुशल एवं प्रशिक्षित श्रम हेतु शिक्षा एक अचूक उपाय है। इन कुशल श्रमिकों का प्रशिक्षण करने वाले भी कुशल हों इस हेतु भी शिक्षा का महत्व है। शिक्षा एवं प्रशिक्षण के बल पर कोई भी राष्ट्र विकसित राष्ट्रों में अपनी गणना करा सकता है भले ही भौतिक संसाधनों की कमी उस राष्ट्र में क्यों न हो। जापान इसका ज्वलन्त उदाहरण है। आज शिक्षा एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण में निवेश पर राष्ट्रों का पर्याप्त ध्यान है। शिक्षा द्वारा आर्थिक समानता लाई जाती है। आर्थिक विकास का लाभ सभी को समान रूप से मिले, इसके लिए भी शिक्षा का योगदान अपेक्षित एवं सराहनीय है। सभी को शिक्षा के समान अवसर उपलब्ध कराकर आर्थिक असमानता को घटाया जा सकता है। शिक्षा पर उच्च एवं धनी व्यक्ति का एकाधिकार समाप्त कर निम्न वर्ग को शिक्षा के अधिक अवसर प्राप्त कराये जा सकते हैं। सरल शब्दों में शिक्षा से वितरण की असमानता को दूर किया जा सकता है।

7.5.5 धर्म एवं आर्थिक विकास—निस्संदेह धर्म की पकड़ लोगों पर रहती है। धर्मगत प्रचलित धारणाओं एवं परम्परागत विश्वासों में धर्म की यह पकड़ उन्हें जकड़े रहती है। धर्म की पकड़ और जकड़न सामाजिक परिवर्तन में बाधक बनती है। ऐसा तब और अधिक होता है जब यह जकड़न लम्बे समय से चली आ रही हो और उससे छुटकारा पाने के लिए कोई उपाय न हुआ हो। धर्म का दूसरा प्रभाव संतोष के रूप में देखा जा सकता है। एक और अन्य प्रभाव यथास्थिति को बनाये रखने में सहायक होता है। इससे भी आगे इसका प्रभाव व्यक्ति को नियतिवादी बनाने में परिलक्षित होता है। ऐसा नहीं है कि धर्म दर्शन का प्रभाव आर्थिक विकास में सहायक हो। उदाहरण के लिए गोरखनाथ का यह दर्शन 'आज खाय और कल को झंखे'। ताको गोरख साथ न रखे॥' वचत पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और उपभोग पर वल देता है। इसी तरह दास मलूका का धर्म दर्शन यह कहकर कि 'अजगर करे न चाकरी, पंक्षी करे न काम। दास मलूका कह गये सबके दाता राम॥' मनुष्य को आलसी और अकर्मण्य बनाता है।

धर्म की यह मान्यता की ईश्वर सब कुछ है और मनुष्य उसके हाथ की कठपुतली है आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

संतोष का भाव जगाकर धर्म यथास्थिति का समर्थन करता है और मानव को आलसी बनाता है। यथा—

- रूखा सूखा खाय के ठंडा पानी पीव।
  देखि पराई चूपड़ी मत ललचावे जीव॥
- जाही विधि राखे राम ताहि विधि रहिए।
- हुईहै वहै जो राम रचि राखा। आदि उक्तियां धर्म का आर्थिक विकास पर प्रतिकूल प्रभाव दर्शाती हैं। धर्म तर्कशीलता एवं विवेकशीलता में बाधा बनकर आर्थिक विकास को

त करता है। मनुष्य धर्म के नशे में सुध-बुध खोये बैठा रहता है। उसे विकास की कोई ह नहीं रहती। फलस्वरूप विकास रुक जाता है। कार्ल मार्क्स ने ठीक ही कहा है कि जनता की अफीम है।'

। मांसाहारी होगा या शाकाहारी इसका निर्णय धर्म द्वारा शाकाहारी के पक्ष में होगा क्योंकि जैसे धर्म हिंसा के घोर विरोधी हैं। अहिंसा पर जब धर्म का जोर होता है तो गोवंश की का भाव प्रबल होता है। गोवंश की रक्षा के विचार का परिणाम यह निकलता है कि भप्रद और बेकार पशुओं की संख्या में वृद्धि होती रहती है और चारे की समस्या पैदा हो है। एक तो भूमि पर जनसंख्या का दबाव तो पहले से है और पशुओं की बेकार वृद्धि से पर और दबाव बढ़ जाता है। डॉ. वी. एम. दाण्डेकर के अनुसार एक तिहाई गायें दुध देती सका मतलब यह हुआ कि दो तिहाई गायें दूध तो देती नहीं और ऊपर से चारा खाती हैं। । तिहाई अलाभप्रद गायों का हानिकारक आर्थिक प्रभाव स्वयं सिद्ध है।

ारा भक्ष्याभक्ष्य का निर्धारण होता है। इस निर्धारण द्वारा धर्म उपभोग पर भी गहरा प्रभाव ा है। चार्वाक दर्शन आर्थिक विकास की ओर से ध्यान हटाकर मनुष्य को मात्र उपभोग त बनाता है। 'यावज्जीवेत सुखं जीवेत, ऋणं कृत्वा घृत पीवेत' का विचार उपभोग पर यकता से अधिक बल देकर विकास की गति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है।

राष्ट्रीयता एवं आर्थिक विकास—'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं— यह कथन सत्य ो राष्ट्र साम्राज्यवाद के शिकार थे वे पराधीन के, स्वतंत्र नहीं थे। **एकता एवं स्वतंत्रता** के आर्थिक विकास के लिये आवश्यक तत्व हैं। साम्राज्यवाद के अधीन देश उक्त दोनों से वंचित थे। अत: इन देशों ने स्वतंत्रता आन्दोलन चलाकर अपने को मुक्त करा लिया ाष्ट्रीयता, एकता और अखण्डता की भावनाओं को अपनाकर विकास पक्ष की ओर चल भारत भी अंग्रेजों के अधीन था। सन् 1947 में उसने स्वतंत्रता हासिल कर ली। अब वह स की यात्रा पर चल रहा है। वह शीघ्र ही विकसित राष्ट्रों की कोटि में स्थान पा लेगा भावना बलवती होती लग रही है। यह भारत की जाग्रत राष्ट्रीय भावना का ही परिणाम है ारत आर्थिक दृष्टि से लगातार सम्पन्न हो रहा है।

ता की भावना का एक लाभ यह है कि इससे जाति भाषा क्षेत्र, सम्प्रदाय, धर्म, जनजाति को संकीर्णताओं की उपेक्षा कर अथवा इनसे ऊपर उठकर विस्तृत राष्ट्रीय हितों को रि माना जाने लगा है। राष्ट्र इन संकीर्णताओं से व्यापक एवं बढ़कर है इस विचार से क विकास की ओर बढ़ने से समूचे राष्ट्र का विकास होता है। एक होकर हम सम्मिलित ो प्रतिकूल परिस्थितियों का मुकाबला कर सकते हैं और बिखरे रह कर हम प्रगति नहीं कते। **राष्ट्रीयता निस्संदेह संकुचित विचारों एवं बिखराव को रोकती है। क्षेत्रीयकता बाकर कोई राष्ट्र निर्विघ्न विकास की ओर बढ़ सकता है।**

विवाद से उत्पन्न संघर्ष से भारत को अपार क्षति उठानी पड़ी। साम्प्रदायिक दंगों से न की भारी हानि हुई। तेलंगाना आन्दोलन के कारण रेल, डाक तार आदि को भारी क्षति ा पड़ी।

राष्ट्रीयता की भावना से आर्थिक विकास को बल मिलता है। राष्ट्र के शिक्षित एवं प्रबुद्ध वर्ग को आगे आने की जरूरत है। राष्ट्रीयता एकीकरण को जन्म देती है और **राष्ट्रीय एकीकरण विकास की सफलता की कुंजी है।** राष्ट्रीयता लोगों में सामूहिता और समानता की चेतना उत्पन्न करती है। राष्ट्रीयता के विकास के लिए बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय, बहुजन रक्षणाय एवं बहुजन समत्वाय के प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है। राष्ट्रीयता का आर्थिक विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

7.5.7 **नैतिक मूल्य और आर्थिक विकास** - क्या वांछित है और क्या अवांछित है, क्या उचित है अथवा क्या अनुचित है की जानकारी नैतिक मूल्य कराते हैं। इसके अलावा क्या खाद्य है, क्या अखाद्य है, क्या व्यवहार्य है, क्या अव्यवहार्य है इसका ज्ञान भी नैतिक मूल्य कराते हैं। आर्थिक विकास का सबसे **उपयुक्त सूचक वांछनीय आर्थिक वृद्धि है।** नैतिक मूल्य विकास को परिभाषित करते हैं, उसका स्वरूप तय करते हैं तथा उसे प्रभावित भी करते हैं। अनैतिकता आर्थिक विकास को चौपट करती है। अनैतिकता इमानदारी का गला घोटती है और भ्रष्टाचार में सहायक होती है। हमारे देश में विकास की जितनी भी योजनाएं और कार्यक्रम चलाये जाते हैं इमानदारी की कमी और भ्रष्टाचार के कारण पूरी तरह से सफल नहीं हो पा रहे हैं। वहीं नैतिकता विकास को सफल बनाती हैं। किसी भी योजना के योजना निर्माता एवं उसके क्रियान्वयनकर्ता यदि नैतिक और इमानदार हैं तो योजना सफल होगी, अन्यथा विकास कम होगा। विकास पर धन खर्चा करने वाले यदि 20ब रकम ही खर्च करते हैं और शेष 80ब रकम डकार जाते हैं तो विकास का क्या होगा? विकास नहीं होगा। यदि 100ब रकम खर्च कर देते हैं जो असम्भव है तो कहना ही क्या है? यदि 80ब विकास की रकम खर्च कर 20ब अपनी झोली में भर लेते हैं तो उन्हें इमानदार ही कहना पड़ेगा। यह तो बात हुई विकास के लिए धन खर्च करने वालों की। अब विकास के लाभों के वितरण कर्ता की दृष्टि से विचार करें तो हम पाते हैं कि विकास का अधिकांश लाभ अपनों में वितरित कर दिया जाता है, अपने गांव, परिवार तथा जाति का स्थान बाद में आता है यदि लाभों का उचित एवं समान वितरण होता है तब कोई समस्या ही नहीं है। **समस्या तो तब पैदा होती है जब लाभों का असमान और अनुचित वितरण होता है। बात यहाँ त्याग और भोग पर आकर टिकती है जहाँ त्याग और सेवा सब कुछ है वहाँ विकास ही विकास। जहाँ स्वार्थ और भोग ही सब कुछ है वहाँ विकास की गति धीमी होगी।**

7.6 पर्यावरण समस्याएँ एवं परिणाम

पर्यावरण का उचित दोहन नहीं हो रहा है। वरन् उसका आवश्यकता से अधिक शोषण हो रहा है यही पर्यावरण से जुड़ी समस्या है। प्राकृतिक संसाधनों पर भारी बोझ है जनसंख्या का और पर्यावरण के दुरुपयोग का। आर्थिक विकास के कार्य कलापों से हम पर्यावरण का क्षय कर रहे है, पर्यावरण को प्रदूषित कर रहे हैं और पृथ्वी पर निवास कर रहे जीवों के जीवन के लिए खतरा पैदा कर रहे हैं।

वों एवं **पर्यावरण के परस्पर संबंध को पारिस्थितिकी कहते हैं।** इन जीवों में केवल
नव ही ऐसा जीव है जो पारिस्थितिकी तंत्र (इको सिस्टम) का विनाश कर रहा है। भूमि,
न और वन मानव जीवन और उसे विकास के लिए आवश्यक है। आज के अति विकास ने
मे, जल और वन तीनों के लिए खतरा उत्पन्न कर दिया है। वनों के अधिक काटने से वर्षा
न होती है, भूमि का अपरदन होता है। अत: निर्वनीकरण ने पारिस्थितिक संकट खड़ा कर
या है। वन अनेक जीवों का निवास स्थान भी है। उनके कटने से इन जीवों का घर उजड़
ा है और इनकी संख्या भी घटने लगी है।

मे पर मानव एवं अन्य जीव निवास करते हैं। इसका अत्यधिक शोषण एवं दोहन करके
ने अपने जीवन के लिए खतरा मोल ले लिया है। वन हमारे लिए उपयोगी हैं। वे विश्व के
सम को नियंत्रित करते हैं। अनेक जीव जन्तुओं को घर की सुविधा देते हैं, आक्सीजन की
री मात्रा में पूर्ति करते हैं। वनों के कट जाने का हमारे आर्थिक विकास एवं जीवन के लिए
कट उत्पन्न हो गया है।

र्थिक विकास की अवधि में मानव कई प्रकार से जैव मण्डल को प्रभावित करता है। उद्योगों
निकला कचरा, स्वाचालित वाहनों से निकला धुआँ, कृषि में प्रयुक्त रासायनिकों, विस्फोटों
निकले विष वायुमंडल में प्रवेश करके उसे विषाक्त बनाते हैं। इसके अलावा सल्फर डाई
क्साइड, कार्बन डाई आक्साइड, नाइट्रोजन आक्साइड, शीशा, पारा, निकल, जैसी विषैली
तुएं वायुमंडल में प्रतिवर्ष भारी मात्रा में पहुँच रही हैं और उसे दूषित कर रही हैं।

ल्फर डाई आक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड, वायु की नमी से क्रिया करके सल्फ्यूरिक
र नाइट्रिक अम्ल बनाते हैं जिससे अम्ल वर्षा होती है। अम्लीय बर्फ, अम्लीय बजरी,
म्लीय ओले, अम्लीय धुन्ध, अम्लीय कोहरे तथा अम्लीय ओस के रूप में अम्ल बरसता है।
। विद्वानों ने **अम्लीय कोढ़ कहा है। वायुमंडल में विद्यमान औद्योगिक प्रदूषक को अम्ल**
हते हैं। जो वर्षा के साथ नीचे गिरता है। मध्य पंजाब में कुछ ऐसे हिस्से हैं जहां उर्वरकों
बहुतायत से प्रयोग किया गया जिसके कारण भूमि के अन्दर जल में नाइट्रेट का प्रदूषण
नी बड़ी मात्रा में हो गया है कि वह मनुष्यों एवं जानवरों के उपयोग के लायक नहीं रह
ा। यो सभी विकास के प्रतिकूल परिणाम को दर्शाते हैं।

प्रतिकूल परिणामों से बचने के लिए ही परिस्थिति विदों, प्रकृतिवेत्ताओं, वैज्ञानिकों एव
जनाकारों ने धारणीय विकास पर जोर डालना प्रारम्भ कर दिया है। धारणीय विकास को
ति सह लेती है और यह विकास प्राकृतिक संसाधनों के जीवन चक्र को नष्ट होने से बचा
ा है पर्यावरण और परिस्थितिकीतंत्र के संरक्षण के लिए धारणी. विकास अति आवश्यक है।

त्यधिक खेती करने, वनों के कटान, अत्यधिक चराई तथा अपर्याप्त सिंचाई से मरुभूमि बनने
संकट उत्पन्न होता है। इस पर नियंत्रण किया जा सकता है। प्रदूषण का इलाज तो हमारे
थ में है पर पर्यावरण का क्षय रोकना हमारे हाथ में नहीं है। क्योंकि पर्यावरण का क्षय एक
कृतिक घटना है और पर्यावरण प्रदूषण का जिम्मेदार मनुष्य है और इसीलिए इस पर नियंत्रण
या जा सकता है।

पेट्रो रसायन उद्योग के क्रियाकलाप, परमाणु बिजली उत्पादन और सैन्यीकरण के विस्तार से सम्पूर्ण धरती के परिस्थिति तंत्र और मानव जाति को अपार क्षति हो सकती है यदि इनमें से प्रत्येक को अतिशीघ्र नियंत्रित न किया गया। पेट्रो रसायन उद्योग पर्यावरण का सबसे खतरनाक प्रदूषक है। नायलान, डिटरजेन्ट साबुन और पाउडर, उर्वरक और कीट नाशक दवाएं पारिस्थितिकी के लिए अत्यधिक खतरनाक है। सूती कपड़े का रेशा मिट्टी पचा लेती है पर नायलोन वर्षों तक मिट्टी में दबा पड़ा रहता है मिट्टी उसे विखंडित नहीं कर सकती।

परमाणु बिजली उत्पादन से अत्यधिक गर्मी उत्पन्न होती है। इसके अलावा उससे रेडियो धर्मी किरणें, कैंसर पैदा करने वाली अदृश्य गैसें निकलती हैं जिनसे वायुमंडल दूषित होकर मानव जीवन को खतरे में डालता है।

7.6.1 पर्यावरण के विनाश को रोकने के सुझाव—इस पर्यावरण के विनाश का कारण आर्थिक और राजनैतिक शक्ति का कुछ हाथों में केन्द्रीकृत हो जाना है। बिना इन दोनों शक्तियों के विकेन्द्रीकरण के समस्या का कोई हल निकलने वाला नहीं है।

हमें यह संतोष करना पड़ेगा कि जो हुआ वह बहुत है। आगे और करने और पाने की इच्छा पर लगाम लगाना होगा। जो कुछ है उतना ही काफी है, का विचार यदि अमीरों में जोर पकड़ ले तो सबको मूलभूत आवश्यकताएं पूरी की जा सकती हैं और पर्यावरण की रक्षा की जा सकती है।

7.7 सारांश

इस इकाई को हमने समस्याएं और ध्यान देने योग्य बातों से प्रारम्भ किया है। तत्पश्चात् सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं और उनके प्रभावों का वर्णन किया है। कुछ समस्याओं के परिणाम आर्थिक विकास के लिए प्रतिकूल है और कुछ के अनुकूल। अनूकूल एवं प्रतिकूल परिणामों को पूरी तरह दर्शाया गया है। अन्त में पर्यावरण के विनाश को रोकने के उपाय सुझाये गये हैं।

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ/उपयोगी पुस्तकें

1. नागर, विष्णुदत्त एवं गुप्त, राम प्रताप (1977), आर्थिक विकास के सिद्धान्त एवं समस्याएँ

2. अग्रवाल ए. एन. (1994) भारत में आयोजन एवं आर्थिक नीति, विश्व प्रकाशन।

7.9 सम्बन्धित प्रश्न

1. आर्थिक विकास पर जाति प्रथा के प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।
2. आर्थिक विकास के लिए ध्यान देने योग्य बातों पर चर्चा कीजिए।

3. अनातकता क आाथक ाविकास पर पड़ने वाले प्रतिकूल परिणामों की विवेचना कीजिए।

4. संयुक्त परिवार के आर्थिक विकास पर पड़ने वाले प्रभावों की व्याख्या कीजिए।

5. संक्षिप्त टिप्पणियां लिखिए—

(अ) शारीरिक श्रम के प्रति अरुचि

(ब) भूमि सुधारों के असफल क्रियान्वयन् के परिणाम

(स) संस्कृति एवं विकास में संबंध

(द) पोट्रो-रसायन उद्योग के हानिकारक प्रभाव

दीर्घ प्रश्न -

1. धर्म का आर्थिक विकास में क्या कोई योगदान है? यदि नहीं तो क्यों?
2. शिक्षा पर व्यय उत्पादक है अथवा अनुत्पादक सविस्तार चर्चा कीजिए।
3. आर्थिक विकास पर नैतिकता का प्रभाव अनुकूल पड़ता है अथवा प्रतिकूल। यदि अनुकूल पड़ता है तो क्यों? कारण सहित उत्तर दीजिए।
4. धारणीय विकास क्या है? इसकी आवश्यकता क्यों अनुभव की गई है। इसके परिणाम क्या हैं?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न -

1. निम्नलिखित में से कौन आर्थिक विकास की सामाजिक समस्या नहीं है —

(अ)खर्चीले संस्कार

(ब)भूस्वामित्व की प्रकृति

(स)जाति व्यवस्था एवं जातिवाद

(द)प्राकृतिक संसाधनों का उचित दोहन एवं प्रयोग

2. भारत के आर्थिक विकास में संयुक्त परिवार की भूमिका की प्रकृति का आकलन कैसा किया जाता है-

(अ)सकारात्मक

(ब)नकारात्मक

(स)तटस्थ

(द)इनमें से कोई नहीं।

3. निम्नलिखित में से कौन विकास में शिक्षा के सकारात्मक योगदान के रूप में सम्मिलित नहीं हैं—

(अ)शिक्षा सामाजिक जागरुकता लाने में सहायक है।

(ब)शिक्षा उत्पादन क्षमता को बढ़ाती है।

(स)शिक्षा कुशल श्रमिकों की पूर्ति करती है।

(द)शिक्षा रोजगार के अवसर कम करती है।

4. भारतीय सन्दर्भ में आर्थिक विकास में धर्म की क्या भूमिका है—

(अ)सकारात्मक

(ब)नकारात्मक

(स)तटस्थ

(द)उपर्युक्त में से कोई नहीं।

हल 1. (द), 2. (ब), 3. (द), 4. (ब)

इकाई 8 उदारीकरण, वैश्वीकरण

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्देश्य

8.2 प्रस्तावना

8.3 उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की अवधारणा

8.4 उदारीकरण एवं वैश्वीकरण से आर्थिक विकास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिणाम

8.5 वैश्विक अर्थव्यवस्था की चुनौतियाँ

8.6 उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में गरीबी तथा असमानता

8.7 वैश्विक भोज्य पदार्थों की भावी सुरक्षा

8.8 वैश्वीकरण का बायोडाइवर्सिटी से सम्बन्ध

8.9 वैश्वीकरण और जल संसाधन

8.10 सारांश

8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.12 प्रश्नोत्तर

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के पश्चात आप:

* उदारीकरण और वैश्वीकरण की अवधारणा स्पष्ट कर सकेंगे।
* सम्बन्धित भ्रमों और धारणाओं का वर्णन कर सकेंगे।
* उदारीकरण के प्रभावों का व्यक्ति, समाज, संस्था, सरकार और देश के विकास पर प्रभाव चिन्हित कर सकेंगे
* वैश्वीकरण के कारकों प्रभावों, चिन्ताओं से उत्पन्न दशाओं पर टिप्पणी कर सकेंगे।

8.2 प्रस्तावना

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के नाते विश्वभर में नवीनता का संचार हुआ है। समीपता बढ़ी है और साथ ही साथ अनेक प्रकार की आशंकायें भी सामने आयी हैं। उदारवादी नीति हो अथवा वैश्वीकरण संदेह से परे हैं ऐसा मानने से भी विचारों और विचारकों में मतभेद उभर कर सामने आते रहते हैं। कुछ लोग तो इनकी तह में भी राजनीति की विभीषिका असमानता के परिणाम अवकिसित एवं विकसित में अन्तर की ऊहापोह और अनभिज्ञता बढाने वाली स्थितियों के उभरने की आशंका तक भी देखते हैं। जो भी हो आर्थिक विकास में उदारीकरण की भूमिका वैश्वीकरण की भूमिका से सह सम्बन्धित अवश्य है जिसके सामाजिक,

आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, और अनेक ऐसे परिणाम अवश्य है जिनको अनुमान और कल्पना की परिधि में लाना न कभी सम्भव और न कार्यकारी। मानव कल्याण की दिशा में संयुक्त राष्ट्र का संगठन प्रभावी भूमिका निभाने में सक्रिय है और उसके उद्देश्य सुनिश्चित। समानता, सहिष्णुता, सद्भाव सहयोग, स्नेह और सहृदय ता की प्रत्यासा में पूंजी निवेष व्यापारिक संस्थान, साहसिक उत्साह सक्रिय हो इसी दिशा संयुक्त राष्ट्र संगठन की क्रियाशीलता बनी हुई है।

8.3 उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की अवधारणा

उदारीकरण से तात्पर्य है आर्थिक नीति को इतना सरल एवं सुगम बनाना कि वाणिज्य को विश्वभर में उत्साहित किया जा सके। परन्तु उसका आकार प्रकार इस प्रकार का न हो कि घरेलू सामाजिक आर्थिक विकास की प्रक्रिया किसी भी देश के लिए कभी भी और किसी भीं अंश में बाधित हो पाये। उदाहरण के लिये विदेशी पूंजी की भारी मात्रा में देश में भरमार सम्पन्न वर्गों में तो वित्तीय विस्तरक है और हर प्रकार से विस्तृत पैमाने पर आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया भले ही चतुर्दिक आर्थिक विकास करने में सक्षम भूमिका निभाने में सफल न हो सका हो जिसका आधार ढूंढना और जिस पर विचार करने की महती आवश्यकता आज भी बनी हुई है। परम्परागत पूंजी निवेशक जो औद्योगिक प्रगति हेतु कई उद्योगों में पूंजी लगा रहे हैं और सहभागी भूमिका निभाने में व्यस्त हैं और अनेक प्रकार के उद्यमियों की भरमार से विश्व बाजार भरा पड़ा है दोनों में अन्तर ढुंढने की आवश्यकता और उनके उद्देश्यों की छानबीन करने की आवश्यकता आज बढ़ती जा रही है। वर्ष 1999 में सीटेल में डब्लू टी ओ की बैठक में स्वतंत्र व्यापार से होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर होने वाले लाभों और हितकारी उपयोगों पर विचार उदारीकरण की नीतियों को और अधिक समझने के लिये विवस भी किया और आर्थिक शूक्तियों के दबावों को समझने के आधार भी बनाये। आज संसार के लगभग सभी देशों में ऐसे विज्ञापनों की भरमार देखी जा सकती है। कि 'धन चाहिये आइये धन ले जाइये, शर्तों की कोई चिन्ता नहीं, समय की परवाह किये विना, ब्याज दर सून्य अथवा नगण्य। जिनका आधार ढूंढना नितांत आवश्यक है।

8.4 उदारीकरण एवं वैश्वीकरण से आर्थिक विकास, साम़ाजिक एवं सांस्कृतिक परिणाम

वैश्वीकरण के राजनैतिक उद्देश्यों के अभिभावकों और प्रवक्ताओं का तो मानना यहां तक है कि उदारीकरण की नीति का ही प्रभाव है कि दुनियाभर के देशों में वस्तुओं की भरमार / उपलब्धता से अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर उदारीकरण की नीति अपनाने वाले देशों का बृहत लाभ विद्यमानता उपस्थित है। और वैश्विक उद्योग प्रणाली के सहभागियों को तो विदेशी पूंजीनिवेशकों की बढ़ती हुई सहभागिता गुणित होती हुई देखी जा सकती है।

वैश्वीकरण से तात्पर्य है कि संसार के सभी देशों की दूरी या दिन प्रतिदिन संकुचित होती जा रही है। संचार के साधनों में गति की बढ़ोत्तरी दिन प्रतिदिन दुरियों को कम करने में और

गों को एक दूसरे के निकट लाने में सक्षम होते जा रहे हैं। भाषा आदि के बन्धनों का महत्व ापन पर है सूचना प्रौद्योगिकी ने तो अभूतपूर्व प्रकार का परिवर्तन ला दिया है। नगरीयता भावना ने भी वैश्वीकरण को ऐसी शक्ति प्रदान की है कि संसार के सभी देशों के निवासी आधार पर एक हैं किसी भी आयु अथवा आय वर्ग के हो, किसी भी धर्म जाति, प्रजाति, षा, क्षेत्र के हों। सारी विषमताओं से परे हैं सारा संसार इस नगरीयता के भावना के नाते समें वैश्वीकरण की भावना को अभूतपूर्व बल दिया है।

ेप में उदारीकरण और वैश्वीकरण के संदर्भ में पूंजी को लेकर निम्नलिखित परिदृश्य सामने या है। जिससे अवगत हुए बिना न उदारीकरण और न वैश्वीकरण और न उनके पारस्परिक बन्ध ही सरलता से बोधगम्य हो सकेगा।

पूंजी व्यापार में लागत धनराशि का आकार व्यापार में वस्तुओं और सेवाओं के मूल्य की पूर्णता के हजारों गुना से भी अधिक हैं।

एक बार व्यापार का निर्णय हो जाने पर पूंजी की गतिशीलता इतनी बढ़ जाती है कि वह नया के किसी भी भाग में त्वरित गति से पहुंचती है और सरकारी उदारीकरण की नीति के ते इस परभौतिक दशाओं औरसामाजिक सीमाओं का कोई प्रभाव नहीं पड़ पाता।

वित्तीय व्यापार की अन्तर्कियात्मक प्रभावों और वित्तीय अभिकरणों के नये आयामों र उत्पन्न नये प्रभावों को समझने में कठिनाइयां आई हैं।

अ- पश्चिमी देशों में उभरती हुई बाजारों के सम्बन्ध में पूंजी बाजार पर परम्परागत जीनिवेष से अलग प्रकार का निर्णय लेने की रूझान की ओर प्रकृति का साहसिक कदम।

.5 वैश्विक अर्थव्यवस्था की चुनौतियां

संस्थागत अर्न्तक्रिया का समुचित ज्ञान - संस्थागत अर्न्तक्रिया का समुचित ज्ञान से त्पर्य है कि संस्थायें भले ही वे आर्थिक हो अथवा सामाजिक,सांस्कृतिक हो अथवा जनैतिक, तकनीकी हो अथवा सूचना सम्बन्धी, औद्योगिक हों अथवा उत्पादन सम्बन्धी, त्तीय हो अथवा पूंजी सम्बन्धी, विपणन सम्बन्धी, मुद्रा सम्बन्धी अथवा बैंक्रिग, सहकारिता म्बन्धी, संसाधन दोहन सम्बन्धी- प्राकृतिक, खनिज, मानव आदि अथवा सभी संस्थायें ानव कल्याण की दिशा में भेदभाव, लगाव और पक्षपात से कितना दूर होकर मानव कल्याण ी दिशा में कितना अग्रसर होने की भूमिका निभा रही है। उनका वैज्ञानिक रूझान कितना है।

आर्थिक रूप से सुदृढ़ और राजनैतिक रूप से महत्वपूर्ण मध्यवर्ग के सृजन में कितना सहायक है? - क्योंकि गरीबी दूर करके अधिकांश जनसंख्या को मध्यम वर्ग में ाकर ही आर्थिक सुदृढ़ता और राजनैतिक महत्व वाले समाज का गठन ही प्रजातांत्रिक आधार ो सक्रिय भूमिका वाला बना सकता है। यही वर्ग मनोवैज्ञानिक धरातल को मजबूत कर निम्न र्ग को भी राजनैतिक प्रत्याशा और नैतिक प्रभाव वाला बनाने में सक्षम भूमिका निभा सकता ।। परन्तु इसके लिए सरकारों को धन खर्च करना और अनेक कार्यक्रम को धन से सिंचित करना और चलाना होगा। इंडोनेशिया का उदाहरण इस संदर्भ में सामने है। एक समर्थ ाध्यमवर्ग ही वाह्य प्रभावों और निर्यात की निर्भरता को कम करने में समर्थ हो सकेगा।

3. **आर्थिक आत्मनिर्भता की दशाओं की अधिकाधिक प्रोन्नति** - वैश्वीकरण ने अधिकांश अविकासित एवं विकासशील देशों को विकसित देशों पर आर्थिक निर्भरता बढ़ायी है। विदेशी पूंजीनिवेशकों से शोषण का खतरा इन देशों पर बढ़ा है। अत: दिखावी सुख समृद्धि से बचाने में इनके लिये संयुक्तराष्ट्र की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होगी।

4. **बड़े अर्न्तराष्ट्रीय वाणिज्यिक शक्तियों का राज्यों की राजनैतिक स्वतंत्रता के प्रति दायित्व की प्रत्यासा** - अमेरिका, यूरोप और जापान की बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक शक्तियों का राज्यों की स्वतंत्रता के प्रति दायित्व की प्रत्यासा ने दूर गामी परिणाम सामने आ सकेंगे क्योंकि वे वैश्विक स्तर पर उन्हें प्रोत्साहित करने में समर्थ है और आने वाली चुनौतियों से उन्हें आगाह करने में समर्थ है।

5. **राजनैतिक एवं प्रशासनिक बाधायें**-राजनैतिक एवं प्रशासनिक बाधायें देश की आर्थिक विकास की नीतियों और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में कभी कभी बाधायें उपस्थित करती हैं। यहां तक कि उनकी दिशा ही बदल देने में सक्षम हो जाती हैं रूस का उदाहरण अभी अत्यन्त नया है। नयी उदारवादी आर्थिक विकास की नीतियां और कल्पनायें राज्य एवं वाणिज्य तथा पूंजी के विपक्ष में कार्य तक करने लग जाती हैं। अत: राजनीति और अर्थव्यवस्था तथ सामाजिक संस्थायें न एक दूसरे से अलग थलग की जा सकती हैं और न सरकार के विरोध में आ सकती है अत: सरकार/ राज्य का महत्व अधिक हो जाता है। बिना नियंत्रण के वाणिज्य प्रजातंत्रात्मक संरचना का आधार नहीं बन सकता क्योंकि यह केवल वैचारिक क्षदम/धोखा है जिसका प्रमाण इतिहास में नहीं है। बिना राज्य/ सरकार के मानव अधिकारों की सुरक्षा सम्भव नहीं है वैश्वीकरण की नयी उदारवादी नीति का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक को राजनैतिक और सामाजिक वस्तुस्थिति से अलग करके देखता है।

8.6 उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में गरीबी तथा असमानता

यूनिसेफ (युनाइटेड नेशन्स चिल्ड्रेन्स फण्ड) के उप-निदेशक के विशेष सलाहकार के अनुसार वर्ष 1980 से ही अन्तर्राद्यष्ट्रीय समुदाय गरीबी उन्मूलन को विकास का प्रमुख उद्देश्य माना है। संसार के सभी देशों से गरीबी उन्मूलन हेतु 'वाशिंगटन कनसेन्स' की नीति का सहारा लेकर जनसंख्या के जीवन स्तर में सुधार लाने का प्रयास किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधायें दूर करने का प्रयास किया गया एफ डी आई (फारेन डाइरेक्ट इन्वेस्टमेंन्ट) का प्राविधान किया गया, प्राइवेटाइजेशन/निजीकरण का प्राविधान किया गया और सार्वजनिक उपभोक्ता सामग्री उपलब्ध कराने हेतु बाजारों की समस्याओं का समाधान ढूंढा गया ताकि वैश्विक अर्थव्यवस्था की गति को बढ़ावा मिल सके। लैटिन अमेरिका की असमानता दूर करने का प्रयास, रूस और चीन से क्षेत्रीय असमानता दूर करने का प्रयास, नगरीय ग्रामीण असमानता दूर करने का प्रयास, साउथ ईस्ट और ईस्ट एशिया की दशा सुधारने का प्रयास इसी दृष्टिकोण से किया गया।

असमानता के प्रमुख कारण - अनेक अविकसित औरविकासशील देशों में (1) भूमि पर आधिपत्य कुछ ही हाथों में निहित है (2) शिक्षा की प्राप्ति के अवसर कुछ को ही प्राप्त हैं।

(3) नगरीय और ग्रामीण क्षेत्रों के अन्तराल विविध और व्यापक प्रभावों वाले हैं। (4) तकनीकी परिवर्तन की दशा सीमित है कोरिया कनाडा आदि देशों जैसी नहीं है। (5) संरचनात्मक पिछड़ापन की दशायें हैं (6) प्रबन्धन की सुविधा में कमी (7) प्रशिक्षण हेतु श्रम संस्थाओं की कमी (8) सरकार के दृष्टिकोण और असमानता दूर करने वाले कार्यक्रमों का और प्रभावी होने की आवश्यकता आदि है।

8.7 वैश्विक भोज्य पदार्थों की भावी सुरक्षा

यूनेस्को (यूनाइटेड नेशन्स एजूकेशनल साइन्टिफिक एण्ड कल्चरल आर्गनाइजेशन) के चेयर होल्डर मोनकाम्बू सम्बासिवम स्वामीनाथन जो एम0 एस0 स्वामीनाथन रिसर्च फाउन्डेशन, चेन्नई इण्डिया से हैं के अनुसार वर्ष 2050 तक विश्व की जनसंख्या 8 से 10 मिलियन होगी जिसकी भोज्य सामग्री की आपूर्ति हेतु "एवर ग्रीन रिवाल्यूशन" अर्थात "सदैव हरित क्रान्ति" की आवश्यकता होगी। कृषि की धारणीयता वाले विकास के लिए यह एक भारी चुनौती है।

उपरोक्त का विश्लेषण निम्नांकित आधारों पर किया जा सकता है:

(1) जनसंख्या की वृद्धि की खाद्य आवश्यकता पूर्ति हेतु भोज्य सामग्री की आपूर्ति की मांग बढ़ेगी और प्रति व्यक्ति कृषि योग्य भूमि और सिंचाई हेतु जलापूर्ति कम होगी।

(2) वस्तु की खरीदारी शक्ति में वृद्धि होगी और नगरीकरण की वृद्धि से उपभोक्ता सामग्री की आवश्यकता भी बढ़ेगी।

(3) समुद्री मछली का उत्पादन पर्यावरीर्णीय कारकों से प्रभावित हो सकता है।

(4) कृषि की परिस्थितिकी में गिरावट से भूमि, जल, जंगल, बायोडायवर्सिटी पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता और जलवायु और समुद्र तल का स्तर बदल सकता है।

(5) तकनीकी विकास से होने वाले बायोटेक्नालाजी और पर्यावरर्णीय स्वास्थ्य प्रभावित होगा जिसके सामाजिक आर्थिक पहलुओं को और अधिक समझने की आवश्यकता होगी।

8.8 वैश्वीकरण का बायोडाइवर्सिटी से सम्बन्ध

यूनाइटेड नेशंस यूनिवर्सिटी के एडवांस्ड इन्स्टीटयूट के डाइरेक्टर ए0 हमीद जाक्रि का मत है कि धारणीय विकास से बायोडाइवर्सिटी का घनिष्ट सम्बन्ध है। बायोडाइवर्सिटी के अन्तर्गत परिस्थितिकीय जटिलताओं से सजीव अंगों का सदैव पारस्परिकता होती है और जन्म देने से लेकर आजीवन परिस्थितिकी का उनसे सम्बन्ध बना रहता है। प्राकृतिक जंगल, जीवन, मछलियां, जानवर सभी प्रकार की सजीव संपदाओं का दोहन तो हुआ परन्तु हितों की अनदेखी भी हुई और मानवीय मांग की चुनौतियां भी बढ़ी। प्रकृति से सम्बन्ध, जनसंख्या वृद्धि, वैश्विक व्यापार के प्रभाव, अनेक असमानतायें, प्रबन्धन आदि में अनेक प्रकार के परिवर्तनों का प्रभाव सजीव सम्पदाओं के अस्तित्व पर प्रभाव डाला है। वैश्विक आर्थिक व्यवस्था की ओर अथवा एकीकरण की ओर अग्रसर होने में व्यापार के उदारीकरण, पूंजीबाजार का वैश्वीकरण और विकसित तकनीक का फैलाव एवं उपभोग आदि सारी विशेषताएं और मदद

बायोडायवर्सिटी से प्रभावित हैं। और प्रभावित होने वाले क्षेत्र हैं बायोटेक्नालोजी, बायोसेफ्टी तथा बायोप्रास्पेक्टिंग। इस दिशा में प्रयास तो हुआ परन्तु यह भी ज्ञात है कि अनेक प्रयासों के बाद भी जैसे क्षेत्रों की सुरक्षा की व्यवस्था ताकि उनके जीवों को हानि न पहुंच पाये। संसार की सारी सरकार सजीव संसाधनों की सुरक्षा न कर सकी। इस सम्बन्ध में अनेक कन्वेंशन भी हुए, तकनीकी परिवर्तन भी हुए परन्तु प्रगति के मार्ग में अवरोध आते रहे। आज आवश्यकता है इन सजीव संसाधनों पर और अधिक ध्यान देने की, उनकी सुरक्षा करने की क्योंकि दवा के क्षेत्र में, उनके उपयोग के क्षेत्र में, विश्व व्यापार में उनकी स्थिति सुधरी है और मानव कल्याण की दिशा में उनके योगदान की सीमा असीमित है।

8.9 वैश्वीकरण एवं जलसंसाधन

यूनाइटेड नेशंस यूनिवर्सिटी के वाइस रेक्टर मोटो यूकी सुजुकी के अनुसार स्वच्छ जल की आवश्यकता आज बढ़ी है और विश्व के अनेक भागों में लोग जल की कमी से त्रस्त हैं। वर्ल्ड मेटिओरोलाजिकल आर्गनाइजेशन के अनुमान के अनुसार वर्ष 2025 में विश्व की दो तिहाई जनसंख्या स्वच्छ पेय जल की कमी से त्रस्त हो सकती है (डब्लू एम ओ रिपोर्ट 1997)।

यू0 एन0 सी0 एस0 डी0 (यूनाइटेड नेशंस कमीशन आन सस्टेनेबुल डेवलपमेन्ट) 1997 ने पानी की अन्तर्राष्ट्रीय अनेक बैठकों का विवरण देते हुये लिखा है कि भावी पानी की आवश्यकता को लेकर अनेक बार विचार विमर्श हो चुका है उदाहरणार्थ -

- वर्ष 1972 में यूनाइटेड नेशन्स कान्फ्रेन्स आन दी ह्यूमन इन्वायरमेन्ट स्टाकहोम।
- 1977 में यूनाइटेड नेशंस वाटर कान्फ्रेंश इन मार डेल प्लाटा अर्जेन्टाइना।
- 1990 में ग्लोबल कन्सलटेशन आन सेफ वाटर एण्ड सेनिटेशन फार दी 1990 इन न्यू दिल्ली, इण्डिया
- 1992 इन्टरनेशनल कान्फ्रेंस आन वाटर एण्ड दी इन्वायरमेन्ट : डेवलपमेन्ट इशूज फार दी ट्वन्टी फर्स्ट सेन्चुरी इन डेवलपिंग, आयरलैण्ड
- 1992 यूनाइटेड नेशंस कान्फ्रेंस आन इन्वायरनमेन्ट डेवलपमेन्ट इन रावो डी अनेरो, ब्राजील
- 1994 मिनिस्ट्रीज कान्फ्रेंस आन ड्रिंकिंग वाटर एण्ड इन्वायरनमेन्टल सैनीटेशन इन नूरडविन्जक, दी निदरलैण्ड्स

अभी 2000 में हेग में दी वर्ल्ड वाटर विजन का खुलाशा हुआ था जिसने जनमत तैयार करने पर पूरा बल डाला कि लोग इस त्रासदी से आगाह रहे। एक एक्शन प्लान जी डब्लू पी (ग्लोबल वाटर पार्टनरशिप) के नाम से कार्यरत है। विश्व भर में आज जल, विद्युत, इंधन शक्ति पर बल दिया जा रहा है। जिनका दैनिक जीवन चर्चा से गहरा सम्बन्ध है।

8.10 सारांश

आवश्यकता है जनसंख्या पर नियंत्रण की पर्यावरर्णीय सुधार की,उचित मानसिकता की और समुचित प्रबन्ध और सरकारी ध्यानाकर्षण की ताकि मंहगायी रोकी जा सके, गरीबी का

ूलन हो सके, असमानता से समाज बच सके और उदारीकरण की नीति तथा वैश्वीकरण से विसमाज का कल्याण सम्भव हो सके।

11 संदर्भित ग्रन्थ/उपयोगी पुस्तकें

हंसवान जिन्केल, ब्रेन्डनबैरेट, जुलियस कोर्ट और जेरी वेलास्क्वेज (इडि0): ह्यमन डेवलपमेन्ट एण्ड दि इन्वायरनमेन्ट (चैलेन्जेज फार दी यूनाइटेड नेशन्स इन दी न्यू मिलैनियम) यू0 एन0 यू0 प्रेस, टोक्यो, न्यू यार्क -पेरिस । रावत पब्लिकेशन जयपुर, नई दिल्ली- 2003

बी. नासीटर: दी ग्लोबल स्ट्रगिल फार मोर, (न्यू यार्क: हारपर एण्ड रो, 1987)

डी. एच. मिडोज, डी. एल. मीडोज, जे. रैण्डरस: वियाण्ड दी लिमिट्स ग्लोबल कोलेप्स आर ए सस्टेनेबुल फ्यूचर (लण्डन: अर्थस्कैन, 1992)

पी. रस्किन, जी. गैलोपिन, पी. गुटमैन, ए. हैमाण्ड एण्ड आर स्वार्ट: बेन्डिंग दी कर्व : टूअर्ड गेकल सस्टेनेबिलिटी ए रिपोर्ट आफ दी ग्लोबल सिनेरियो ग्रुप एस इ आई/ पोल स्टार सीरीज रिपोर्ट नम्बर 8 (1998)

जी.एच.ब्रुन्डटलैण्ड:आवर कामन फ्यूचर(आक्सफोर्ड, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1987)

12 प्रश्नोत्तर

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

अ) उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।

ब) वैश्विक अर्थव्यवस्था की चुनौतियों पर प्रकाश डालिये।

स) उदारीकरण एव वैश्वीकरण के युग में गरीबी और असमानता की विवेचना कीजिये

द) वैश्विक भोज्य पदार्थों की भावी सुरक्षा से क्या तात्पर्य है?

लघु उत्तरीय प्रश्न

य) वैज्ञानिक क्रान्ति से आप क्या समझते हैं?

र) हरित क्रान्ति पर टिप्पणी लिखिये।

ल) उदारी करण की नीति क्या है?

व) वैश्वीकरण में सूचना यांत्रिकी की भूमिका स्पष्ट कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नांकित में से कौन वैज्ञानिक क्रान्ति नहीं है-

च) संचार यांत्रिकी क्रान्ति

छ) सूचना यांत्रिकी क्रान्ति

ज) इकोटेक्नालोजी क्रान्ति

झ) तांत्रिक यांत्रिकी क्रान्ति

2) हरित क्रान्ति से तात्पर्य क्या है?

प) कृषि की उपज बढ़ाना

फ) बाजारों में वस्तुओं की उपलब्धता

ब) स्वास्थ्य सुधार

भ) मनोरंजन की व्यवस्था

3) आर्थिक आत्म निर्भता से तात्पर्य है –

इ) गरीबी उन्मूलन

ई) असमानता उन्मूलन

उ) मंहगायी उन्मूलन

ऊ) आर्थिक निर्भरता उन्मूलन

4) वैश्वीकरण से विश्वभर में किसकी वृद्धि होगी?

ओ) समानता

औ) असमानता

अं) असंतोष

अः) असहयोग

उत्तर : 1. (झ) 2. (प) 3. (ऊ) 4. (ओ)

खण्ड

3

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएं

इकाई 9
नगरीकरण एवं औद्योगीकरण

इकाई 10
पश्चिमीकरण

इकाई 11
आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण

इकाई 12
आधुनिकीकरण एवं विकास

संदर्भ ग्रन्थ सूची

विकास का समाजशास्त्र

खण्ड - 3 : खण्ड परिचय - सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाएँ

इस खण्ड में सामाजिक परिवर्तन एवं उनकी प्रक्रियाओं को स्पष्ट किया गया है। **पहली इकाई** का शीर्षक है ''नगरीकरण और औद्योगीकरण''। इसमें नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की सामान्य अवधारणा एवं प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। उनकी सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के प्रभाव को स्पष्ट किया गया है। **दूसरी इकाई** का शीर्षक है ''पश्चिमीकरण''। इसमें भारतीय समाज में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया एवं उससे जुड़े विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। पश्चिमीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। उसकी विशेषताओं, लक्षणों एवं परिणामों की व्याख्या की गयी है। **तीसरी इकाई** का शीर्षक है ''आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण''। इसमें आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है। उनकी विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं भारतीय समाज पर उसके प्रभाव की विवेचना की गई है। चौथी इकाई का शीर्षक है ''आधुनिकीकरण एवं विकास''। इस इकाई में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं भारतीय समाज पर उसके प्रभाव की विवेचना की गई है। **चौथी इकाई** का शीर्षक है ''आधुनिकीकरण एवं विकास''। इस इकाई में आधुनिकीकरण की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। उनके विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला है। अधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप विभिन्न क्षेंत्रों में विकास के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।

इकाई 9 नगरीकरण एवं औद्योगीकरण

इकाई की रूपरेखा

.0 उद्देश्य

.1 प्रस्तावना

.2 नगरीकरण की अवधारणा एवं प्रक्रिया

.3 विश्व में नगरीकरण

.4 नगरीकरण की विशेषतायें

.5 नगरीकरण के कारण

9.5.1 आर्थिक कारण

9.5.2 भौगोलिक कारण

9.5.3 सामाजिक व सांस्कृतिक कारण

9.5.4 मनोवैज्ञानिक कारण

9.5.5 राजनैतिक कारण

.6 नगरीकरण के प्रभाव

9.6.1 नगरीकरण के सकारात्मक प्रभाव

9.6.2 नगरीकरण के नकारात्मक प्रभाव

.7 औद्योगीकरण की अवधारणा एवं प्रक्रिया

.8 औद्योगीकरण की विशेषतायें

.9 औद्योगीकरण के प्रभाव

9.9.1 सामाजिक प्रभाव

9.9.2 आर्थिक प्रभाव

9.9.3 समस्यात्मक प्रभाव

.10 औद्योगीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन

.11 नगरीकरण एवं औद्योगीकरण में सम्बन्ध

.12 सारांश

.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

).0 उद्देश्य

स्तुत इकाई–1 के अन्तर्गत आप सामान्यत: नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की अवधारणा, क्रिया एवं उससे जुड़े विभिन्न पहलुओं से परिचित हो सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप;

- नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की सामान्य अवधारणा एवं प्रक्रिया को समझ सकेंगे
- नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे;

* नगरीकरण के कारणों, प्रभावों तथा औद्योगीकरण के प्रभावों व समस्याओं पर प्रकाश डाल सकेंगे;
* नगरीकरण एवं औद्योगीकरण में सम्बन्धों तथा औद्योगिकवाद की अवधारणा के फलस्वरूप होने वाले सामाजिक परिवर्तनों की विवेचना कर सकेंगे;

9.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई नगरीकरण एवं औद्योगीकरण के सामान्यत: विवेचनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है। इस इकाई में दोनों ही अवधारणाओं को विभिन्न बिन्दुओं के माध्यम से परिचित कराया गया है। सर्वप्रथम नगरीकरण और औद्योगीकरण की अवधारणा एवं उसकी प्रक्रिया को पृथक-पृथक स्पष्ट किया गया है, जो सम्पूर्ण विवेचना को समझने के लिये अति आवश्यक है। यद्यपि नगरीकरण एवं औद्योगीकरण दो अलग अवधारणायें हैं, किन्तु दोनों के मध्य एक गहरा सम्बन्धभी है, इसीलिये प्रस्तत इकाई के भाग 1.12 के अन्तर्गत दोनों के मध्य सम्बन्ध की विवेचना भी की गयी है तथा दोनों को विभिनन पहलुओं के माध्यम से अलग-अलग भी प्रस्तुत किया गया है।

विशेषताओं के आधार पर नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की अलग-अलग अवधारणायें हैं, इसीलिये दोनों की विशेषताओं की अलग-अलग चर्चा की गयी है। नगरीकरण क्यों होता है तथा इसका एवं औद्योगीकरण का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस पर भी प्रस्तुत इकाई में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

समाज चूंकि निरंतर परिवर्तनशील हैं। परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी हों, परिवर्तन स्वाभाविक रूप से होता रहता है। इसीलिये औद्योगिकवाद की धारणा और सामाजिक परिवर्तन के मध्य किस प्रकार का सम्बन्ध है-प्रस्तुत इकाई के भाग 1.11 में उल्लेख किया गया है।

इस इकाई में हम आपको नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया से अवगत करा रहे हैं, इसीलिये हमने इस इकाई में अधिक से अधिक उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं और आपके लिये यथास्थान अभ्यास प्रश्न भी दिये हैं। आप अभ्यास कार्य मेहनत व लगन से करें। इससे आपकी परीक्षा सम्बन्धी तैयारी में द्रुतगामी वृद्धि होगी।

9.2 नगरीकरण की अवधारणा एवं प्रक्रिया

प्रकृति, संरचना और विकास की दृष्टि से व्याख्या करने पर हमारे सामने दो प्रकार के सामुदायिक जीवन उभरते हैं। एक समुदाय वह है जिसमें कि लोग प्रकृति से सीधे सम्बनिधत होकर अपना जीवन यापन करते हैं। साथ ही संरचना और विकास की दृष्टि से अपेक्षाकृत पिछड़े हुये हैं। इसे हम ग्रामीण समुदाय कहते हैं। जबकि दूसरे प्रकार के समुदाय में लोगों का जीवन प्रकृति से दूर कृत्रिम और दिखाने का होता है। संरचनात्मक बनावट और विकास की दृष्टि से यह समुदाय विकसित होता है। इसे नगरीय समुदाय के रूप में जाना जाता है।

नगरीकरण शब्द नगर से बना है। यह शब्द उस प्रकिया की ओर संकेत करता है, जिसके माध्यम से नगरों का निर्माण होता है। सामान्यत: देखा जाये तो जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से नगरीय क्षेत्रों में जाना "नगरीकरण" कहलाता है। सामान्य तौर पर यह भी कहा जा सकता है कि नगरीकरण नगरीय मनोवृत्तियों के विकास और नगरीय बनने की एक प्रक्रिया है, जो कि ग्रामीण क्षेत्रों को नगरों में परिवर्तित करने, नगरों का निर्माण करने और नगरों का प्रभाव बढ़ाने का कार्य करती है।

सिद्ध नगरीय समाजशास्त्री वर्गेल के अनुसार ''ग्रामीण क्षेत्रों की नगरीय क्षेत्रों में परिवर्तित ोने की प्रक्रिया को ही हमें नगरीकरण कहना चाहिये। इस प्रक्रिया का गांव की जनसंख्या की ार्थिक संरचना पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिस अनुपात में नगरीय जनसंख्या में वृद्धि होती ।''

वर्गेल, उद्धृत वी० सी० सिन्हा एवं पुष्पा सिन्हा ''जनांनकी के सिद्धान्त'', 2002, पृष्ठ 225)

ानसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से जाना नगरीकरण कहलाता है। इसके परिणाम स्वरूप जनसंख्या ा बढ़ता हुआ भाग ग्रामीण स्थानों में रहने के बजाय शहरी स्थानों में रहता है। थॉमसन वारेन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज) ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है ''यह ऐसे ामुदायों के व्यक्तियों का जो प्रमुख रूप से या पूर्ण रूप से कृषि से जुड़े हुये हैं, उन समुदायों जाना है जो साधारणतया (आकार में) उनसे बड़े हैं और जिनकी गतिवविधियाँ मुख्य रूप सरकार, व्यापार, उत्पादन या इनसे सम्बद्ध कारोबारों पर केन्द्रित हैं।

न्डरसन के अनुसार ''नगरीकरण एकतरफा प्रक्रिया न होकर दुतरफा प्रक्रिया है। इसमें केवल ाँवों से शहरों में जाना नहीं होता, परन्तु इसमें प्रवासी के दृष्टिकोणों, विश्वासों, मूल्यों और श्वासों के संरूपों में परिवर्तन होता है।'' उसने नगरीकरण की पाँच विशेषतायें बतायी —मुद्रा अर्थव्यवस्था, सरकारी प्रशासन, सांस्कृतिक परिवर्तन, लिखित अभिलेख और ाभिनव परिवर्तन।

(Anderson and Iswaran, Urban Socieology-1953)

इकेफ (ECAFE) के अनुसार-''अपने अधिक साधारण और जनांकिकीय अर्थों में, गरीकरण को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके द्वारा नसंख्या एक निर्दिष्ट आकार से भी अधिक झुंडों में एकत्रित होने की प्रवृत्ति रखती है।''

United Nations Economic Commission for Asia and the far-east. "Can-ıs and implications of urbanization in Urbanization in Asia and thefar-ıst" Proceedings of the Seminar Bangkok. August, 1956, Calcutta NESCO Research Centre in the Social Implication of Industrialization.)56 & 57, P. 128).

ारीकरण नगरीय मनोवृत्तियों के विकास और नगरीय बनने की प्रक्रिया है, जो कि ग्रामीण त्रों को नगरों में परिवर्तित करने, नगरों का निर्माण करने और नगरों का प्रभाव बढ़ाने का कार्य रती है। इस प्रक्रिया का आरम्भ तो उत्तर-पाषाण युग से हो गया था, जबकि लोगों ने एक ान पर रहकर खेती करने और समाजिक जीवन की शुरुआत की थी। अच्छी जलवायु, र्वरक भूमि और नदी घाटियों के आसपास ही नगरीय सभ्यता का विकास हुआ। यातायात की विधा, कच्चे माल की प्राप्ति तथा बाजार की सुविधा वाले स्थान औद्योगिक नगरों के रूप में रेवर्तित हो गये। 18वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रांति ने नगरीकरण को अत्यधिक प्रोत्साहित या। कारखानों में मशीनों के प्रयोग से उत्पादन में वृद्धि के साथ नगरीय जनसंख्यामें भी त्यधिक वृद्धि हुई है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग कार्य और रोजगार के लिये नगरों में आये। तायात व संचार के साधनों में वृद्धि, मुद्रण की सुविधा से बाजार की अर्थव्यवस्था को त्साहन मिला, प्रतिस्पर्धा में वृद्धि हुई तथा मशीनों पर कार्य करने के लिये औद्योगिक शिक्षा र शिक्षण आवश्यक हो गये। अत: स्पष्ट है कि नगरीकरण के विकास का मूल आधार द्योगीकरण ही है जिसने ग्रामों को नगरों के रूप में परिवर्तित करने तथा नगरीय मनोवृत्तियुक्त वन विधि को विकसित करने में सहायता पहुँचाई है तथा नगरीकरण की प्रक्रिया को बहुत

तीव्र गति भी प्रदान की है।

नगरीकरण की समाजशास्त्रीय व्याख्या के अन्तर्गत प्रो० एम० एन० श्रीनिवास के अनुसार "नगरीकरण से अभिप्राय केवल सीमित क्षेत्र में अधिक जनसंख्या से नहीं है, बल्कि सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्धों में परिवर्तन से भी है। (Srinivas M.N. Caste in Modern India, P. 77)

डॉ० जी० आर० मदन के अनुसार "नगरीकरण का तात्पर्य व्यक्ति के विचारों और व्यवहारों में परिवर्तन तथा उनके सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन से है।"

(Modan G.R. Social Change and Problems of Development In India)

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जिस माध्यम से ग्रामीण जनसंख्या विशाल नगरों के रूप में परिवर्तित हो जाती है उसे नगरीकरण की संज्ञा दी जा सकती है।

9.3 विश्व में नगरीकरण

किसी देश या क्षेत्र में नगरीकण की प्रक्रिया से नगरों का अभ्युदय और विकास होता है। नगरीकरण का अर्थ है-देश की कुल जनसंख्या में नगरों में निवास करने वाली जनसंख्या का प्रतिशत या अंश। चूंकि नगर विभिन्न आकार के होते हैं अत: उनकी संख्या से नगरीकरण का मूल्यांकन त्रुटिपूर्ण हो सकता है किसी क्षेत्र में नगरीकरण की प्रक्रिया उसकी सामाजिक आर्थिक व्यवस्था पर आधारित होती है। अनेक कृषि प्रधान देशों में न्यून और औद्योगिक देशों में उच्च नगरीकरण देखा जाता है। भारत, चीन, पाकिस्तान आदि कृषि प्रधान देशों में लगभग एक चौथाई जनसंख्या नगरों में निवास करती है, जबकि पश्चिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशों की अधिक से अधिक जनसंख्या नगरों में निवास करती है। विश्व में औद्योगिक क्रांति के बाद नगरीकरण की प्रवृत्ति तीव्र हुई और इस सदी में यह तेजी से बढ़ती गयी। अनेक नगरों का जन्म उद्योगों की स्थापना के कारण हुआ और पुराने नगरों में नये उद्योगों की स्थापना से उनकी जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हुई। वास्तव में नगरीय संस्कृति ग्रामीण संस्कृति पर अनेक तरीकों से अपना प्रभुत्व जमाती जा रही है। नगरों में रोजगार की अधिक सम्भावना, सुरक्षा, मनोरंजन, शिक्षा, स्वास्थ्य और चमक-दमक के कारण ग्रामीण अधिक संख्या में नगरों की ओर आकर्षित हुये हैं। यह विशेषता नगरीकरण के कारकों में सर्वप्रथम है। इस मनोवृत्ति से गांव उजड़ते जा रहे हैं और नवीन नगरों का जन्म होता जा रहा है। इस प्रकार नगरीकरण की प्रक्रिया प्रमुख रूप से दो शक्तियों से संचालित हो रही है—आकर्षण शक्ति एवं विकर्षण शक्ति। गांवों में बेरोजगारी असुरक्षा, अशिक्षा, कुपोषण आदि के कारण लोग अन्यत्र जाने के लिये बाध्य हो रहे हैं। इसके विपरीत शहरों में रोजगार की सम्भावना, सुरक्षा, शिक्षा और मनोरंजन आदि का आकर्षण उन्हें अपनी ओर खींचता है। यही कारण है कि छोटे नगरों की तुलना में बड़े नगरों का आकर्षण लोगों को अधिक आकर्षित करता है। बड़े नगरों में प्रवासियों की भीड़ इतनी अधिक हो जाती है कि नगरीय सुविधाओं का अभाव हो जाता है और नगरीय जीवन सभी के लिये कष्टप्रद हो जाता है। नगरीय सीमा के बाहर और अन्दर गंदी बस्तियों का विस्तार भारतीय महानगरों की सामान्य विशेषता बनती जा रही है।

19वीं सदी के मध्य से तीव्र नगरीकरण की प्रक्रिया आरम्भ हुई और उसमें गति आती गयी। इस सदी के आरम्भ में विश्व की लगभग 9 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती थी, जो वर्ष 1984 में बढ़कर 41 प्रतिशत हो गयी। नगरीकरण का क्षेत्रीय रूप और भी असमान रहा

। विकसित राष्ट्रों की आधी से अधिक जनसंख्या (72 प्रतिशत) नगरों में रहती है, जबकि विकासशील राष्ट्रों (31 प्रतिशत) की स्थिति इससे भिन्न है। अफ्रीका की 32 प्रतिशत, एशिया की 28 प्रतिशत और लैटिन अमेरिका की 68 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती है, जबकि उत्तरी अमेरिका की 74 प्रतिशत, ऑस्ट्रेलिया की 86 प्रतिशत, राष्ट्रकुल की 66 प्रतिशत और पश्चिमी यूरोप की 81 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या नगरों में बस गयी हैं। आज स्थिति यह है कि विश्व की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में बस गयी हैं। आज स्थिति यह है कि विश्व की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास कर रही है। पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों में नगरों के आकार में तीव्र वृद्धि से प्रशासन चिन्तित है। अब वहाँ नगरों की आदर्श स्थिति पर विचार विमर्श होने लगा है। एक अनुमान के मुताबिक विश्व के अधिकांश औद्योगिक देश या तो नगरीकरण के उच्च शिखर पर पहुँच चुके हैं या पहुँचने वाले हैं। इन देशों की देखा देखी में विकासशील देश की नगरीकरण की दौड़ में आगे बढ़ने का प्रयास कर रहे हैं। भारत इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रान्ति के साथ ही तेजी से नगरीकरण शुरु हुआ, जबकि गैर पश्चिमी देशों में यह तीव्रता 1950 से प्रारम्भ हुई। यही कारण है कि पश्चिमी देश नगरीकरण के शिखर पर पहुँच गये हैं। विश्व की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या केवल 6 देशों-संयुक्त राज्य अमेरिका (17 प्रतिशत), राष्ट्रकुल (11प्रतिशत), चीन (10 प्रतिशत), जापान (8 प्रतिशत), भारत (8 प्रतिशत) और ब्रिटेन (5 प्रतिशत) में है। एक अनुमान के अनुसार आस्ट्रेलिया की 38 तिशत, एशिया की 35 प्रतिशत, यूरोप की 24 प्रतिशत, अमेरिका की 20 प्रतिशत और राष्ट्रकुल की 10 प्रतिशत नगरीय आबादी दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों में रहती हैं। यहां इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है कि दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले नगरों की भीड़ ने संयुक्त राज्य अमेरिका के अटलांटिक तट पर लगभग 10 किमी लम्बा और 200 किमी० चौड़ा भू-क्षेत्र घेर रखा है, जिसे नगरीकृत क्षेत्र कहते हैं। ऐसी ही स्थिति जर्मनी के रूर क्षेत्र, मध्यवर्ती जापान एवं ब्रिटेन में निर्मित हुई है।

9.4 नगरीकरण की विशेषतायें

अब तक की गयी उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर नगरीकरण की निम्न विशेषतायें स्पष्ट होती हैं;

* नगरीकरण औद्योगीकरण से सम्बन्धित धारणा है।
* सामान्यत: नगरीकरण ग्रामों से नगरों की ओर प्रवास की एक प्रक्रिया है।
* नगरीकरण में कृषि के मूल व्यवसाय को त्यागकर लोग अन्य नगरीय व्यवसाय करने लगते हैं।
* नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसमें कि लोगों के विचारों, व्यवहारों और मूल्यों में परिवर्तन होने लगता है।
* नगरीकरण द्वारा व्यक्ति एक ऐसी नगरीय मानसिकता विकसित करता है जो कि ग्रामीण जीवन से सर्वथा भिन्न प्रकार की जाती है।
* नगरीकरण एक गतिशील सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें कि नगरीय जीवन-विधि का प्रसार केवल नगर में ही नहीं बल्कि नगर से बाहर की ओर होता है।

9.5 नगरीकरण के कारण

नगरीकरण के लिये उत्तरदायी महत्वपूर्ण घटकों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है;

9.5.1 आर्थिक कारण

नगरीकरण के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों के अन्तर्गत कृषि में क्रान्ति, यातायात के साधनों का विकास, औद्योगीकरण, व्यापार, पूंजी व तकनीकी सुविधा तथा शक्ति के साधन आदि प्रमुख हैं।

कृषि में क्रांति का अर्थ है कृषि क्षेत्र के कुछ लोगों द्वारा उस क्षेत्र की एक बड़ी जनसंख्या (समस्त जनसंख्या) के लिये खाद्यान्न पैदा करना, परिणामस्वरूप शेष लोगों का अनय उच्च आवश्यकताओं की पूर्ति में लग जाना अर्थात् नगरों की ओर पलायन करना अमेरिका का कृषि क्षेत्र इसका एक अच्छा उदाहरण है, यद्यपि भारत भी अब उसी ओर अग्रसर हैं।

नगरों के विकास का एक अन्य कारण यातायात के साधनों का तीव्रति से विकास भी है। इस सम्बन्ध में समाजशासत्री जी० एस० धुरिये ने कहा है ''नगर रूपी शरीर के शक्तिशाली पैर यातायात के साधन और अन्य साधनों पर आश्रित हैं।''

औद्योगीकरण और नगरीकरण एक दूसरे के काफी निकटतम सम्बन्धी हैं। किंग्सले डेविस ने अपनी पुसतक "The Population of India and Pakistan" में लिखा है ''नगरों में नव-आगंतुकों की संख्या बढ़ने का औद्योगिक विकास के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।'' जहां औद्योगिक विकास होता है वहाँ व्यापार, यातायात के साधन और विविध प्रकार के क्रिया-कलापों का विकास होता है और इनका प्रभाव श्रमिक वर्ग की संख्या पर पड़ता है।

नगरीकरण की प्रक्रिया के लिये उत्तरदायी आर्थिक कारणों के अन्तर्गत व्यापार तथा वाणिज्य भी अहम् भूमिका निभाते हैं। इस सम्बन्ध में समाजशास्त्री ''सिम्स'' ने लिखा है ''व्यापार नगर के अस्तित्व के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि एक प्राणी के शरीर में रक्त का संचार आवश्यक है।'' व्यापार केन्द्र होने के कारण ही मध्यपूर्व के कई नगरों का विकास प्राचीन काल में हुआ था।

नगरों के विकास में पूंजी व तकनीकी सुविधाओं का प्रभाव भी पड़ता है। कारणयह है कि नगरों में उद्योगों कारखानों, यातायात के साधनों, जलपूर्ति की सुविधा इत्यादि के लिये पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। वस्तुत: पूंजी के कारण ही सम्पन्न व धनी राष्ट्रों में नगरों की अधिकता है। इसी प्रकार तकनीकी सुविधा काभी नगरीकरण पर प्रभाव पड़ता है। यूरोपियनों के आगमन से पहले नई दुनिया के देशों में नगरों का अभाव था, लेकिन उन्होंने अपनी तकनीकी कुशलता से वहां नगरों को बसाया, जो आज विश्व के वृहदतम नगरों में से है।

कोयला, खनिज, तेल, जल, विद्युत इत्यादि प्रमुख शक्ति के साधन हैं। इनकी जहाँ कहीं भी उपलब्धता होती है, वहां उद्योग स्थापित हो जाते हैं और नगरों का जन्म हो जाता है। संयुक्त राज्य अमेरिका इसका उत्तम उदाहरण है।

9.5.2 भौगोलिक कारण

अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण के कारण भी नगरों का विकास सम्भव हो जाता है, क्योंकि जिन क्षेत्रों में भौगोलिक पर्यावरण अनुकूल होता है वहाँ पर प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता के साथ हो जाती है। सम्भवतया यही कारण है कि संसार के पहले नगर दजला-फरात, नील, गंगा, सिंधु इत्यादि की घाटियों में बसे।

9.5.3 सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण

विभिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारण नगरीकरण में अहम् भूमिका निभाते हैं। इनके अन्तर्गत शिक्षा के केन्द्र, स्वास्थ्य, मनोरंजन एवं पर्यटन के केन्द्र, धार्मिक केन्द्र तथा ऐतिहासिक केंद्र आते हैं, जिनके कारण विभिन्न स्थानों पर बड़े-बड़े नगरों की स्थापना एवं विकास हुआ है।

9.5.4 मनोवैज्ञानिक कारण

मनोवैज्ञानिक कारण भी नगरों के विकास के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यह देखा गया है कि सब सुविधायें उपलब्ध रहते हुये भी बहुत से लोग ग्रामों में नहीं रहना चाहते। नगरों की चमक-दमक एवं तीव्र गति से चलने वाली जिंदगी उन्हें अच्छी लगती है। नगरीय जीवन के प्रति इस चाव के कारण ही शिक्षित युवक ग्रामों में नहीं जाना चाहते।

9.5.5 राजनैतिक कारण

नगरों के विकास और नगरीकरण के लिये उत्तरदायी कुछ प्रमुख राजनैतिक कारण निम्न प्रकार हैं:

* प्राचीन काल में नगरों की स्थापना सुरक्षा को ध्यान में रखकर की जाती थी। ऐसे नगरों को दुर्ग कहा जाता था। कालान्तर में ये दुर्ग ही बड़े नगर हो गये, यद्यपि आज के आणविक युग में कोई स्थान सुरक्षित नहीं हैं फिर भी पेरिस, मास्को, दिल्ली इत्यादि नगर सुरक्षा को ध्यान में रखकर ही बसाये गये हैं।
* प्रशासनिक केन्द्र अथवा राजधानी का होना भी नगरीय विकास का एक प्रमुख कारण है।
* सरकारी नीति व सरकारी सहायता से भी नगरों का विकास हो रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार द्वारा नगरों के विकास में अभिरुचि ली जा रही है। चण्डीगढ़, भुवनेश्वर जैसे नगरों जैसे नगरों का विकास सरकार की सहायता से किया गया है। बहुत से देशों में सरकार परिवहन सुविधायें उपलब्ध कराके, उद्योगों की स्थापना कराके, मनोरंजन केन्द्रों आदि की स्थापना कराके नगरों का विकास कर रही है।
* अनेक स्थानों पर सैनिक केन्द्र भी नगरीय विकास का एक बड़ा कारण है।

9.6 नगरीकरण के प्रभाव

नगरीकरण के प्रभाव का अध्ययन निम्नलिखित दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है;

9.6.1 नगरीकरण के सकारात्मक प्रभाव

नगरीकरण के अच्छे प्रभाव-आर्थिक विकास, राष्ट्रीय आचरण, रोजगार, जनांकिकी आदि अनेक क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होता है।

नगरीकरण आर्थिक विकास का सूचक है। सामान्यतया यह पाया जाता है कि जैसे-जैसे देश का आर्थिक विकास होता जाता है, वैसे-वैसे नगरीय क्षेत्रों में जनसंख्या का अनुपात बढ़ता जाता है अर्थात् किसी भी देश के आर्थिक विकास का पता उसके साथ-साथ होने वाली नगरीय जनसंख्या की वृद्धि से लगता है।

कहा जाता है कि गांवों और नगरों के बीच जनसंख्या के वितरण का प्रभाव जनता के राष्ट्रीय आचरण पर पड़ता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि गांवों के लोग, आलसी, अशिक्षित,

परम्परावादी, अंधविश्वासी और प्रगतिशील विचारों को ग्रहण करने में असमर्थ होते हैं। गाँवों में सभ्यता पीछे लौटती है और नगरों में आगे दौड़ती है। नगरों के लोग अधिक प्रगतिशील, शिक्षित, दूरदर्शी और जागरूक होते हैं। सम्पूर्ण प्रगतिशील विचारों का सूत्रपात तथा प्रसार नगरों से ही होता है। अत: किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिये शहरों का विकास और शहरों के प्रति आबादी का आकर्षण आवश्यक है।

औद्योगीकरण में मजदूरों की आवश्यकताओं पर बल दिया जाता है। मजदूरों की आवश्यकता नगरीकरण की प्रक्रिया के द्वारा पूरी होती है। यदि लोग ग्रामीण आंचल से आकर नगरों में न बसें तो मात्र नगरीय जनसंया के माध्यम से औद्योगीकरण की ?ति तेज नहीं की जा सकती।

नगरीकरण की प्रक्रिया जनांकिकी दृष्टिकोण से भी लाभकारी होती है। इससे जन्म एवं मृत्युदर में कमी आती है तथा स्वास्थ्य सुविधाओं आदि की सुचारु रूप से उपलब्धता के कारण जीवन स्तर ऊँचा उठता है।

इसके अतिरिक्त आवागमन एवं संचार के साधनों का विकास होने लगता है, जाति प्रथा का प्रभाव घटने लगता है, नये-नये वर्गों का जन्म होता है तथा भौतिक वादी विचारधारा विकसित होती है।

9.6.2 नगरीकरण के नकारात्मक प्रभाव

* नगरीकरण के कारण कृषि एवं घरेलू उद्योगों का विकास नहीं हो पाता, क्योंकि पमूंजी का अधिकांश भाग बड़े-बड़े उद्योगों में लग जाता है।
* ग्रामीण अंचलों के जो लोग नगरों में बसते जा रहे हैं, वे लोग अपनी ग्रामीण आदतें नहीं छोड़ पाते हैं, जिसके चलते नगरीय क्षेत्रों का भी ग्रामीणीकरण होता जा रहा है।
* नगरीकरण के कारण नगरों में बेरोजगारी के अनुपात में वृद्धि होती जा रही है, क्योंकि काम खोजने वालों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती है, जबकि काम की सम्भावनाओं में उतनी वृद्धि नहीं हो पाती।
* जो भाग जितना अधिक बड़ा है, वहाँ अपराधों की संख्या उतनी ही अधिक है। नगरीकरण के साथ-साथ बढ़ते हुये अपराध के कारण एक सामाजिक समस्या उत्पन्न हो गयी है।
* नगरीकरण के कारण नगरों की जनसंख्या का घनत्व बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप रहने के स्थान की समस्या उत्पन्न हो जाती है।
* नगरों की सड़कों पर बढ़ती हुई भीड़ आजकल दुर्घटनाओं का प्रमुख कारण है। नगरीकरण एवं दुर्घटनाओं में सीधा सम्बन्ध है।
* नगरीकरण के कारण विषम आर्थिक व्यवस्था उत्पन्न होती है। गरीब व्यक्ति और गरीब होते जाते हैं और धनी और धनी होते जा रहे हैं। परिणामस्वरूप दोनों वर्गों के बीच दूरी बढ़ती है और वर्ग संघर्ष का जन्म होता है।

बोध प्रश्न

1. नगरीकरण से आप क्या समझते हैं? (तीन पंक्तियों में उत्तर दें)

   .....

   .....

   .....

2. विश्व में नगरीकरण की स्थिति को संक्षेप में समझाइये।

(उत्तर 10 पंक्तियों में स्पष्ट करें)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

नगरीकरण के प्रभाव को स्पष्ट कीजिये। (उत्तर 10 पंक्तियों में दें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

).7 औद्योगीकरण की अवधारणा एवं प्रक्रिया

आज का युग औद्योगीकरण का युग है। प्राचीन समय में कम जनसंख्या तथा परम्परावादी ामाज में सीमित आवश्यकताओं के कारण लोगों का कार्य कृषि और उससे जुड़े हुये लघु तथा ुटीर उद्योगों से चल जाता था, लेकिन जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती गयी और भौतिक ावश्यकतायें बढ़ती गयीं, वैसे-वैसे ही कृषि उत्पादन और परम्परागत साधन लोगों के भरण ोषण के लिये पर्याप्त नहीं रह गये। परिणामस्वरूप यह आवश्यक हो गया कि लोग न केवल ये-नये प्रकार के कार्य और रोजगार के तरीके खोजें बल्कि यह भी जरूरी हो गया कि वे पने को नये कार्य से विशेषीकृत भी करें ताकि अन्यों की तुलना में उनका कार्य अधिक रिष्कृत तथा अधिक उत्पादन वाला हो। इसी खोजबीन और प्रयास में पहले छोटे और बाद में ड़े उद्योगों का विकास औद्योगीकरण के रूप में हमारे सामने आया। अब प्रत्येक देश के गति और विकास का मूल्यांकन ही इस आधार पर किया जाने लगा है कि वह अन्य देशों की ुलना में कितना अधिक औद्योगीकृत है। इस दृष्टि से आधुनिक युग में परिवर्तन की प्रक्रिया के ोत के रूप में औद्योगीकरण का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। यह व्यक्ति और समाज के ीवन के प्रत्येक पक्ष को न केवल प्रभावित बल्कि बहुत ही तीव्र गति से परिवर्तित कर रहा ।

ामान्यत: प्रौद्योगिकी और औद्योगीकरण को समान अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। इसी आधार र मशीनों, उपभोक्ता वस्तुओं और उत्पादक उपकरणों को औद्योगीकरण माना जाता है, किन्तु ास्तव में प्रौद्योगिकी एक साधन है, जबकि औद्योगीकरण उत्पादन की एक विशेष प्रक्रिया जसमें कि लघु और कुटीर उद्योगों का स्थान बड़े पैमाने के उद्योग ले लेते हैं। इस दृष्टि से ौद्योगीकरण की विभिन्न परिभाषायें परिलक्षित होती हैं;

संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार "औद्योगीकरण से आशय बड़े उद्योगों के विकास

तथा छोटे और कुटीर उद्योगों के स्थान पर बड़े पैमाने की मशीनों की व्यवस्था से है। औद्योगीकरण आर्थिक विकास की प्रक्रिया का केवल अंग मात्र है, जिसका उद्देश्य उत्पादन के साधनों की क्षमता में वृद्धि करके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना है।''

(U. N. Report "Process and Problems of Industrialization in Developing Countries. P.2)

पीकांग चांग के अनुसार ''औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक उत्पादन-कार्यों में क्रमबद्ध परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों में कुछ आधारभत परिवर्तन वे हैं, जिनका सम्बन्ध किसी उपक्रम के यंत्रीकरण से है तथा जिसके द्वारा किसी नवीन उद्योग की स्थापना, किसी नये बाजार की खोज और विस्तार दोनों हैं। यह एक प्रकार से पूंजी को गहन एवं विस्तृत बना देने की प्रक्रिया है।''

(Pie-Kang-Chang, Agriculture and Industrialization. P. 69)

मामोरिया का कथन है कि ''औद्योगीकरण एक प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत उत्पदन-कार्यों से समबन्धित अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। इसके अन्तर्गत वे भौतिक परिवर्तन आते हैं, जिसके अन्तर्गत किसी व्यावसायिक साहस का यंत्रीकरण, नवीन उद्योग की स्थापना, नये बाजार की खोज एवं किसी नये क्षेत्र का शोधन होता है। संक्षेप में औद्योगीकरण एक साधन है, जिसके द्वारा पूंजी का निरंतर विकास किया जाता है। (मामोरिया, सी० बी०)

जहाँ तक प्रक्रिया का प्रश्न है तो नगरीकण की ही भाँति औद्योगीकरण भी एक प्रक्रिया है। अन्य जीवधारियों की तुलना में अपने विकसित मस्तिष्क और मेहतन के कारण मनुष्य का यह स्वभावजन्य गुण है कि वह कभी भी वर्तमान से संतुष्ट नहीं होता, बल्कि हमेशा बेहतर जीवन-यापन के लिये प्रयत्न करता रहता है। उसकी नवीनता की चाह उसे नित नये प्रयत्न करने के लिये, कुछ अधिक की प्राप्ति के लिये प्रेरित करती रहती है, जिसके कारण वह नये-नये प्रयोग करके बेहतर ऐसे साधन खोजता रहता है, जिससे कि कम परिश्रम से अधिक प्राप्ति सम्भव हो सके। मनुष्य की ऐसी खोजी प्रवृत्ति के कारण औद्योगीकरण का विकास हुआ है। जैसे-जैसे जनसंख्या में वृद्धि होती गयी वैसे ही वैवे यह आवश्यक होता गया कि लोग अपने अस्तित्व की रखा तथा बेहतर जीवन यापन के लिये नये उद्योगों की खोज करें, वे स्थान जहाँ कच्चे माल की सुविधा थी, आवागमन के साधन थे, उत्पादित वस्तुओं की मांग थी, वे ही औद्योगिक क्षेत्रों के रूप में विकसित होते गये तथा औद्योगिक क्षेत्र नगरों और महानगरों के रूप में विकसित होते गये। प्रारम्भ में ये उद्योग मानव और पशु शक्ति द्वारा संचालित थे, लेकिन उद्योगों में मशीन के प्रयोग ने इसे क्रान्तिकारी स्वरूप प्रदान किया। इंग्लैण्ड में 1764 में जेम्स हरग्तीव नामक व्यक्ति ने एक ऐसा चर्खा खोज निकाला, जिसमें एक साथ दस सूत काते जा सकते थे। 1768 में इस खोज को नई दिशा तब मिली जब रिचर्ड आर्कराइट ने यन्त्र से चलेन वाले ऐसे बेलन का आविष्कार किया, जिसमं एक साथ 200 सूत काते जा सकते थे। 1750 में लकड़ी के कोयले के स्थान पर पत्थर के कोयले के उपयोग की विधि ने धातुओं के गलाने, उससे नये-नये औजार तथा मशीनें बनाने की विधि को बहुत अधिक सरल बना दिया। किन्तु औद्योगीकरण की आधुनिक प्रक्रिया का प्रारम्भ 1765 से माना जाता है, जब जेम्सवाट ने भाप के इंजन का आविष्कार किया। इसी के परिणामस्वरूप सन् 1874 में जार्ज स्टीवेंसन ने विश्व की प्रथम रेलगाड़ी का आविष्कार किया। जिससे बाद में रेलगाड़ी में एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने जाने और माल की ढुलाई की सुविधा से औद्योगीकरण की गति बहुत अधिक तीव्र हो गयी। इसी क्रम में 1802 में जहाजों में भाप के इंजन का प्रयोग हुआ जिससे एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी बहुत ही कम प्रतीत होने

ागी तथा व्यापार और वाणिज्य को प्रोत्साहन मिला। नवीन आविष्कारों और वैज्ञानिक खोजों ने शेष तौर से पेट्रोल, जल-शक्ति और परमाणु शक्ति की खोजों ने तो औद्योगिक क्रान्ति ही ला ।। मानव-शक्ति के स्थान पर मशीनी शक्ति द्वारा कम समय और कम लागत पर सुन्दर, सस्ते ौर टिकाऊ माल का उत्पादन होने लगा। साथ ही औद्योगीकरण की प्रक्रिया के चमत्कारिक रिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन की गति बहुत अधिक तीव्र हो गयी।

.8 औद्योगीकरण की विशेषतायें

पर्युक्त विवरण के आधार पर औद्योगीकरण की निम्नलिखित विशेषतायें दृष्टिगोचर होती है;

औद्योगीकरण एक प्रक्रिया है, जिसमें कि मानवीय शक्ति की अपेक्षा यांत्रिक शक्ति का अधिक प्रयोग होता है।

औद्योगीकरण में उत्पादन तीव्र गति से बृहत पैमाने पर होता है।

औद्योगीकरण में श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण का विशेष महत्व होता है।

औद्योगीकरण आर्थिक विकास और पूंजी में वृद्धि से सम्बन्धित है।

औद्योगीकरण संसाधनों की क्षमता में वृद्धि कर लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाता है।

औद्योगीकरण से नये उद्योग और नये बाजार की खोज होती है।

औद्योगीकरण प्राकृति शक्ति और संसाधनों से अधिकाधिक कार्य के अवसर प्राप्त करने की एक गतिशील प्रक्रिया है।

.9 औद्योगीकरण का प्रभाव

वर्तन के स्रोत के रूप में औद्योगीकरण ने व्यक्ति, परिवार और समाज को अनेक प्रकार से ावित किया है, जिसे निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है;

९.1 औद्योगीकरण के सामाजिक प्रभाव :

द्योगीकरण ने मानव जीवन और सामाजिक संरचना को अनेक प्रकार से प्रभावित व वर्तित किया है, जो निम्न प्रकार है;

औद्योगीकरण के कारण लोगों के मध्य सामुदायिक भावना का ह्रास हुआ है।

औद्योगीकरण में कार्य के महत्व के कारण धार्मिक और नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है।

औद्योगीकरण से उपजी आर्थिक मानसिकता ने व्यक्ति को स्वाथी एवं एकाकी बनाकर उसकी व्यक्तिवादी भावना में वृद्धि की है।

भारत जैसे जाति प्रधान देश में औद्योगीकरण के प्रभाव ने जातिगत बन्धन समाप्त किया है।

स्त्रियाँ पुरुषों की सहकर्मिणी बनकर अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हुई हैं।

विभिन्न संस्कृतियाँ एवं उनके लोग आपसी सम्पर्क हेतु प्रोत्साहित हुये हैं।

सामाजिक गतिशीलता में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

9.9.2 औद्योगीकरण के आर्थिक प्रभाव :

औद्योगीकरण का मूल उद्देश्य आर्थिक विकास और आर्थिक सुधार ही है। इस दृष्टि से औद्योगीकरण ने आर्थिक संरचना को अनेक प्रकार के प्रभावित किया है, जो निम्न प्रकार है;

* औद्योगीकरण के विकास के फलस्वरूप कृषि का यंत्रीकरण एवं आधुनिकीकरण सम्भव हो सका है। श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण परिलक्षित होकर सामने आया है।
* अधिकाधिक मात्रा में उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन से जन सामान्य की सुख-सुविधा में वृद्धि होती है, जिसके उसके जीवन स्तर में सुधार होता है।
* औद्योगीकरण के द्वारा वृहत उत्पादन से निर्यात को प्रोत्साहन मिलता है, जिसके परिणामस्वरूप भुगतान सन्तुलन में सुधार एवं राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है।
* औद्योगीकरण ने पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया है।
* जैसे-जैसे औद्योगीकरण का विकास हुआ है वैसे-वैसे बैंक बीमा व साख व्यवस्था की ओर विकास हुआ है।

9.9.3 समस्यात्मक प्रभाव

औद्योगीकरण ने जहाँ आर्थिक सामाजिक विकास और परिवर्तन को प्रोत्साहित किया है, वहीं इससे अनेक प्रकार की समस्यायें भी उत्पन्न हुई है।

औद्योगीकरण के जिन सामाजिक समस्याओं को जन्म मिला है उनमें अपराधों और बाल अपराधों में वृद्धि, गंदी बस्तियों को प्रोत्साहन, व्यापारिक मनोरंजन, ग्रामीण प्रवास, वर्ग संघर्ष, नशाखोरी, भिक्षावृत्ति व वैश्यावृत्ति की समस्यायें प्रमुख हैं।

इसी प्रकार आर्थिक समस्याओं में श्रमिक विवाद, हड़ताल और तालाबन्दी की समस्यायें, छोटे और कुटीर उद्योगों का समापन, छँटनी और बेरोजगारी, गलाकाट प्रतियोगिता, श्रमिकों का शोषण तथा आर्थिक असमानता इत्यादि औद्योगीकरण के कारण ही उत्पन्न होने वाली समस्यायें हैं।

9.10 औद्योगीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन

औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने समाज में अनेक परिवर्तन किये हैं, चाहे वे परिवार के ढाँचे, धार्मिक संस्थाओं, शैक्षिक व्यवस्था, समाज के मूल्यों, राजनीतिक संरचना, आर्थिक तंत्र में हों या उद्योग के अन्तर्गत मानव सम्बन्धों में, का उल्लेख निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

* औद्योगीकरण एक स्थान पर श्रम का संकेन्द्रण होता है जिससे आवास तथा भौतिक सुविधाओं इत्यादि की समस्यायें जन्म लेती हैं। कर्मचारियों के कार्यों के घंटों, कार्यदशाओं जहाँ वे कार्य करते हैं और उनके वातावरण में परिवर्तन के भी अनेक परिणाम होते हैं। (The Human Problems of an Industrial Civilization : New York, The Viking Press, 1960)
* प्राविधिकी (Technology) में बहुधा श्रम का विस्थापन होता है। इससे सामाजिक सुरक्षा साधनों की आवश्यकता उत्पन्न होती है। औद्योगिक रोगी और दुर्घटनाओं के लिये विशेष व्यवस्था अनिवार्य हो जाती है। जब कभी व्यापक बेकारी की समस्या उठ खड़ी होती है तो सरकार भी अनेक उपाय कर सकती है।

उद्योग में महिलाओं के कार्य करने से पारिवारिक जीवन में और स्त्रियों के स्तर में परिवर्तन आ सकते हैं।

प्रचुर उत्पादन (Mass Production) के कारण वस्तुओं की विशाल मात्रा जो पहले बहुत कम, व्ययपूर्ण अथवा अप्राप्त थी, सामान्य जनसंख्या के लिये उपलब्ध होने लगी। इस प्रकार वे वर्गगत सामाजिक स्थिति सम्बन्धी प्रतीक परिवर्तन करते हैं।

संचार के सामूहिक साधन समग्रवादी राज्यों के स्थापन के लिये अनुकूल दशाओं का निर्माण करते हैं। परन्तु इसका उपयोग सरकार में लोगों के द्वारा भाग लेने की भावना को अधिक व्यापक एवं सुदृढ़ बनाने के लिये भी किया जा सकता है।

उद्योग का विकास संगठित श्रम शक्ति को जन्म देता है। कार्यशील शक्ति जो समाज में पहले अकर्मण्य रहती थी, एक क्रियाशील शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इससे प्रबन्ध और श्रम के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है तथापि सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार के उपायों के माध्यम से आवश्यकता पड़ने पर दोनों के मध्य समायोजन किया जा सकता है।

श्रमिक संघ कुद ऐसे सामाजिक कार्य सम्पादित करते हैं जो पहले दूसरी संस्थाओं तथा संघों द्वारा किये जाते थे। वस्तुत: श्रमिक संघ सामाजिक संगठन के लिये वैकल्पिक संगम का कार्य करते हैं और ऐसी सेवायें जैसे वैधानिक मंत्रण, मनोरंजन, परामर्श और राजनीतिक संस्था प्रदान करती है।

श्रम संगठनों से राजनीतिक संस्थाओं के स्वरूप में भी परिवर्तन होते हैं जैसे-जैसे श्रमिकों की संख्या और उनकी संगठन शक्ति बढ़ती है राजनीति तथा सरकार में उत्तरोत्तर हस्तक्षेप की प्रवृत्ति भी आती है।

मनोरंजन क्रियाओं में जिनका स्थान पहले परिवार अथवा लघु समुदायों के अन्तर्गत था, अपना स्वरूप और स्थान बदल दिया है। व्यापारिक मनोरंजन जैसे सिनेमा, जलपान-गृह और संगठित मनोरंजन जैसे क्लब तथा खेलों ने उसका स्थान ले लिया। इनमें से कुछ मनोरंजन तो अनेक व्यक्तियों पर विघटनकारी प्रभाव डालते हैं तब भीशहर की विशिष्ट संरचना भवन प्राविधियों तथा संचार साधनों अर्थात् मोटर गाड़ियों एवं वायुयानों के नये-नये रूपों के साथ परिवर्तित हो सकती है।

.11 नगरीकरण तथा औद्योगीकरण में सम्बन्ध

कसी भी उद्योग के विकास के लिये आवश्यक है कि कच्चा माल, शक्ति का साधन, श्रमिक व गावश्यक यंत्र, सरलता से प्राप्त हो सकें। इसके साथ ही उसके लिये यदि व्यापार के केन्द्र भी नकट हों तो तैयार माल तुरन्त बिक्री के लिये भी भेजा जा सकता है। औद्योगीकरण के आधार र दो प्रकार के नगर विकसित होते हैं। प्रथम प्रकार के नगरों का विकास उन स्थानों पर होता : जहां पहले से ही छोटे नगर होते हैं और औद्योगीकरण की अन्य सामानय सुविधायें विद्यमान ोती हैं। द्वितीय प्रकार के नगर वहाँ विकसित होते हैं जहाँ उद्योगों की स्थापना के लिये तो ुविधायें प्राप्त हो जाती हैं किन्तु पहले से कोई छोटा नगर नहीं होता। ऐसे स्थानां पर नये सिरे े नगर बसाये जाते हैं, जिनमें पर्याप्त मात्रा में आधुनिकता का पुट होता है। ये नगर औद्योगिक गर कहलाते हैं। इस प्रकार पुराने स्थानों के व्यापारिक केन्द्र होने अथवा सामान्य सुविधाओं क वहाँ मिलने के कारण और नवीन स्थानों पर कुछ विशेष सुविधाओं के प्राप्त होने के कारण गरों का विकास हुआ है। प्राय: देखा गया है कि जिन स्थानों पर उद्योगों का विकास हुआ है

वहाँ नगरों की उत्पत्ति हुई है। नगर एक विशेष प्रकार का वातावरण है जिसका विकास विभिन्न औद्योगिक व्यापारिक एवं राजकीय विकास के कारण होता है। एक उद्योग की स्थापना अनेक आवश्यकताओं को जन्म देती है। जैसे दूर-दूर के नगरों को जोड़ने वाले द्रुतगामी यातायात के साधन यथा रेलगाड़ी, बसें, वायुयान, आदि, पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल, कुशल श्रम शक्ति की सुविधा और आवास व जीवन के लिये सामान्य सुविधायें आदि। इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति अनेक संस्थायें मिलकर करती हैं तथा एक बड़े नगर के निर्माण में योग देती है। इंग्लैण्ड में इस प्रकार के विकसित नगरों में बरमिंघम, लंकाशायर, मेनचेस्टर आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। दूसरी ओर आधुनिक समयमें उद्योग के कारण जो स्थान विकसित होते हैं उनमें आधुनिक ढंग से विकास होने की वजह से सुविधायें विद्यमान रहती हैं। उनका विकास परम्परा के आधार पर न होकर आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी की सुविधाओं का आश्रय लेते हुये होता है और इस प्रकार ग्राम और नगर में भेद उपस्थित हो जाता है। नगर व गांव में भेद का प्रमुख तत्व जनसंख्या, जीवन की सुविधायें, विभिन्न प्रकार की संस्थायें कार्यालय आदि हैं। इन बातों की सुविधायें नवीन स्थापित औद्योगिक नगरों में विद्यमान रहती हैं। अतः नगरों का विकास होता है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि ओद्योगीकरण और नगरीकरण की प्रक्रियाओं में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध होता है।

बोध प्रश्न

4. औद्योगीकरण से आप क्या समझते हैं? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दें)

.....

.....

.....

.....

.....

5. औद्योगीकरण से कौन-कौन से तीन प्रभाव परिलक्षित होते हैं?

1. 2. 3.

6. नगरीकण एवं औद्योगीकरण का आपस में कैसा सम्बन्ध है। (संक्षेप में समझाते हुये अपने उत्तर को दस पंक्तियों में सीमित करें)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

9.12 सारांश

इस इकाई के अंतर्गत आपने नगरीकण एवं औद्योगीकरण के विभिन्न पक्षों की अवधारणात्मक एवं विवेचनात्मक जानकारी प्राप्त की। अब आप दोनों के अर्थ, प्रक्रिया, विशेषताओं, कारणों,

भावों एवं समस्याओं के साथ-साथ दोनों के मध्य सम्बन्धों तथा औद्योगीकरण के कारण माज में होने वाले परिवर्तनों से अवगत हो गये हैं।

नगरीकरण के प्रमुख कारण हैं-आर्थिक कारण भौगोलिक कारण, सामाजिक सांस्कृतिक कारण, मनोवैज्ञानिक कारण तथा राजनीतिक कारण। नगरीकरण के ये सभी कारण सामान्यत: लगभग प्रत्येक देशकाल में पाये जाते हैं।

कोई भी प्रक्रिया, चाहे वह किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो, उसके विभिन्न प्रभाव सामान्यतया आस पास के वातावरण पर होते जरूर हैं। नगरीकरण तथा औद्योगीकरण भी ऐसी ही प्रक्रिया हैं, जिन्होंने समाज को विभिन्न प्रकार से प्रभावित किया है।

किसी भी प्रक्रिया का प्रभाव उस क्षेत्र में होने वाले, परिवर्तन से परिलक्षित होता है। औद्योगीकरण से जो परिवर्तन सामने आये हैं, उनसे आप अवगत हो चुके हैं।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि नगरीकरण एवं औद्यागीकरण आपस में गहरे से सह-सम्बन्धित हैं। यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि दोनों अनेक मायनों में एक दूसरे के पूरक हैं।

.13 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

ोध प्रश्न

1. देखें 1.2 (संक्षिप्त परिचय देना है)
2. देखें 1.3
3. देखें 1.6
4. देखें 1.7 (संक्षिप्त परिचय देना है)
5. देखें 1.9
6. देखें 1.11

ाभ्यास

अभ्यास सम्बन्धित उत्तर इकाई पढ़कर स्वय लिखें और परामर्शक को दिखायें।

इकाई 10 पश्चिमीकरण

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पश्चिमीकरण की अवधारणा

10.3 पश्चिमीकरण की विशेषतायें अथवा लक्षण

- 10.3.1 नैतिक रूप से तटस्थ
- 10.3.2 व्यापक जटिल एवं बहुस्तरीय संकल्पना
- 10.3.3 चेतन एवं अचेतन प्रक्रिया
- 10.3.4 अनेक मूल्यों का समावेश

10.4 पश्चिमीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन

- 10.4.1 समाज की विभिन्न संस्थाओं में परिवर्तन
  - 10.4.1.1 जाति प्रथा में परिवर्तन
  - 10.4.1.2 विवाह संस्थाओं में परिवर्तन
  - 10.4.1.3 स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन
  - 10.4.1.4 परम्पराओं एवं प्रथाओं में परिवर्तन
  - 10.4.1.5 संयुक्त परिवार व्यवस्था में परिवर्तन
- 10.4.2 धार्मिक जीवन में परिवर्तन
- 10.4.3 राजनतिक जीवन में परिवर्तन
- 10.4.4 साहित्यिक क्षेत्र में परिवर्तन
- 10.4.5 ललित कला में परिवर्तन
- 10.4.6 शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन
- 10.4.7 आर्थिक जीवन में परिवर्तन

10.5 पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण में अन्तर

10.6 सारांश

10.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/ उपयोगी पुस्तकें

10.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई-1 के अन्तर्गत आप भारतीय समाज में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया एवं उससे जुड़े विभिन्न पहलुओं से परिचित हो सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप :

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया समझ सकेंगे;

पश्चिमीकरण की विशेषताओं अथवा लक्षणों का उल्लेख कर सकेंगे;

पश्चिमीकरण के परिणामों पर प्रकाश डाल सकेंगे;

पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय समाज में होने वाले विभिन्न सामाजिक परिवर्तनों की विवेचना कर सकेंगे;

).1 प्रस्तावना

ुत इकाई पश्चिमीकरण के विवेचनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है। इस इकाई में चमीकरण की प्रक्रिया को विभिन्न पहलुओं के माध्यम से परिचित कराया गया है। प्रथम पश्चिमीकरण की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है ताकि आप सम्पूर्ण विवेचना को लता के साथ समझ सकें। जहाँ तक पश्चिमीकरण की उपयुक्तता का प्रश्न है, अनेक विद्वान चमीकरण की अवधारणा को सामाजिक परिवर्तन की विवेचना के लिये अधिक उपयुक्त ं मानते। हमने उन विवादों में पड़े बिना पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारतीय ाज में होने वाले परिवर्तनों का विवेचनात्मक उल्लेख किया है। एक अच्छा विद्यार्थी वही है जिस विषय का अध्ययन कर रहा है उसे उस विषय के प्रत्येक पहलू का ज्ञान अवश्य ही इसी दृष्टि से इस इकाई में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया से जुड़े सभी पक्षों की चर्चा की गयी

तव में पश्चिमीकरण की अवधारणा को जिन विशेषताओं और मूल्यों के आधार पर स्पष्ट या जाता है वे सभी विशेषतायें किसी न किसी रूप में आधुनिकीकरण की अवधारणा से बन्धित हैं। परन्तु फिर भी पश्चिमीकरण को आधुनिकीकरण नहीं कहा जा सकता। इसी श्य को ध्यान में रखते हुये इकाई के भाग 1.5 में पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण दोनों क्रियाओं में अन्तर स्पष्ट किया गया है।

इकाई में हम आपको पश्चिमीकरण की प्रक्रिया से अवगत करा रहे हैं। इसीलिये हमने इस ाई में अधिक से अधिक उदाहरण भी दिये हैं और आपके लिये यथास्थान अभ्यास प्रश्न भी ं हैं। आप अभ्यास कार्य मेहनत व लगन से करें। इससे आपकी परीक्षा सम्बनधी तैयारी में गामी वृद्धि होगी।

).2 पश्चिमीकरण की अवधारणा

› एम० एन० श्रीनिवास की विचारधाराओं में पश्चिमीकरण की विचारधारा भी विशेष त्वपूर्ण हैं। पश्चिमीकरण का अर्थ है—पश्चिमी देशों की पूर्वी देशों पर प्रभाव डालने की क्रिया। पश्चिम के देशों में इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, अमेरिका, आदि आते हैं। जब इन देशों की माजिक संरचनाओं और मूल्यों व सांस्कृतिक व्यवस्थाओं का पूर्वी देशों जैसे—भारत, लंका, पाकिस्तान, बर्मा आदि पर प्रभाव पड़ता है या प्रभाव डाला जाता है तो परिवर्तन की क्रिया को पश्चिमीकरण का नाम दिया जाता है। चूंकि अंग्रेज भारतवर्ष में बहुत समय तक सक रहे थे, अत: भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व पश्चिमीकरण का वास्तविक स्वरूप ्रेजी पश्चिमीकरण ही रहा था, लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हम लोग अमेरिकी श्चिमीकरण (Americanization) से बहुत अधिक प्रभावित रहे है। पुर्तगाल ने गोवा के माजिक जीवन को अपने विशेष प्रकार के पश्चिमीकरण से प्रभावित किया था।

(डॉ० सत्यपाल रूहेला : भारतीय समाज : संरचना और परिवर्तन, पृष्ठ 13)

पश्चिमीकरण एक व्यापक अवधारणा है इसे दो सन्दर्भों में स्पष्ट किया जाता है—एक अर्थ संकुचित है और दूसरा व्यापक। संकुचित अर्थों में पश्चिमीकरण का तात्पर्य भारत में अंग्रेजी राज्य के दौरान उत्पन्न होने वाली परिवर्तन की उस प्रक्रिया से है जो इंग्लैण्ड की सांस्कृतिक विशेषताओं के प्रभाव का परिणाम थी। व्यापक अर्थ में पश्चिमीकरण का तात्पर्य पश्चिम के किसी भी देश के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों से है। इस अर्थ में पश्चिमीकरण वह प्रक्रिया है जिसके पुस्वरूप किसी गैर पश्चिम समाज की संस्थाओं, विश्वासों, विचारधारा, प्रौद्योगिकी तथा सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों में पश्चिमी संस्कृति के अनुसार परिवर्तन होने लगता है।

प्रो० एम० एन० श्रीनिवास लिखते हैं : "भारत में 150 वर्षों से भी अधिक ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करने के लिये ही मैंने "पश्चिमीकरण" शब्द का प्रयोग किया है; इसमें उन सभी परिवर्तनों का समादेश है जो प्रौद्योगिकी, विभिन्न संस्थाओं, विचारधारा और मूल्यों के विभिन्न स्तरों पर देखने को मिलता है।"

(एम० एन० श्रीनिवास, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, पृष्ठ 47)

इस कथन के द्वारा श्रीनिवास ने यह स्पष्ट किया कि ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजों ने भारत में पश्चिमी ढंग से एक आधुनिक राज्य की स्थापना की, जिसमें भूमि व्यवस्था, प्रशासन, कानून, परिवहन, संचार, शिक्षा तथा प्रौद्योगिकी को एक नया रूप दिया गया। इसी के फलस्वरूप भारत की सामाजिक आर्थिक संस्थाओं, चिंतन के तरीकों तथा व्यवहार के ढंगों में व्यापक परिवर्तन हुआ। परिवर्तन की इसी प्रक्रिया को हम पश्चिमीकरण कहते हैं।

डॉ० योगेन्द्र सिंह ने स्पष्ट किया कि पश्चिमीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें मुख्य रूप से मानवतावाद तथा बुद्धिवाद जैसी विशेषताओं का समावेश होता है अर्थात् पश्चिमीकरण का सम्बन्ध केवल इंग्लैण्ड की संस्कृति के प्रभावों से ही नहीं है बल्कि पश्चिम संस्कृति में जिस मानवतावाद और बुद्धिवाद पर बल दिया गया उसी के प्रभाव की प्रक्रिया को पश्चिमीकरण कहना अधिक उचित है। डॉ० योगेन्द्र सिं के अनुसार "मानवतावाद और बुद्धिवादी पर बल पश्चिमीकरण का प्रमुख अंग है, जिसने भारत में सामाजिक सुधार की प्रक्रिया आरम्भ की। वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना, राष्ट्रीयता का उदय, नयी राजनीतिक संस्कृति तथा नेतृत्व पश्चिमीकरण के सहउत्पाद हैं।"

(योगेन्द्र सिंह, भारतीय परम्पराओं का आधुनिकीकरण, पृष्ठ 9)

वास्तविकता यह है कि भारत में आज एक नई राजनैतिक तथा आथिक व्यवस्था स्थापित होने के साथ ही हमारे चिन्तन के तरीकों, व्यवहार के ढंगों, खानपान, वेशभूषा तथा सामाजिक मूल्यों में व्यापक परिवर्तन हुये हैं। धर्म-निरपेक्षता, समानता, स्वतन्त्रता तथा तार्किकता आदि ऐसे मूल्य हैं जिनका स्मृति काल से लेकर मध्यकाल तक भारतीय संस्कृति में पूरी तरह अभाव रहा। पश्चिमी देशों के लिये संयुक्त प्रभाव से भारतीय समाज में यह परिवर्तन पैदा हुये। प्रभाव और परिवर्तन की इसी प्रक्रिया का नाम पश्चिमीकरण है।

10.3 पश्चिमीकरण की विशेषतायें अथवा लक्षण

प्रो० एम० एन० श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण की विभिन्न विशेषताओं का उल्लेख किया है, जैसे :

).3.1 नैतिक रूप से तटस्थ

० एम० एन० श्रीनिवास ने लिखा है ''पश्चिमीकरण शब्द नैतिक रूप से तटस्थ है। यह रेवर्तन के अच्छे या बुरे होने को सूचित नहीं करता, बल्कि इसका सम्बन्ध प्रत्येक उस रेवर्तन से है जिससे पश्चिमी समाजों के अनुसरण का बोध होता है।'' दूसरे शब्दों में पश्चिमीकरण की प्रक्रिया पश्चिम के प्रभाव से होने वाले परिवर्तन को अच्छा या बुरा नहीं ाती बल्कि केवल पश्चिमी संस्कृति के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करती है। त: नैतिक रूप से तटस्थ होना इस प्रक्रिया की प्रमुख विशेषता है।

).3.2 व्यापक, जटिल एवं बहुस्तरीय संकल्पना

श्चिमीकरण एक व्यापक जटिल एवं बहुस्तरीय अवधारणा/संकल्पना है। यह व्यापक वधारणा इसलिये है क्योंकि इसमें पश्चिम के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले सभी प्रकार के तिक और अभौतिक परिवर्तनों का समावेश है। अपनी व्यापकता के आधार पर श्चिमीकरण की प्रक्रिया मुख्यत: तीन क्षेत्रों से सम्बन्धित है : (1) व्यवहार सम्बन्धी, से—खान-पान, वेशभूषा, शिष्टाचार के तरीके तथा व्यवहार प्रतिमान आदि; (2) ज्ञान म्बन्धी, जैसे—विज्ञान, प्रौद्योगिकी और साहित्य आदि; (3) सामाजिक मूल्य सम्बन्धी, से— मानवतावाद, धर्म निरपेक्षता तथा समताकारी विचार।

श्चिमीकरण की प्रक्रिया में निहित विविध प्रकार की प्रक्रियायें जटिल भी हैं तथा इस प्रक्रिया अनेकानेक प्रकार के जटिल तत्वों का समावेश भी है। यह प्रक्रिया केवल प्रथाओं, विचारों, ति व्यवस्था, धर्म परिवार और रहन-सहन में होने वाले परिवर्तनों को ही स्पष्ट नहीं करती न् पश्चिम की वैज्ञानिक और प्रौद्योगिक प्रगति के फलस्वरूप उत्पन्न हुये परिवर्तनों से म्बन्धित है। इस प्रक्रिया की जटिलता इस बात से भी स्पष्ट होती है कि इसने समस्त भारतीय माज को समान रूप से प्रभावित नहीं किया। गाँवों की अपेक्षा नगरों तथा निम्न वर्गों की पेक्षा उच्च वर्गों में इस प्रक्रिया का प्रभाव अधिक देखने को मिलता है अर्थात् पाश्चात्यता हीं अधिक प्रभावी है तो कहीं कम। इसके अतिरिक्त पश्चिमीकरण की प्रक्रिया एक हुतस्तरीय अवधारणा भी है, क्योंकि इसमें एक छोर पर पश्चिमी प्रौद्योगिकी से लगाकर दूसरे र पर आधुनिक विज्ञान और आधुनिक इतिहास लेखन तक विस्तृत क्षेत्र सम्मिलित है।

).3.3 चेतन एवं अचेतन प्रक्रिया

ूल रूप में यदि देखा जाये तो पश्चिमीकरण एक चेतन प्रक्रिया है किन्तु कई बार इसकी भिन्न विशेषताओं को व्यक्तियों द्वारा अचेतन रूप में भी ग्रहण कर लिया जाता है। प्रक्रिया में तनता से अभिप्राय है कि जानबूझकर कर पश्चिम की उन विशेषताओं को ग्रहण करना जो में अधिक उपयोगी प्रतीत होती हैं, जैसे पश्चिमी प्रौद्योगिकी, शिक्षा तथा समताकारी मूल्य।

ई बार व्यक्ति को स्वयं ही मालूम नहीं हो पाता कि उसने किस तत्व को अनायास ही ग्रहण र लिया व कौन सा तत्व अचानक ही उसके जीवन में समा गया। पश्चिमीकरण ऐसी एक चेतन प्रक्रिया भी है।

).3.4 अनेक मूल्यों का समावेश

इस प्रक्रिया में अनेकानेक मूल्य सम्मिलित है, जिनकी प्रकृति भारत के परम्परागत मूल्यों काफी भिन्न है जैसे—समानता, स्वतन्त्रता, व्यक्तिवादिता, भौतिक आकर्षण, तार्किकता तथा नवतावाद, पूँजीवाद तथा औद्योगीकीकरण आदि। ये सभी मूल्य भारतीय संस्कृति में नहीं थे ाका प्रभाव पश्चिम के सम्पर्क में आने पर हुआ।

बोध प्रश्न

(1) पश्चिमीकरण से आप क्या समझते हैं? (तीन पक्तियों में उत्तर दें)

.....

.....

.....

(2) पश्चिमीकरण एक तटस्थ प्रक्रिया है (तीन पंक्तियों में स्पष्ट करें)

.....

.....

.....

(3) पश्चिमीकरण की अवधारणा में अनेक मूल्यों का समावेश है। निम्नांकित में से पश्चिमीकरण किस मूल्य से सम्बन्धित है? (सही उत्तर के सामने का निशान लगायें।)

(क) मानवतावाद ( )

(ख) बुद्धिवाद ( )

(ग) अ तथा ब दोनों ( )

(घ) अ तथा ब में से कोई नहीं ( )

10.4 पश्चिमीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन अर्थात् भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण का प्रभाव

भारत में अंग्रेजी शासन के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन हुए। इस युग में नयी प्रौद्योगिकी और संचार साधनों के विस्तार के फलस्वरूप देश का एकीकरण हुआ। 19वीं शताब्दी में धीरे-धीरे भूमि का सर्वेक्षण करके राजस्व निर्धारित किया गया। आधुनिक अधिकारीतन्त्र, सेना और पुलिस की स्थापना की गयी अदालतें स्थापित करके कानून संहितायें बनायी गयीं। संचार साधनों, रेलों, डाक-तार, सड़कों और नहरों का विकास हुआ। स्कूलों और कालेजों की स्थापना के द्वारा आधुनिक राज्य की नींव पड़ी। अंग्रेजों ने भारत में छापेखानों की भी स्थापना की जिनके कारण भारतीय जीवन और चिन्तन में क्रान्ति आयी। समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। समाचार-पत्रों के माध्यम से देश में जागृति उत्पन्न हुयी और देशवासी एक दूसरे के निकट आये। 19वीं शताब्दी के पूर्व में अंग्रेजों ने जागरूक भारतीय जनमत के समर्थन में सामाजिक कुरीतियों को मिटाया। 150 वर्षों के अंग्रेजी शासन के फलस्वरूप भारतीय समाज और संस्कृति में होने वाले परिवर्तनें के लिये प्रो० एम० एन० श्रीनिवास ने पश्चिमीकरण शब्द का प्रयोग किया है।

पश्चिमीकरण के फलस्वरूप न केवल नई संस्थाओं का उदय हुआ बल्कि पुरानी संस्थाओं में भी मूलभत परिवर्तन हुये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ब्रिटिश शासन द्वारा आरम्भ किये गये प्रयत्नों का अधिक तेजी से विस्तार हुआ। सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों के साथ ही अधिकांश व्यक्ति यह स मझने लगे कि पश्चिमी संस्कृति के आधार पर ही समाज में उपयोगी

वर्तन लाये जा सकते हैं। इस प्रकार पश्चिमीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय समाज तथा
ामाजिक संस्थाओं में जो व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किये उन्हें संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार
झा जा सकता है :

.4.1 समाज की विभिन्न संस्थाओं में परिवर्तन

चमीकरण के फलसवरूप भारतीय सामाजिक व सांस्कृतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन
हैं। अंग्रेजी ने भारत में दो प्रकार के कार्य किये (1) विघटनात्मक (2) रचनात्मक, अर्थात्
ने भारतीय समाज को नष्ट भ्रष्ट करना तथा पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता की नींव जमाना।
का प्रभाव भारतीय समाज की विभिन्न संस्थाओं पर पड़ा जिसके फलस्वरूप अनेकानेक
वर्तन परिलक्षित हुये, यथा :

.4.1.1 जाति में प्रथा में परिवर्तन

ाजी शासन से पूर्व जाति प्रथा अपने समस्त प्रतिबन्धों तथा नियमों के साथ हिन्दू जीवन को
हुये थी। ब्राह्मणों ने जाति प्रथा के नियमों को बहुत कठोर बना रखा था। अनेक संतों,
ापुरुषों तथा समाज सुधारकों ने जाति सम्बन्धी कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया,
न्तु आशाप्रद परिणाम नहीं निकले। अंग्रेजी शासनकाल में जाति प्रथा के संरचनात्मक तथा
थापक दोनों ही पहलुओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। औद्योगीकरण के फलस्वरूप गाँव से
रों की ओर पलायन, एक साथ काम करना, उठना-बैठना, खान-पान आदि के कारण जाति
व्यस्था की नींव हित गयी। वंशानुगत पेशे समाप्त हो गये। जाति के आधार पर पेशों का
र्गीकरण समाप्त हो गया। यातायात के साधनों के विकास के कारण पारस्परिक दूरी कम हुयी।
चात्य शिक्षा के विस्तार के कारण सभी पुरुषों को एक साथ पढ़ने, नौकरी करने तथा मेल-
ाप को बढ़ाने का अवसर मिला, जिसके फलस्वरूप प्रेम विवाह का प्रचलन बढ़ा, जिसमें
ति का प्रश्न गौण हो गया। इसके अतिरिक्त तीव्र गति से हो रहे नगरीरकण के कारण भी
तिगत दूरियाँ समाप्त हो रही हैं। आज अनुसूचित जातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों की सभी
ामजिक और आर्थिक निर्योग्यतायें समाप्त हो जाने तथा उन्हें विशेष मताधिकार मिलने से
ति व्यवस्था का सम्पूर्ण ढांचा चरमराकर टूट गया है।

.4.1.2 विवाह संस्था में परिवर्तन

यकाल से लेकर 19वीं शताब्दी के अन्त तक भारतीय समाज में विवाह सम्बन्धी कुप्रथाओं
लगातार वृद्धि होती रही। बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, कन्यादान से सम्बन्धित मान्यतायें,
पत्नी विवाह, कुलीन विवाह, अन्तर्विवाह और बहिर्विवाह से सम्बन्धित नियम हमारी प्रमुख
ामाजिक कुरीतियां थीं। पश्चिम संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप एक ऐसे सामाजिक
ावरण का विकास हुआ जिसमें विवाह के परम्परागत नियमों का पालन करने की अपेक्षा
य जीवन साथी का चुनाव करना अधिक अच्छा समझा जाने लगा। परिणामत: एक ओर
ां विलम्ब से विवाह का चलन बढ़ा तो वहीं दूसरी ओर अन्तर्जातीय विवाह भी होने लगे।
वाह संस्था में हो रहे ये सभी परिवर्तन पाश्चात्य मूल्यों का आदर्शों द्वारा प्रेरित हैं।

.4.1.3 स्त्रियों की स्थिति में सुधार

श्चमीकरण की प्रक्रिया ने भारतीय नारी की दशा सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह
या है। समाज में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करने का प्रोत्साहन पश्चिमी संस्कृति की ही
है। इतना ही नहीं विभिन्न व्यवसायों और सेवाओं में प्रवेश करके अपनी आत्मनिर्भरता को
ाने का प्रयत्न, पश्चिमीकरण के प्रभाव से उत्पन्न वैयक्तिक स्वतन्त्रता का ही परिणाम है।
ज यदि भारत के पुरुषों के एक वर्ग की विचारधरा स्त्रियों के प्रति बदली हो तो उसका

कारण भी पश्चिम की वह विचारधारा है जो मानवतावादी और समतावादी मूल्यों को महत्व देती है।

आज यदि देखा जाये तो अधिकांशत: भारतीय नारी का कार्य क्षेत्र घर-गृहस्थी की चहारदीवारी नहीं वरन् समूचा राष्ट्र हैं, यह सब पश्चिमीकरण की ही देन है।

10.4.1.4 परम्पराओं एवं प्रथाओं में परिवर्तन

पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय रीति-रिवाजों एवं प्रथाओं को काफी सीमा तक प्रभावित किया है। आज हाथ जोड़कर अथवा पैर छूकर अभिवाहन करने में व्यक्ति लज्जा, अपमान एवं हीनता का अनुभव करता है तथा हाथ मिलाना, हाथ हिलाकर टाटा कहना अथवा 'गुड मार्निंग कहरना अच्छा लगता है। केक काटकर जन्म दिवस एवं विवाह उत्सव बनाने मा चलन बहुत अधिक हो गया है। अंगूठी पहनाकर मंगनी की रस्म पूरी करना तथा विवाहोत्वसव में खड़े होकर प्लेट में भंजन करना एक आम बात है। माताजी एवं पिताजी के स्थान पर माम तथा डैड कहकर सम्बोधित करना आज आधुनिक होने का प्रतीक है। इस प्रकार आज हमारी न जाने कितनी प्रथायें एवं परम्परायें हैं जो पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के चलते दम तोड़ रहीं हैं।

10.4.1.5 संयुक्त परिवार व्यवस्था में परिवर्तन

अंग्रेजी शासन काल से पूर्व भारत में पारिवारिक दृष्टि से देखा जाये तो भारत में संयुक्त परिवार प्रथा का साम्राज्य था। परन्तु पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आकर भारतीय समाज में कुछ ऐसी नवीन परिस्थितियों का विकास हुआ जिन्होंने संयुक्त परिवार व्यवस्था को विघटन की दिशा प्रदान की, जैसे—धन के महत्व में वृद्धि, यातायात एवं संचार वाहन के साधनों में वृद्धि, पश्चात्य शिक्षा का प्रसार, महिला जागृति व्यक्तित्ववादी तथा भौतिकवादी मूल्यों का विकास, लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण का विकास, जाति व्यवस्था की विघटनोन्मुख स्थिति तथा औद्योगीकरण का विकास। अकेले औद्योगीकरण ने असंख्य नवीन व्यवसायों को जन्म देकर, ग्रामीण एवं कुटीर उद्योग धंधों को नष्ट करके, नगरीय परिवेश को उत्पन्न करके वैयक्तिक उत्पादन एवं नकद मजदूरी पद्धति लागू करके,मकानों की समस्या उत्पन्न करके, स्त्रियों को नौकरी के अवसर उत्पन्न करके, परिवार के कार्यों को कम करके,धन के महत्व में वृद्धि करके, व्यक्तिगत योग्यता एवं एकता पर बल देकर, यातायात एवं संचार के साधनों में वृद्धि करके व्यक्तिगत योग्यता एवं एकता पर बल देकर, यातायात एवं संचार के साधनों में वृद्धि करके, महिलाओं में जागृति उत्पन्न करके, लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण का विकास करके, जाति प्रथा को विघटन के मार्ग पर अग्रसर करके, सामाजिक सुरक्षा के नवीन साधनों का विकास करके, संयुक्त परिवार व्यवस्था के विघटन की दिशा में चलने को बाध्य कर दिया है। संयुक्त परिवारों के विघटन की प्रक्रिया के फलस्वरूप भारत में एकाकी परिवारों का उदय हुआ, परिवार में स्त्रियों की स्थिति एवं अधिकारों में वृद्धि हुयी, घर की चाहरदीवारों से बाहर स्त्रियों का सामाजिक जीवन सभी क्षेत्रों में प्रवेश होने लगा। इस प्रकार पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय परिवार का प्राचीन एवं परम्परागत स्वरूप पूर्णत: परिवर्तित कर दिया।

10.4.2 धार्मिक जीवन में परिवर्तन

भारतीय समाज में मध्यकाल से लेकर 19वीं शताब्दी के अन्त तक जिन धार्मिक अंधविश्वासों, कर्मकाण्डों तथा धर्म पर आधारित कुप्रभाओं में वृद्धि होती रही थी, पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से उनसे सम्बन्धित मनोवृत्तियों में तेजी से परिवर्तन होना आरम्भ हुआ। पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय समाज में बुद्धिवाद का विकास हुआ, जिसके कारण

ाक प्रथाओं, मान्यताओं, कर्मकाण्डों एवं अंधविश्वासों के प्रति लोगों की आस्था कम होने । बी० एन० लूनिया का कथन है कि "धार्मिक क्षेत्र में भी पश्चात्य प्रभाव से विशिष्ट त हो गयी। अंधविश्वास और श्रद्धा का स्थान बुद्धि और तर्क ने ले लिया एवं उदारता तथा न्त्र विचार कट्टरता और शास्त्रवाद पर विजयी होने लगे। पश्चिम ने भारतीयसमाज को ाकवाद का नवीनतम दर्शन, बौद्धिक उत्तेजना और धार्मिक बातों के प्रति अन्वेषण और ासा की तीव्र भावना प्रदानकी। प्राचीन विश्वासों, परम्पराओं और सिद्धान्तों को विज्ञान, तर्क समालोचना की कसौटी पर उतारा गया और उनमें से अनेक की निन्दा कर उन्हें त्याग । गया।"

बी० एन० लुनिया, उद्धृत एम० एस० जैन, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ० 298-299)

ीय संस्कृति की सामूहिकता एवं आध्यात्मिकता पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से क्तिकता एवं भौतिकता में परिवर्तित होनेलगी। ईसाई धर्म तथा संस्कृति की चकाचौंध से ईसाई मिशनरियों विशेषत: पिछड़े तथा छोटी जातियों के लोगों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर ा। पाश्चात्य संस्कृति से ही प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म के ां, कुरीतियों एवं अंधविश्वासों को दूर करने के लिये अनेक समाज सुधारकों ने सुधार ोलनों को जन्म दिया। इनमें राजा राम मोहन राय महर्षि देवेंद्र नाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, मी दयानंद सरस्वती, रानाडे भंडारकर तथा स्वामी विवेकानन्द आदि के नाम प्रमुख हैं।

चमीकरण की विचारधारा के प्रभाव से शकुन-अपशकुन, भूत-प्रेत तथा भाग्यवादिता का व कम होने लगा। आज पश्चिम के समान भारत में भी धर्म के प्रति उदासीनता बढ़ रही धार्मिक प्रतिनिधियों को ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में नहीं देखा जाता।

4.3 राजनैतिक जीवन में परिवर्तन

चमीकरण की प्रक्रिया ने राजनैतिक क्षेत्र में न केवल राष्ट्रीयतावाद को, बल्कि त्थानवाद, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, तीव्रतर भाषायी चेतना और प्रादेशिकता को जन्म ा। परिस्थितियां ऐसी बनी कि पुनुरुत्थानवादी आंदोलनकारियों ने अपने विचारों के प्रसार के े पश्चिमी ढंग के स्कूल कॉलेजों, पुस्तकों और पत्रिकाओं का उपयोग किया।

जी शासन से पूर्व भारतीय शासन व्यवस्था की तीन प्रमुख विशेषतायें थीं। (1) ग्राम ायतों की राजनैतिक इकाइयों के रूप में स्वतन्त्र सत्ता (2) शासन व्यवस्था में धार्मिक द्धान्तों की मान्यता (3) विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न शासकों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार की न व्यवस्था। अंग्रेजों ने इन तीनों तत्वों को जड़ से उखा फेंका, पंचायतों के अधिकारों को न लिया, शासन प्रबन्ध के क्षेत्र से धर्म का हिष्कार किया और सारे देश में समान शासन स्था लागू की।

चात्य प्रभाव के कारण ही भारत में लोकतन्त्रीय तथा प्रजातन्त्रीय संस्थाओं का भी विकास । लगा। ब्रिटिश शासन व्यवस्था, पूंजीवादी आदर्शों पर आधारित थी, जो कि स्वयं ही अनेक ामाजिक दोषों से युक्त है। इन दोषों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप साम्यवादी, समाजवादी और क्तिवादी राजनीतिक विचारों व सिद्धान्तों का प्रसार भी भारत में हुआ।

.4.4 साहित्य के क्षेत्र में परिवर्तन

चात्य शिक्षा एवं संस्कृति ने देश की विभिन्न भाषाओं को भी प्रभावित किया है। भारतीय ानों को अंग्रेजी भाषा के अध्ययन से विश्व के सर्वाधिक समृद्ध साहित्य अर्थात् अंग्रेजी हित्य को पढ़ने, समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इसके फलस्वरूप देश की विभिन्न भाषाओं साहित्य में पश्चात्य साहित्य की शैली एवं विचारों का समावेश हुआ। अंग्रेजी शिक्षा, ईसाई

धर्म प्रचार तन्त्र ने प्रेस के प्रयोग, पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन तथा अंग्रेजी साहित्य के पढ़ने एवं समझने में भारत की विभिन्न भाषाओं की साहित्यिक परम्पराओं को नवीनता में ढाल दिया। फलस्वरूप कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध, जीवनी आदि परवर्ती साहित्य में नई प्रवृत्तियों के दर्शन हुये। भारतीय नाट्य साहित्य में शेक्सपीयर, बर्नाडशा, गॉल्सवर्दी आदि के लेखन से पाश्चात्य प्रवृत्तियां सम्मिलित हुयीं, कविता के क्षेत्र में पाश्चात्य कविता की प्रेरणा से 'चतुर्दश्पदियों' और सम्बोधन गीतों ने जन्म लिया, खड़ी बोली की कविता तथा अतुकान्त कविता का विकास भी अंग्रेजी कविता से प्रभावित था, अंग्रेजी के प्रभाव से भारतीय भाषाओं में भी छायावादी कविता की जाने लगी। इस प्रकार भारतीय साहित्य की समस्त विधायें अंग्रेजी साहित्य से प्रभावित हैं।

10.4.5 ललित कला में परिवर्तन

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के फलस्वरूप भारतीय स्थापत्यकता, चित्रकला, नृत्यकला एवं संगीत कला के क्षेत्र में अत्यधिक परिवर्तन हुये हैं। अंग्रेजों ने भारत में आने के पश्चात् यहां जो बनवाये, वे सब यूरोपीय स्थापत्य कला पर आधारित थे। अंग्रेजों ने भारत में एक सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना की जिसमें, स्थापत्य कला के अंग्रेज विशेषज्ञ कार्यरत थे। कलकत्ता का विक्टोरिया मेमोरियल पाश्चात्य स्थापत्य कला का अनूठा नमूना है। अनेक इमारतें एवं मन्दिर पाश्चात्य एवं भारतीय स्थापत्यकला के मिश्रण से तैयार किये गये। लाहौर का सीनेट हाल इस प्रकृति का आदर्श नमूना है। अंग्रेजी सरकार ने चित्रकला के शिक्षण के लिये बम्बई, मद्रास एवं कलकत्ता में कला केन्द्रों की स्थापना की, जहां पाश्चात्य कला परम्परा के अनुसार चित्रकला का प्रशिक्षण दिया जाता था। इसके फलस्वरूप भारतीय चित्रकला पाश्चात्य चित्रकला से प्रभावित हुयी। पाश्चात्य प्रभाव वे कारण चित्रकला के क्षेत्र में आध्यात्मिक एवं कलातमक चित्रों के स्थान पर बाह्य एवं नग्न सौन्दर्य प्रदर्शित करने वाले चित्र बनाये जाने लगू तथा चित्रों के निर्माण में वैज्ञानिक यन्त्र का प्रयोग किये जाने लगे। भारतीय संगीत नृत्य एवं नाट्य कलाएँ भी पाश्चात्य प्रभाव से अछूती नहीं रही हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत के स्थान पर फिल्मी संगीत अधिक लोकप्रिय हो रहा है, जो पाश्चात्य संगीत पर आधारित है। नृथ्य के क्षेत्र में भरतनाट्यम कत्थक, कथकली आदि शास्त्रीय परम्परा पर आधारित नृत्यों के स्थान पर जन सामान्य में पाश्चात्य परम्परा पर आधारित नृत्य अधिक पसंद किये जाते हैं/जा रहे हैं। नाट्यकला के क्षेत्र में भी परम्परागत नौटंकी एवं रामलीला की तुलना में चलचित्र देखना अधिक पसंद किया जा रहा है। इस प्रकार भारतीय कलायें चाहे वह स्थापत्य चित्रकला, संगीत, नृत्य अथवा नाट्य कला हो, सभी पाश्चात्य संस्कृति से अतिशय प्रभावित हैं।

10.4.6 शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन

भारत की शिक्षा पद्धति मूलत: वही है जो ब्रिटिश शासनकाल में लार्ड मैकाले द्वारा स्थापित की गयी थी। थोड़े बहुत परिवर्तनों एवं संशोधनों के साथ वही शिक्षा प्रणाली आज भी देश में लागू है। यद्यपि लार्ड मैकाले द्वारा स्थापित शिक्षा पद्धति का उद्देश्य भारत के लोगों का कल्याण करना नहीं था, अपितु उनके प्रशासनिक कार्यों में हाथ बंटाने के लिये क्लर्कों की आवश्यकता को पूरा करना था। इस कार्य के लिये वे ऐसे लोगों को तैयार करना चाहते थे जो शरीर और रंग में भारतीय हों लेकिन उनकी मानसिकता अंग्रेजों जैसी हो। यही इस शिक्षा पद्धति का मूलभूत उद्देश्य रहा है। यही कारण है कि इस शिक्षा पद्धति को ग्रहण करने से लोगों के विचार, दृष्टिकोण आदर्श एवं मूल्यों में पाश्चात्य सोच के अनुसार हो गया, जिससे

उनकी सोच में व्यापकता का विकास हुआ और वे जात-पाँत, ऊंची-नीच, छुआछूत, अस्पृश्यता, धार्मिक संकीर्णता, अन्धविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों को गलत मानने लगे। इसी सोच के फलस्वरूप देश में राष्ट्रीय पुनर्जागरण का सूत्रपात हुआ। इस पुनर्जागण में पाश्चात्य शिक्षा की भूमिका का उल्लेख करते हुये 'दिनकर' लिखते हैं कि "समाज और देश के प्रति जो नवीन चेतना जागी, उसी के भीतर से हमारी सारी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक क्रान्तियों का जन्म हुआ है।" (उद्धृत, रामधारी सिंह 'दिनकर', 'संस्कृति के चार अध्याय', पृष्ठ 95)

सामाजिक चेतना ही वह गुण हैं, जो आज के औसत भारतवासी को प्राचीन अथवा मध्युयगीन भारतवासी से विमुक्त करता है और यह चेतना भारत को यूरोपीय सम्पर्क से मिली है। यह ठीक है कि भारतीय जनता को अशिक्षा और अन्धविश्वास की जकड़बन्दी से छुड़ाने अथवा उसके भीतर प्रगतिशील विचारों को प्रेरित करने का काम अंग्रेज शासकों ने नहीं किया, किन्तु नयी विद्या के प्रचार से ये सारे कार्य स्वमेव ही हो गये। पश्चिमीकरण के फलस्वरूप भारत की शिक्षा में धर्म के स्थान पर तर्क एवं वैज्ञानिकता का प्रादुभाव हुआ, जिसके फलस्वरूप भारत की सम्पूर्ण सामाजिक संरचना तथा व्यक्तियों की मनोवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन हुये। साथ ही भारत में जितना यन्त्रीकरण, औद्योगीकरण, परमाणु शक्ति का विकास, यातायात के साधनों का विकास, संचार साधनों का विपुल विस्तार, चिकित्सा एवं औषधि विज्ञान में प्रगति, कृषि के क्षेत्र में नवीन औषधियों का विकास आदि तकनीकी एवं व्यावसायिक क्षेत्र में जो भी परिवर्तन हुआ। उसकी आधारशिला पाश्चात्य शिक्षा ही रही है।

10.4.7 आर्थिक जीवन में परिवर्तन

पाश्चात्य संस्कृति के भारतीय आर्थिक जीवन पर बहुमुखी प्रभाव पड़े औद्योगीकरण का विकास हुआ, जिसके स्वाभाविक परिणामस्वरूप नगरीकरण विकसित हुआ। औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के विकास के फलस्वरूप भारतीय आर्थिक जीवन में बहुमुखी एवं असंख्य परिवर्तन दृष्टिगोचन होने लगे। यथा भारतीय समाज कृषि अर्थव्यवस्था की ओर उन्मुख हुआ, पूंजीवादी व्यवस्था का विकास हुआ, सामूहिक सम्पत्ति के स्थान पर वैयक्तिक सम्पत्ति की धारणा बलवती हुयी। आर्थिक जीवन में प्रतिस्पर्धा की भावना विकसित हुयी। गाँवों की परम्परागत आत्मनिर्भरता समाप्त हुयी। बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा, यातायात एवं संचार वाहन के साधनों का विपुल विस्तार हुआ। इसके अतिरिक्त औद्योगिक क्षेत्र में अनेक समस्याओं का जन्म हुआ। जैसे—श्रमिकों की काम करने एंवं रहने की अस्वस्थकर दशाओं का विकास तथा शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन एवं सामाजिक सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्थाओं के अभाव में उन्हे, वेतन देना तथा अधिक समय तक काम लेना। बाल श्रमिकों एवं महिला श्रमिकों की समस्या, हड़तालें एवं तालाबन्दी तथा श्रमिकों एवं मालिकों के पृथक्-पृथक् संघ बनने से औद्योगिक झगड़ों का जन्म आदि। इन समस्याओं को दूर करने एवं श्रमिक कल्याण हेतु सरकार ने सामाजिक विधानों का निर्माण किया तथा सामाजिक सुरक्षा व्यवस्थाओं को विकसित किया।

बोध प्रश्न

(4) पश्चिमीकरण की प्रक्रिया द्वारा भारतीय समाज के किन-किन क्षेत्रों में परिवर्तन हुये? किन्हीं तीन के बारे में बताइये।

(क) .....

(ख) .....

(ग) .....

(5) पश्चिमीकरण के प्रभाव से धार्मिक क्षेत्र में कौन-कौन से परिवर्तन हुये हैं? पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

(1) अभ्यास

कोई उदाहरण देते हुये पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का उल्लेख करें। (उत्तर लगभग दस पंक्तियों में लिखें)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.5 पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण में अन्तर

वास्तव में पश्चिमीकरण की अवधारणा को जिन विशेषताओं और मूल्यों के आधारपर स्पष्ट किया जाता है वे सभी विशेषतायें किसी न किसी रूप में आधुनिकीकरण की अवधारणा से सम्बन्धित है। परन्तु फिर भी पश्चिमीकरण को आधुनिकीकरण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पश्चिम से आने वाला प्रत्येक व्यक्ति अथवा प्रत्येक प्रभाव आधुनिक हो यह आवश्यक नहीं। प्रो० एम० एन० श्रीनिवास के मतानुसार "आधुनिकीकरण की पूर्व मान्यता उद्देश्यों की तर्कशीलता है, जो कि प्राय: होती नहीं है। सामाजिक कार्यों में तर्कशीलता या बौद्धिकता केवल कार्य में देखी जा सकती है, इसके उद्देश्य में नहीं। (डॉ० एम० एन० लवानिया, भारतीय सामाजिक व्यवस्था, पृ० 332)

श्रीनिवास ने 'पश्चिमीकरण' शब्द को 'आधुनिकीकरण' की अपेक्षा अच्छा माना हैं। जबकि समाजशास्त्री डेनियल लर्नर, हेरोल्ड गूल्ड, मिल्टन सिंगर और योगेन्द्र सिंह ने आधुनिकीकरण शब्द को उचित माना है। श्रीनिवास ने आधुनिकीकरण को व्यक्तिपरक तथा पश्चिमीकरण को वस्तुरक माना है। आधुनिकीकरण में तथाकथित 'लक्ष्यों की तर्क संगतता' को निश्चित नहीं माना जा सकता, क्योंकि मानव लक्ष्य मूल्य वरीयताओं पर आधारित है। अत: तर्कसंगतता को

सामाजिक क्रिया के आधार पर पूर्वानुमानित किया जा सकता है। पश्चिमीकरण की विशेषताओं पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि पश्चिमीकरण तथा आधुनिकीकरण की प्रकृति एक दूसरे से भिन्न है। आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका आरम्भ पश्चिमी देशों में हुआ लेकिन धीरे-धीरे इससे सम्बन्धित विशेषतायें, संसार के सभी समाजों में फैलाने लगी। पश्चिमीकरण का मुख्य सम्बन्ध पश्चिमी संस्कृति के मूल्यों को ग्रहण करने की प्रक्रिया से है, जबकि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का मुख्य सम्बन्ध प्रौद्योगिकी, नगरीयता तथा गतिशीलता में वृद्धि होने से है। पश्चिमीकरण चेतन तथा अचेतन दोनों प्रकार से हो सकता है, लेकिन आधुनिकीकरण के लिये चेतन प्रयासों का होना आवश्यक है। पश्चिमीकरण का आदेश केवल पश्चिमी देश है जबकि आधुनिकीकरण का आधार संसार का कोई भी विकसित देश हो सकता है। आधुनिकता के फलस्वरूप समाज में अनेक ऐसी मनोवृत्तियां विकसित होती हैं जो पश्चिमीकरण से बहुत भिन्न हैं। यदि भारतीय सन्दर्भ में देखा जाये तो यहां पश्चिमीकरण की तुलना में आधुनिकीकरण ने हमारे जीवन को अधिक व्यापक रूप से प्रभावित किया है, किन्तु यदि अवधारणात्मक तत्वों के आधार पर देखा जाये तो पश्चिमीकरण की अवधारणा आधुनिकीकरण की अवधारणा से कहीं अधिक व्यापक है। अतः दोनों अवधारणाओं में अन्तर स्वाभाविक है।

बोध प्रश्न

(6) पश्चिमीकरण एवं आधुनिकीकरण में क्या अन्तर है? (उत्तर दस पंक्तियों में दो)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

इकाई-11 आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 आधुनिकीकरण की अवधारणा

11.3 आधुनिकीकरण की विशेषताएं

- 11.3.1 औद्योगीकरण
- 11.3.2 नगरीकरण
- 11.3.3 बढ़ती हुयी गतिशीलता
- 11.3.4 परिवर्तन में रुचि
- 11.3.5 वैयक्तिक आकांक्षाओं को मान्यता
- 11.3.6 लौकिक मूल्यों की प्रधानता
- 11.3.7 लोकतांत्रिक मूल्यों में वृद्धि

11.4 भारत में आधुनिकीकरण

11.5 आधुनिकीकरण का भारतीय समाज में प्रभाव

11.6 उत्तर आधुनिकीकरण : एक अवधारणात्मक विवेचन

- 11.6.1 उत्तर आधुनिकीकरण की कुंजी
  - 11.6.1.1 आधुनिकता
  - 11.6.1.2 उत्तर आधुनिकता
  - 11.6.1.3 आधुनिकतावाद
  - 3.6.1.4 आधुनिकीकरण
- 11.6.2 उत्तर आधुनिक समाज की विशेषतायें
- 11.6.3 आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण में अन्तर

11.7 सारांश

11.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई-3 के अन्तर्गत आप भारतीय समाज में आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अवधारणात्मक विश्लेषण में परिचित हो सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप :

* आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे;
* आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे;
* भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं भारतीय समाज पर उसके प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे;
* आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण के मध्य सम्बन्ध एवं अन्तर पर प्रकाश डाल सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण के विवेचनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित हैं। इकाई में आधुनिकीकरण एवं उत्तर-आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को विश्लेषणात्मक ढंग से परिचित कराया गया है। सर्वप्रथम आधुनिकीकरण की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। यद्यपि विद्वानों द्वारा आधुनिकीकरण की अवधारणा के विषय में अनेक चर्चायें की गयी हैं; फिर भी इस सम्बन्ध में सभी विद्वानों का दृष्टिकोण एक-सा नहीं है। हमने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को, एक जटिल प्रक्रिया मानते हुये, जो कि एक समाज विशेष के सदस्यों के सम्पूर्ण जीवन को स्पर्श करती हैं, का विवेचनात्मक उल्लेख किया है।

* आधुनिकीकरण की अवधारणा को केवल कुछ परिभाषाओं के द्वारा ही स्पष्ट नहीं किया जा सकता, बल्कि इसे समझने के लिये उन विशेषताओं अथवा आधारों को समझना आवश्यक है जिनका उल्लेख विभिन्न विद्वानों ने किया है। अत: आधुनिकीकरण की विशेषताओं का उल्लेख करते हुये इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है। साथ ही भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं भारतीय समाज पर उसके प्रभाव की विवेचना का वर्णनको प्रस्तुत इकाई में किया गया है।
* इस इकाई में हम आपको उत्तर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से भी अवगत करा रहे हैं, जिसको सामान्यतया वह युग कहा जाता है जो आधुनिकता के बाद आया है। जबकि वास्तव में देखा जाये तो यह वह विचारधारा है जो आधुनिकता के साथ जुड़े हुये सम्पूर्ण सामाजिक स्वरूपों को ध्वस्त करता है। इसीलिये उत्तर आधुनिकीकरण का उसकी विशेषताओं सहित अवधारणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।
* उत्तर आधुनिकीकरण को और अधिक स्पष्ट रूप में समझने के लिये आवश्यक है कि आधुनिकीकरण से इसके सम्बन्धों एवं दोनों में अन्तर को जान लिया जाये। इसके लिये हमने दोनों के मध्य सम्बन्ध एवं अन्तर पर भी प्रकाश डाला है। प्रस्तुत इकाई में हमने आपके लिये यथा स्थान अभ्यास प्रश्न भी दिये हैं। आप अभ्यास कार्य लगन से करें ताकि परीक्षा की तैयारी भली-भांति हो सके।

11.2 आधुनिकीकरण की अवधारणा

आधुनिकीकरण की अवधारणा मूलत: अंग्रेजी के आधुनिक शब्द से ही बनी है। आधुनिक का आशय है "गत्यात्मकता (Dynamism) और गत्यात्मकता का आशय है, परम्परावादी विचारों, मान्यताओं, आदर्शों आदि को छोड़कर नवीन विचारों, मूल्यों, समानता, प्रजातान्त्रिक,

वैज्ञानिक, स्वतन्त्रतावादी आदि आधुनिक मूल्यों को आत्मसात करना। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया विश्व संस्कृति का प्रसार है जो उन्न प्रविधि, ज्ञान, शिक्षा, विज्ञान, जीवन के बारे में विवेकपूर्ण दृष्टिकोण, सामाजिक सम्बन्धों के बारे में लौकिक विचाराधारा जन सम्बन्धी के लिये न्याय की भावना के आधार पर जिनका सम्बन्ध एक प्रकार के आधुनिक जीवन के लिये एक विकल्प के चयन से है, का चयन एवं इच्छाओं को समझना है।" (David Apter : The Policies of Modernization)

आधुनिकीकरण की अवधारणा की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती। विभिन्न समाज वैज्ञानिकों ने आधुनिकीकरण की अवधारणा के बारे में अलग-अलग परिभाषाएं प्रस्तुत की है। समाजशास्त्री डेनियल लर्नर के अनुसार मानसिक गतिशीलता आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषता है। इसी आधार पर उन्होंने वैज्ञानिक भावना, संचार साधनों में क्रान्ति, नगरीकरण में वृद्धि, शिक्षा का प्रसार, व्यापक आर्थिक साझेदारी अथवा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, राजनैतिक साझेदारी या मतदान व्यवहार एवं सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि उको आधुनिकीकरण की विशेषताएं माना है। (D. Lerner : The Passing of Traditional Society)

इजेन्टॉड ने आधुनिकीकरण की व्याख्या करते हुये लिखा है कि 'प्रगति' आधुनिकीकरण की प्रभुत्व विशेषता है। आधुनिकीकरण के द्वारा आर्थिक क्षेत्र में उच्च स्तर की तकनीकी का विकास होता है। आधुनिक समाजों में कार्यों एवं व्यवसायों में भर्ती व्यापक रूप से उपलब्धि के आधार पर की जाती है, जबकि परम्परागत समाजों में प्रदत्त (Ascriptive) पद्धति प्रभुत्व थी। राजनैतिक क्षेत्र में आधुनिकता, समाज के विस्तृत समूहों में सम्भावित सत्ता के निरन्तर विस्तार से परिभाषित की जाती है जो उनमें समस्त नागरिकों के पास पहुंचती है। इजेन्टॉड के अनुसार समस्त आधुनिक समाज कुछ स्तर तक प्रजातान्त्रिक है। यह प्रगति विशेषकर संचार के माध्यमों के विस्तार से सम्बन्धित है। (S.N. Eisenstadt : Modernization, Protest and change)

एम० मिचैल के अनुसार "आधुनिकीकरण से तात्पर्य तुलनात्मक प्रक्रियाओं का समूह एवं यान्त्रिकरण, औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं नौकरशाहीकरण से सम्मिलित परिवर्तन एवं इन प्रक्रियाओं का सामाजिक राजनैतिक एवं धार्मिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों से है।" (M. Mitchellll : Modernization and Social Structure)

प्रो० योगेन्द्र सिंह का कथन है कि "आधुनिकीकरण सांस्कृतिक क्रियाओं का एक विशेष रूप है जिसमें मुख्य रूप से सार्वभौमिक और विकासवादी लक्षणों का समावेश होता है; ये लक्षण अतिमानवता से सम्बन्धित होने के साथ ही सजातीयता और वैचारिक आधार से परे होते हैं।" (Yogendra Singh : Modernization of Indian Tradition, P. 61)

डॉ० सिंह के कथन से स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया परम्परा से पूर्णतया भिन्न नहीं होती क्योंकि परम्पराओं के अन्दर ही जब हम कुछ नये तत्वों को ग्रहण करने लगते हैं तभी इसे आधुनिकीकरण की दशा कहा जाता है।

प्रो० एम० एन० श्रीनिवास ने डेनियल लर्नर से सहमत होते हुये लिखा है, "किसी गैर पश्चिमी देश में एक पश्चिमी देश के प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले परिवर्तन का नाम ही आधुनिकीकरण है"। (M.N. Srinivas : Social Change in Modern India, P. 50)

प्रो० श्रीनिवास के कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे भारत में आधुनिकीकरण के स्थान पर पश्चिमीकरण के प्रत्यय को अधिक उपयुक्त मानते हैं।

आधुनिकीकरण की अवधारणात्मक व्याख्या से स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो किसी परम्परागत अथवा पिछड़े हुये समाज में प्रौद्योगिक विकास, धर्म निरपेक्षता, भौतिकता, स्वतन्त्रता एवं गतिशीलता जैसी विशेषताओं के प्रभाव में वृद्धि करने लगती है।

11.3 आधुनिकीकरण की विशेषताएँ

जैसा कि हमने प्रस्तुत इकाई की प्रस्तावना में लिखा है कि आधुनिकीकरण की अवधारणा को केवल कुछ परिभाषाओं के द्वारा ही स्पष्ट नहीं किया जा सकता। इसे समझने के लिये उन विशेषताओं अथवा आधारों को समझना आवश्यक है जिनका उल्लेख विभिन्न विद्वानों ने किया है। अत: आधुनिकीकरण की सर्वमान्य विशेषतायें निम्न प्रकार हैं;

11.3.1 औद्योगीकरण

औद्योगीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्रौद्योगिकी के ऊपर आधारित मशीनी पद्धतियों द्वारा अधिकाधिक मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन तथा बाजारों का विस्तार करके औद्योगिक व्यवस्था को आधुनिक किया जाता है। आधुनिकीकरण की आत्मा है औद्योगीकरण। आर्थिक समृद्धि, नवीन, आरामदायक एवं विलासिता पूर्ण वस्तुओं की जननी है—औद्योगीकरण एवं इन्हीं से जुड़ा हुआ है आधुनिकीकरण।

11.3.2 नगरीकरण

नगरीकरण का आशय है लोगों का गाँवों से शहरों की ओर पलायन। नगरीय जीवन में पश्चिमीकरण, औद्योगीकरण, राजनीतिकरण लौकिकीकरण एवं जनतन्त्रीकरण की आधुनिक प्रक्रियाओं का विकास तीव्र गति से होता है, जिसके परिणामस्वरूप परम्परावादी दृष्टिकोण समाप्त होने लगते हैं और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया क्रियाशील होने लगती है। परिवार, जाति, धर्म, शिक्षा, सरकार, प्रथायें, रीतियां आदि सामाजिक संस्थायें नगरीय जीवन से प्रभावित होकर आधुनिककृत होने लगती है। अत: नगरीकरण आधुनिकीकरण की प्रथम महत्वपूर्ण विशेषता कही जाती है।

11.3.3 बढ़ती हुयी गतिशीलता

लर्नर कहते हैं कि "एक गतिशील समाज वह है जिसमें तर्क और विवेक को प्रोत्साहन मिलता है तथा लोगों के व्यवहार उनकी अपनी रुचियों से प्रभावित होने लगते हैं। व्यक्ति यह विश्वास करने लगते हैं कि उनका भविष्य पूर्व-निर्धारित नहीं है बल्कि उनकी कुशलता पर निर्भर है।" (D. Lerner : The Passing of Traditional Society)

इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण की दशा में व्यक्तियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति प्रदत्त नहीं बल्कि अर्जित होती है। इसके फलस्वरूप एक खुली हुयी सामाजिक व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलने लगता है, जिसमें व्यक्ति अपनी कुशलता और योग्यता को बढ़ाकर अपनी प्रस्थिति को पहले से ऊंचा उठाने का प्रयत्न करने लगते हैं।

11.3.4 परिवर्तन में रुचि

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एक ऐसी स्थिति का बोध कराती है जिसमें परिवर्तन का स्वागत करना जीवन शैली का अंग बन जाता है। अधिकांश लोग व्यवहार के किसी विशेष ढंग

को इसलिये नहीं अपनाते कि ऐसा पीढ़ियों से होता चला आया है, बल्कि इसलिये अपनाते हैं कि वे उसे अपनी रुचि और आवश्यकता के अधिक अनुकूल समझते हैं। इस सन्दर्भ में प्रो० योगेन्द्र सिंह लिखते हैं कि आधुनिकीकरण से सम्बन्धित परिवर्तन का किसी वैचारिकी पर आधारित होना आवश्यक नहीं होता। इसका तात्पर्य है कि परिवर्तन को स्वीकार करना ही आधुनिकीकरण की विशेषता है, इन परिवर्तनों का सदैव उपयोगी या वैचारिक होना आवश्यक नहीं होता।

11.3.5 वैयक्तिक आकांक्षाओं को मान्यता

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत सामाजिक सामाजिक विकास के लिये वैयक्तिक आकांक्षाओं को राज्य और समाज द्वारा मान्यता दी जाती है। आधुनिकीकरण की दशा में लोगों का यह विश्वास दृढ़ होने लगता है कि व्यक्तिगत आकांक्षाओं को मान्यता देने से ही लोगों को अधिक परिश्रमी, योग्य और साहसी बनाया जा सकता है। हमारे व्यवहार जैसे–जैसे व्यक्तिगत आकांक्षाओं से प्रभावित होते हैं, समाज में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का महत्व बढ़ने लगता है। इससे लोगों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन होने के साथ ही ऐसे अविष्कार भी होने लगते हैं जो व्यक्तिगत कुशलताको बढ़ा सकें।

11.3.6 लौकिक मूल्यों की प्रधानता

आधुनिकीकरण परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसमें पारलौकिक मूल्यों की जगह लौकिक अथवा सांसारिक मूल्यों को अधिक महत्व होता है। इसके फलस्वरूप मोक्ष की जगह सांसारिक सफलताओं को अधिक महत्व मिलने लगता है, पवित्रता और अपवित्रता का सम्बन्ध स्वास्थ्य के तार्किक नियमों से हो जाता है, विभिन्न समूहों अथवा व्यक्तियों को जन्म के आधार पर ऊंचा अथा नीचा नहीं माना जाता तथा प्रथाओं और कर्मकाण्डों के पालन को वैयक्तिक विकास की आवश्यक शर्त के रूप में नहीं देखा जाता।

11.3.7 लोकतान्त्रिक मूल्यों में वृद्धि

आधुनिकीकरण का एक अन्य लक्षण जनसाधारण द्वारा लोकतान्त्रिक मूल्यों में विश्वास करना और उन्हें प्राप्त करने के लिये प्रयत्न करना है। सामाजिक समानता, धर्मनिरपेक्षत, विचारों की स्वतन्त्रता, मताधिकार का प्रयोग, महत्वपूर्ण विषयों पर जागरूकता तथा अपने अधिकारों के प्रति चेतना कुछ विशेष लोकतान्त्रिक मूल्य है। इन मूल्यों की दिशा की ओर होने वाला परिवर्तन ही आधुनिकीकरण है।

वास्तव में आधुनिकीकरण की उपरोक्त सभी विशेषतायें वे मानदण्ड हैं, जिसके आधार पर यह समझा जा सकता है किसी समाज में परम्परा का प्रभाव कितना कम हुआ है अथवा वह आधुनिकीकरण की दिशा में कितना आगे बढ़ सकता है। इससे पुन: यह स्पष्ट होंता है कि आधुनिकीकरण परिवर्तन का एक विशेष प्रतिमान है।

11.4 भारत में आधुनिकीकरण

गुणात्मक दृष्टिकोण से भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया निम्न प्रक्रियाओं से होकर गुजर रही है;

* आर्थिक संरचना स्तर पर, पुरानी पारिवारिक व सामुदायिक उपकरणीय अर्थव्यवस्था के स्थान पर यान्त्रिक औद्योगिक अर्थव्यवस्था को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह जजमानी प्रथा जैसी परम्परागत व्यवस्था को तोड़ने के लिये भी उत्तरदायी है।

राजनैतिक संरचना स्तर पर शक्ति संरचना में परिवर्तन लाया जा रहा है। अर्ध सामंती समूह-परक शक्ति संरचना का उन्मूलन करके और उसके स्थान पर जनतान्त्रिक शक्ति संरचना की स्थापना करके जो कि आवश्यक रूप से व्यक्तिपरक होती है।

सांस्कृतिक स्तर पर मूल्यों के क्षेत्र में पवित्र मूल्य व्यवस्था से धर्मनिरपेक्ष मूल्य व्यवस्था में परिवर्तन के द्वारा लाया जा रहा है।

सामाजिक संरचना स्तर पर, अर्जित प्रस्थिति भूमिका की अपेक्षा परम्परागत प्रदत्त भूमिका व प्रस्थिति में कमी आयी है।

योगेन्द्र सिंह का मत है कि भारत में आधुनिकीकरण की एक अनोखी विशेषता यह है कि परम्परागत संरचनामें परिवर्तन अपनाकर परिवर्तन लाया जा रहा है, न कि संरचना में विखण्डन के द्वारा।

(Yogendra Singh, Social Stratification and Social Chaiige in India)

भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का शुभारम्भ जो मूलत: ब्रिटिश काल से प्रारम्भ हुआ ा, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् अत्यन्त तीव्रगति से भारतीय जनजीवन पर छा गया। भारत के म्परागत रहन-सहन खान-पान, भाषा, वेशभूषा, त्योहार, परम्परायें, प्रथायें, जनरीतियों, ढ़ियों, लोकविश्वासों, ग्रामीण जीवन शैली, शिक्षा, व्यवहार-प्रतिमानों, जाति प्रथा, विवाह, युक्त परिवार, नातेदारी एवं सम्पूर्ण रूप से भारतीय जनजीवन के साथ-साथ, आर्थिक ामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक पक्षों में आधुनिकीकरण की छाप किसी न किसी रूप में खाई देती है। भारतीय जनजीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो जो आधुनिकीकरण की इस क्रिया से पूर्णत: अछूता रहा हो। अत: भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त ही लवती एवं तीव्र रही है।

1.5 आधुनिकीकरण का भारतीय समाज पर प्रभाव

भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के प्रभाव से उत्पन्न होने वाले परिवर्तनें का प्रमुखता साथ उल्लेख किया जा रहा है, जो निम्नलिखित हैं—

* भारत में प्रौद्योगिक विकास आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का सर्वप्रमुख परिणाम अथवा प्रभाव है, जिसके परिणामस्वरूप आज भारत अणुशक्ति के रूप में आत्मनिर्भर देश बन चुका है। साथ ही विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में वृद्धि से समाज में विभिन्न संरचनात्मक परिवर्तन भी हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त गतिशीलता में भी वृद्धि हुयी है जिसके फलस्वरूप नगरों में जनसंख्या लगातार बढ़ रही है।

* ग्रामीण हो अथवा नगरीय व्यक्ति का जीवन स्तर द्रुगामी गति से सुधर रहा है। यह उन मनोवृत्तियों का परिणाम है जो आधुनिकता की उपज है।

* आधुनिकता का एक स्पष्ट प्रभाव गाँवों में कृषि की नयी प्रविधियों का बढ़ता हुआ उपयोग है, जिससे गाँव और नगर के लोगों के मध्य भी दूरी कम हुयी है तथा ग्रामीणों का विस्तृ जगत से सम्बन्ध बढ़ने लगा है।

* आधुनिकता के प्रभाव से भारत में एक ऐसी सामाजिक चेतना उत्पन्न हुयी जो समानता, सामाजिक न्याय और स्वतन्त्रता के मूल्यों पर आधारित है। अर्थात् आधुनिकीकरण का सामाजिक संरचना पर सबसे स्पष्ट प्रभाव समाज सुधार की

प्रक्रिया के रूप में देखने को मिलता है।

* अन्तर्जातीय सम्बन्धों में परिवर्तन आधुनिकीकरण का एक महत्वपूर्ण प्रभाव है।
* आधुनिकीकरण का एक अन्य प्रभाव शिक्षा के प्रति लोगों की मनोवृत्तियों में व्यापक परिवर्तन होना भी है। व्यावसायिक और वैज्ञानिक शिक्षा इसका परिणाम हैं।
* लोकतान्त्रिक नेतृत्व का विकास एवं सामाजिक मूल्यों एवं मनोवृत्तियों में परिवर्तन भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप ही सम्भव हो सका है।

भारत में परम्परा से आधुनिकता की ओर होने वाले परिवर्तन से कुछ लोग यह समझने लगते हैं कि आधुनिकता में यदि इसी तरह वृद्धि होती रही तो सम्भवत: कुछ समय बाद हमारे समाज की मौलिक परम्परायें पूरी तरह समाप्त हो जायेगी। वास्तविकता यह है कि कोई समाज चाहे कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाये, वहां किसी न किसी रूप में परम्पराओं का प्रभाव भी सदैव बना रहता है। दूसरी बात यह है कि जिन्हें हम आधुनिकीकरण के लक्षण कहते हैं, प्रौद्योगिक और वैचारिक प्रगति के साथ भविष्य में उन्हीं को समाज की परम्पराओं के रूप में देखने की सम्भावनायें की जा सकती है। इस प्रकार परम्परा तथा आधुनिकीकरण परस्पर सम्बन्धित और तुलनात्मक दशायें हैं, जिनका अध्ययन निरन्तरता अथवा सातत्य के आधार पर ही किया जाना चाहिये।

11.6 उत्तर आधुनिकीकरण : एक अवधारणात्मक विवेचन

उत्तर आधुनिकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया हैं जो विभिन्न ज्ञान शाखाओं से तथ्यों और अवधारणाओं को लेकर भविष्य के समाज के बारे में एक एकीकृत विचारधारा प्रस्तुत करती है। यह भविष्य के समाज के बारे में सिद्धान्त बनाने का ऐसा प्रयास है जो दर्शनशास्त्र, साहित्यशास्त्र, कला, शिल्पकला आदि से बहुत कुछ ग्रहण कर अपने निश्चित संदर्श में वस्तुओं को व्यवस्थित करता है। यह भी सत्य है कि इस तथाकथित प्रक्रिया का आविर्भाव विकसित और पूँजीवादी देशों की जीवन पद्धति से जुटा हुआ है। इसका एकमात्र उद्देश्य आधुनिक समाज के जो भी तथ्य और सिद्धान्त हैं, उन्हें ध्वस्त करना है। रोचक बात यह है कि अभी यह संश्लेषणात्मक प्रक्रिया नहीं बन पायी है, किन्तु बनाने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। इसके विपरीत कुछ विचारकों का तर्क है कि अभी जब भविष्य का समाज बना ही नहीं तो उस पर आधारित उत्तर आधुनिकीकरण का प्रक्रिया किस भाँति बन पायेगी। बल्कि इन विचारकों का मानना है कि उत्तर आधुनिकीकरण एक प्रकार की अराजकता है जो समाज के सदस्यों को बेलगाम छोड़ देती है—जिसके मन में जैसा आये वैसा करें। इस समाज में औद्योगिक उत्पादन उपभोक्तावाद से जुड़ जाता है। मानवीय मूलरू और मानक ताक पर रख दिये जाते हैं और उत्तर आधुनिकीकरण का रोड़-रोलर रास्ते में जो भी आता है उसे रौंदता चला जाता है—ऐसा कुछ विचारकों का दृष्टिकोण है। उत्तर आधुनिकीकरण के आलोचक यह भी कहते हैं कि यह कोई प्रक्रिया नहीं, एक विचारधारा मात्र है। जिस भाँति रेडिकल समाजशास्त्र एक विचारधारा है, ठीक कुछ इसी तरह उत्तर आधुनिकीकरण भी एक विचारधारा है। सच में देखा जाये तो आज समाज विज्ञानों और दिन-प्रतिदिन के संवाद में "उत्तर आधुनिकीकरण" फैशन के रूप में लोकप्रिय होता रहा है। यदि किसी समाज वैज्ञानिक को या इस अर्थ में किसी कलाकार, शिल्पकार या संगीतकार को अव्वल दर्जे का स्थापित करना है तो उसे किसी न किसी प्रकार अपनी अभिव्यक्ति उत्तर आधुनिकता में करनी होगी। एक प्रकार से देखा जाये तो उत्तर-आधुनिकीकरण शब्द का प्रयाग ही व्यक्ति को

आधुनिकतम बना देता है जो आधुनिक से भी कहीं आगे की स्थिति है। एक प्रकार से उत्तर-आधुनिकीकरण तो उस रंग की तरह है जिसे किसी भी वस्तु पर पोता जा सकता है। वस्तु कैसी भी हो—घटिया या बढ़िया, उत्तर आधुनिकता के रंग को लगा लीजिये, कहते हैं, वस्तु निखर जायेगी।

विचारकों का कहना है कि उत्तर आधुनिकीकरण एक संश्लेषणात्मक प्रक्रिया/ सिद्धान्त है, जिसका प्रतिपादन समाजशास्त्र में कियाग या है। इस सम्पूर्ण विवेचन में केन्द्रीय समस्या यह है कि अभी तक विचारक उत्तर आधुनिक समाज की कल्पना करते हैं, कि उसकी संरचना क्या है? यह संरचना अभी बनी नहीं है, बनने की प्रक्रिया में है, जिसे उत्तर आधुनिकीकरण कहते हैं। यह तो आने वाले वर्षों में ही ज्ञात होगा कि भविष्य में इस समाज की संरचना कैसी होगी। ऐसी कठिनाई में हाल में यही कहा जा सकता है कि उत्तर आधुनिकीकरण की परिभाषा अपने संक्रांति (Transitionai) युग में है।

11.6.1 उत्तर आधुनिकीकरण की कुञ्जी

जब कभी उत्तर-आधुनिकीकरण की चर्चा की जाती है तब सम्बन्धित शब्दों के एक परिवार का प्रयोग बराबर किया जाता है। कई बार तो यह शब्द पर्यायवाची रूप में काम में लिये जाते हैं। इस तरह मनमाना प्रयोग शब्दों के अर्थ को धुँधला बना देता है। इससे पदों की सम्पूर्ण वैज्ञानिकता गड्ड-मड्ड हो जाती है। ऐसी अवस्था में उत्तर आधुनिकीकरण से सम्बन्धित कुछ शब्दों का अवधारणात्मक स्वरूप स्पष्ट होना चाहिये। इस सम्बन्ध में चार शब्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

* आधुनिकता * उत्तर आधुनिकता * आधुनिकीकरण तथा * आधुनकितावाद

11.6.1.1 आधुनिकता (Modernity)

यूरोप में लगभग 17वीं-18वीं शताब्दी में पुनर्जागरण आया। इस युग में औद्योगीकरण का सूत्रपात हुआ। आविष्कारों ने जहाँ तकनीकी विकास को आगे बढ़ाया, वहीं दर्शन, शिक्षा और बौद्धिक क्षेत्र में वैज्ञानिकता और तर्क शक्ति का विकास हुआ। जर्मन समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों में, जो उसकाल में बड़ा प्रभावी था, आधुनिकता का प्रयोग किया। इस आधुनिकता ने आर्थिक तथा प्रशासकीय विवेकीकरण को विकसित किया। तथ्य को मूल्य से पृथक् करके तथा आचर और सैद्धान्तिक क्षेत्रों को अलग करके देखा जाने लगा। इसी युग में वेबर, टॉनीज तथा सीमेल ने आधुनकि पूँजीवादी औद्योगिक राज्य की व्याख्या प्रस्तुत की। वास्तव में इस शताब्दी में आधुनिकता की व्याख्या पुराकाल के सन्दर्भ में की जाने लगी। इसे पुनर्जागरण के साथ जोड़ दिया गया। जब से आधुनिकता का आविर्भाव हुआ, सम्पूर्ण यूरेप में इसकी व्याख्या नवीन सामाजिक-आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्थाओं के साथ जोड़ दी यगी।

11.6.1.2 उत्तर आधुनिकता (Post Modernity)

उत्तर आधुनिकतावाद की सामान्य परिभाषा तो यह है कि यह वह युग है जो आधुनकिता के बाद में आया। वास्तव में उत्तर आधुनिकता की विाचरधारा वह है जो आधुनिकता के साथ जुड़े हुये सम्पूर्ण सामाजिक स्वरूपों को ध्वस्त करता है। एक प्रकार से उत्तर आधुनिकता, आधुनिकता को नकारती है, अस्वीकार करती है।

कुछ उत्तर आधुनिकतावादी विचारक उत्तर आधुनिकता के इस तरह के अर्थ को स्वीकार नहीं करते। वे यह मानकर चलते हैं कि यह ऐसा आन्दोलन है जिसकी छलांग उत्तर औद्योगिक युग की ओर है। उत्तर आधुनिकता की व्याख्या के सन्दर्भ में ढेर सारे प्रश्न उठते हैं। क्या उत्तर आधुनिकता को आधुनिकता का एक हिस्सा समझा जाना चाहिये? क्या यह आधुनिकता की

निरन्तरता है या उससे पूर्णत: पृथक्? क्या यह केवल भौतिक परिवर्तन है या इसका संकेत एक विशेष मानसिकता की ओर है?

वास्तव में हमें उत्तर-आधुनिकता की व्याख्या लीक से हटकर करनी होगी। ऐसा लगता है कि उत्तर आधुनिकता व्यक्ति तथा सामाजिक प्रकरणों के विभिन्न स्वरूपों और आयामों पर जोर देती है। अब यह माना जाने लगता है कि वे विषय जिन्हें स्वायत्त समझते थे, अब अपनी प्रकृति में एकाधिक या बहुआयामी बन गये हैं। उत्तर-आधुनिकता, अनिश्चितता की दहलीज पर खड़ी रहती है। इसका बहुत बड़ा तर्क यह है कि विविधता का अपना एक निश्चित स्थान है। इससे आगे उत्तर-आधुनिकतावादियों का मानना यह है कि औद्योगिक तकनीकी द्वारा उत्पादन में वृद्धि तो होही है लेकिन इस सम्पूर्ण वृद्धि को सार्वभौमिक उपभोक्तावाद खा जाता है। इस विचारधारा के अन्तर्गत पवित्र विचारों और आचारों का जीवन में कोई स्थान नहीं। प्रत्येक व्यक्ति इसी सिद्धान्त पर काम करता है कि जीवन में अधिक से अधिक आनन्द मिले, मौज-मस्ती मिले।

उत्तर-आधुनिकता विविधता की एकता पर खड़ी है, वैज्ञानिक तकनीकी ने जो सामाज़िक आर्थिक परिवर्तन पैदा किये हैं; उसमें जो नयी खोज है और नवीनीकरण, जनसंख्या का स्थानान्तरण तथा राष्ट्रीय राज्यों का संगठन हुआ है, यह सब उत्तर आधुनिकता के परिचायक हैं। इस प्रकार उत्तर आधुनिकता का शक्ति स्रोत संसार का पूँजीवादी बाजार है।

11.6.1.3 आधुनिकतावाद (Modernism)

बीसवीं शताब्दी के अन्त में कला के क्षेत्र में एक आन्दोलन चला, जिसने नये सांस्कृतिक मूल्यों का सूत्रपात किया। वास्तव में आधुनिकतावाद का विकास प्राचीनवाद के विरोध में हुआ। आधुनिकतावाद प्रयोगों पर जोकर देता है। उसका उद्देश्य सतही दिखावे के पीछे जो आन्तरिक सत्य है, उसकी खोज करना है। आधुनिकतावाद के लक्षणों के अन्तर्गत :

* इसमें आचार शिव और सुन्दरम् के तत्व होते हैं।
* यह अवधारणा भ्रमपूर्ण और अनिश्चित तत्वों की खोज करती है और बिना किसी लगाव के वास्तविकता की प्रकृति को समझती है।
* इसमें एकीकृत व्यक्तित्व को नकारा गया है।

11.6.1.4 आधुनिकीकरण

आधुनिकता से जुड़ी हुयी अवधारणाओं में चौथी अवधारणा—आधुनिकीकरण की है। सामान्यतया आधुनिकीकरण से उन प्रक्रियाओं और अवस्थाओं को जोड़ा जाता है जो औद्योगीकरण से सम्बन्धित है और जिसे हम आधुनिकीकरण करते हैं। उसमें विविधता में एकता होती है। यह विविधता वैज्ञानिक और तकनीकी खोजों के परिणाम स्वरूप सामाजिक तथा आर्थिक परिणामों में देखने को मिलती है।

हमारे देश में पंचवर्षीय योजनाओं के परिणाम स्वरूप शहरी व ग्रामीण समाज में परिवर्तन आये हैं—स्तरीकरण तीव्र हुआ है, जाति व्यवस्था में उतार-चढ़ाव आये हैं। इस सबको हम आधुनिकीकरण की कोटि में रखेंगे। यदि आधुनिकतावाद समाज की एक दशा या स्थिति है, तो इसे गतिशील बनाये रखने वाली प्रक्रिया आधुनिकीकरण है।

आधुनिकीकरणवाद से जुड़ी ये चारों अवधारणायें किसी भी अर्थ में पर्यायवाची नहीं हैं। इन्हें मनमाने ढंग से प्रयोग में लाना इनको वैज्ञानिक अर्थ से वंचित करना है।

1.6.2 उत्तर आधुनिक समाज की विशेषतायें

उत्तर आधुनिक समाज की कतिपय विशेषतायें निम्न प्रकार हैं—

* उत्तर-आधुनिक समाज की प्रकृति विषयक सीमाओं का खण्डन करना है।
* उत्तर-आधुनिक समाज से सम्बन्धित प्रचलित रचनायें केवल मात्र शब्दाडम्बर एवं अलंकारिक हैं।
* उत्तर-आधुनिक समाज में मार्क्सवाद और प्रकार्यात्मकवाद का विरोधी है।
* ज्ञान का रूपान्तरण करना उत्तर आधुनिक समाज की एक प्रमुख विशेषता है।
* उत्तर आधुनिक समाज वृत्तान्त आधारित ज्ञान को अस्वीकार करता है।
* उत्तर आधुनिक समाज तकनीकी रहित वैज्ञानिक ज्ञान का भी विरोधी है।
* उत्तर-आधुनिक समाज में वाणिज्यिक ज्ञानकी प्रधानता है।
* आधुनिक समाज की कला को उत्तर-आधुनिकतावादी बुर्जुआ कला मानते हुए उसे अस्वीकृत करते हैं।

र आधुनिक समाज की विशेषताओं से ऐसा स्पष्ट आभास होता है कि उत्तर-आधुनिक धारणा आज भी अपनी अस्पष्ट अवस्था में है। इसे अधिकांश लोग समझ नहीं पाये हैं। ा लगता है कि उत्तर-आधुनिकतावादी विचारधारा आधुनिकतावादी विचारधारा की क्रिया स्वरूप पैदा हुयी है। शायद इसका उद्देश्य उभरती हुयी नई संस्कृति के तत्वों को ने परिवेश में लाना है। 1950 और 1960 के दशक में जो नई सामाजिक व आर्थिक वस्था आयी उसका समावेश उत्तर आधुनिक समाज में किया गया है। इस सन्दर्भ में यह भी ा जाना चाहिये कि कुछ उत्तर संरचनावादी जैसे फोकार्ट, देरिदा और ल्योटाड भी वस्तुत: र आधुनिकतावादी हैं।

.6.2 आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण में अन्तर

र-आधुनिकवादियों ने उत्तर-आधुनिक समाज की जो छवि बनायी है, वह आधुनिक समाज भिन्न है। इन दोनों समाजें के अन्तर को बताने वाले तत्वों की तालिका बहुत लंम्बी है। ्य बात यह है कि जहां आधुनिकता को विवेकशीलता से जोड़ा जाता है, वहीं सामान्यतया समझा जाता है कि उत्तर-आधुनिकतावाद अविवेकी है तथा उसमें लचीलापन अधिक है। धुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं उत्तर आधुनिकीकरण के मध्य निम्नांकित अन्तर हैं—

* आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में वैज्ञानिक प्रगति को महत्व दिया जाता है जबकि उत्तर आधुनिकीकरण में मानवतावाद को।
* आधुनिकीकरण में तर्क को प्राथमिकता दी गयी है जबकि उत्तर आधुनिकीकरण में भावना को।
* आधुनिकीकरण की प्रक्रिया ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा को महत्व दिया है जबकि इसकी तुलना में उत्तर आधुनिकता सहयोग को महत्व देती है।
* आधुनिकीकरण में विशेषीकरण को महत्व दिया जाता है जबकि उत्तर आधुनिकीकरण में सम्पूर्णतावाद को।

* आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में व्यक्तिवाद पर बल दिया जाता है जबकि उत्तर-आधुनिकता में सामूहिकता समाहित है।

स्पष्टत: देखा जाये तो उत्तर-आधुनिकता, आधुनिक समाज व्यवस्था को तोड़ती है, उसे ध्वस्त करती है, नकारती है। उत्तर आधुनिकता विविधता को बढ़ावा देती है। यह जीवन में 'आनन्द तथा खाओ-पीओ और मौज करो', पर बल देती है।

बोध प्रश्न

1. 'प्रगति' को आधुनिकीकरण की प्रभुत्व विशेषता किसने बताया है? (सही उत्तर के सामने सही ( ) का निशान लगायें)।

   (अ) योगेन्द्र सिंह ( )

   (ब) एम० एन० श्रीनिवास ( )

   (स) इजेन्टॉउ ( )

   (द) एम० मिचैल ( )

2. आधुनिकीकरण क्या है? (उत्तर दस पंक्तियों में दें)।

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

3. "परम्परा संरचना में परिवर्तन अपनाकर परिवर्तन लाया जा रहा है न कि संरचना में विखण्डन के द्वारा" आधुनिकीकरण की विशेषता के सम्बन्ध में यह मत किसने प्रस्तुत किया? (सही उत्तर के सामने सही ( ) का निशान लगायें)।

   (अ) योगेन्द्र सिंह ( )

   (ब) श्रीनिवास ( )

   (स) घुरिये ( )

   (द) अरस्तु ( )

4. उत्तर आधुनिकीकरण क्या है? उत्तर पाँच पंक्तियों में दें :

   .....

   .....

.....

.....

.....

5. आधुनिकतावाद को स्पष्ट कीजिए? (उत्तर तीन पंक्तियों में दे)

.....

.....

.....

6. आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण में अन्तर स्पष्ट करें? (उत्तर 150 शब्दों में दें)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.7 सारांश

* इस इकाई के अन्तर्गत आपने आधुनिकीकरण एवं उत्तर-आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को विवेचनात्मक जानकारी प्राप्त की। अब आप आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण की अवधारणा, विशेषताओं, भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तथा इस प्रक्रिया का भारतीय समाज पर प्रभाव एवं आधुनिकीकरण तथा उत्तर आधुनिकीकरण में अन्तर से अवगत हो गये हैं।
* आधुनिकीकरण की प्रमुख विशेषतायें हैं; औद्योगीकरण, नगरीकरण, बढ़ती हुयी गतिशीलता, परिवर्तन में रुचि, वैयक्तिक आकांक्षाओं को मान्यता, लौकिक मूल्यों की प्रधानता तथा लोकतान्त्रिक मूल्यों में वृद्धि। पश्चिमीकरण की ये सभी विशेषताएँ सर्वमान्य विशेषतायें हैं।

* भारत मे आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, आर्थिक संरचना स्तर पर, राजनैतिक संरचना स्तर पर, सांस्कृतिक स्तर पर, सामाजिक संरचना स्तर पर, जैसी प्रक्रियाओं से होकर गुजर रही है, जिसने भारतीय समाज को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया है।

* आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से भारतीय समाज का कोई भी पक्ष प्रभावित हुये बगैर नहीं रह सकता है, जिसके फलस्वरूप नगर और गाँव के बीच की दूरी कम हुयी है, समाज सुधार की प्रक्रिया में तेजी आयी है, अन्तर्जातीय सम्बन्धों में परिवर्तन, व्यावसायिक एवं वैज्ञानिक शिक्षा का प्रसार, लोकतान्त्रिक नेतृत्व आदि का विकास सम्भव हो सका है।

* अभी तक उत्तर-आधुनिक समाज की संरचना का निर्माण नहीं हो सका है, वह बनने की प्रक्रिया में है, बनने की यही प्रक्रिया उत्तर आधुनिकीकरण हैं, जिसका सही खाका भविष्य के गर्भ में है अर्थात् वह अपने संक्रान्ति युग में है।

* उत्तर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में चार तत्व, 1-आधुनिकता, 2-उत्तर आधुनिकता 3-आधुनकितावाद 4-आधुनिकीकरण अपनी अहम भूमिका निभाते हैं। आधुनिकीकरण से जुड़ी ये चारों अवधारणायें किसी भी अर्थ में पर्यायवाची नहीं है।

* आधुनिकीकरण एवं उत्तर आधुनिकीकरण के मध्य यद्यपि अन्तर बहुत विस्तृत है किन्तु फिर भी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में विवेकशीलता तथा उत्तर आधुनिकीकरण की प्रहिक्रया में अविवेकशीलता का पुट सम्मिलित है।

11.8 प्रश्नोत्तर

बोध प्रन

1. देखें 1.1
2. देखें 1.2
3. देखें 1.4
4. देखें 1.6
5. देखें 1.6.1.3
6. देखें 1.6.2

अभ्यास

अभ्यास सम्बन्धित उत्तर इकाई पढ़कर स्वयं लिखें और परामर्शक को दिखायें।

इकाई–12 आधुनिकीकरण एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 आधुनिकीकरण की अवधारणा
2.3 विकास की अवधारणा एवं उसके विभिन्न आयाम
2.4 आधुनिकीकरण एवं विकास
12.4.1 आधुनिकीकरण एवं प्रौद्योगिकी विकास
12.4.2 आधुनिकीकरण एवं जीवन स्तर में विकास
12.4.3 आधुनिकीकरण एवं कृषि का विकास
12.4.4 आधुनिकीकरण एवं समाज सुधार सम्बन्धी विकास
12.4.5 आधुनिकीकरण एवं अन्तर्जातीय सम्बन्धों में विकास
12.4.6 आधुनिकीकरण एवं शिक्षा के क्षेत्र में विकास
12.4.7 आधुनिकीकरण एवं आर्थिक विकास
12.4.8 आधुनिकीकरण एवं लोकतांत्रिक नेतृत्व का विकास
12.4.9 आधुनिकीकरण एवं धर्मनिरपेक्षता का विकास
12.4.10 आधुनिकीकरण एवं मानवतावाद का विकास
12.4.11 आधुनिकीकरण एवं सामाजिक मूल्यों तथा मनोवृत्तियों का विकास
2.5 सारांश
2.6 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची
2.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई-4 के अन्तर्गत आप आधुनिकीकरण की प्रक्रिया एवं उसके फलस्वरूप म्बन्धित विभिन्न विकास क्षेत्रों में परिचित हो सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप :

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को समझ सकेंगे;

आधुनिकीकरण एवं विकास जैसे प्रमुख बिन्दुओं पर प्रकाश डाल सकेंगे;

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में विकास का उल्लेख कर सकेंगे;

2.1 प्रस्तावना

तुत इकाई आधुनिकीकरण एवं विकास जैसे प्रमुख विशय के विवेचनात्मक अध्ययन से म्बन्धित है। इस इकाई के अन्तर्गत आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को विकास के विभिन्न लुओं से जोड़कर परिचित कराया गया है। सर्वप्रथम आधुनिकीकरण एवं विकास की

प्रक्रियाओं को स्पष्ट किया गया है, ताकि आप सम्पूर्ण विवेचना को सरलता के साथ समझ सकें। जहाँ तक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप विकास का प्रश्न है तो अनेक विद्वान इसको केवल औद्योगिक एवं आर्थिक विकास से ही जोड़कर देखते हं जबकि यह प्रक्रिया विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास के लिये उत्तरदायी हैं, जिसका हमने प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत विवेचनात्मक उल्लेख किया है। एक अच्छे विद्यार्थी के भीतर यह गुण अवश्य ही होना चाहिये कि वह जिस विषय का अध्ययन कर रहा है, उसे उस विषय से जुड़े प्रत्येक पहलू का ज्ञान अवश्य ही हो। इसी दृष्टि से इस इकाई में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

यद्यपि इस इकाई मं हम आपको आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ उसके फलस्वरूप विकास जैसे महत्वपूर्ण बिन्दु से अवगत करा रहे हैं, इसलिये हमने इस इकाई में अधिकांशत: उदाहरणों का सहारा लिया है और आपके लिये यथास्थान अभ्यास प्रश्न भी दिये हैं। आप अभ्यास कार्य मेहनत व लगन से करें। इससे आपकी परीक्षा सम्बन्धी तैयारी में द्रुतगामी वृद्धि होगी।

12.2 आधुनिकीकरण की अवधारणा

वर्तमान समाज परिवर्तन के ऐसे दौर से गुजर रहा है जिसमें अनेक ऐसी व्यवस्थाओं, सामाजिक मूल्यों और व्यवहार के तरीकों को प्रोत्साहन मिलने लगा है जो उनकी परम्परागत विशेषताओं से काफी भिन्न हैं। यही कारण है कि अनेक समाजशास्त्री इस पक्ष में है कि किसी समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने के लिये यह देखा जाये कि उस समाज में आधुनिकीकरण की विशेषतायें कितनी बढ़ी हैं अथवा आधुनिकीकरण के साथ परम्पराओं का प्रभाव किस सीमा तक बना हुआ है? इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि आधुनिकीकरण के अर्थ को स्पष्ट करके इसे परम्परा की तुलना में समझने का प्रयत्न किया जाये। अपने दैनिक जीवन में हम ''आधुनिक'' अथवा ''आधुनिकीकरण'' शब्द का प्रयोग बहुत प्रचुरता के साथ करते हैं। आधुनिक शिक्षा, आधुनिक ज्ञान, आधुनिक संस्कृति अथवा आधुनिक मूल्य ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग हम किसी भी उस दशा के लिये कर देते हैं जो अपने परम्परागत रूप से भिन्न होती है। अनेक व्यक्ति यह समझते हैं कि पश्चिमी देशों की तरह वेशभूषा खानपान, सामाजिक व्यवहार तथा व्यावसायिक क्रियायें वे विशेषतायें हैं जिन्हें आधुनिकीकरण कहा जा सकता है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से आधुनिकीकरण का अर्थ ऐसे सामानय अर्थ से बहुत भिन्न है। सरल शब्दों में कहा जा सकता है कि ''आधुनिकीकरण एक ऐसी अवधारणा है जिससे कुछ परिवर्तनशील मूल्यों कासमावेश होता है। यह परिवर्तनशील मूल्य विकास, सार्वभौमिकता तथा तार्किकता की दिशा में होते हैं।''

एस० एन० आइजनस्टीड के अनुसार, ''ऐतिहासिक रूप से आधुनिकीकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो पश्चिमी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में विकसित होने वाले सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्थाओं की दिशा में देखने को मिलती है।'' इससे स्पष्ट होता है कि यूरोप तथा अमेरिका में विकसित होने वाले सामाजिक मूल्यों, उत्पादन के तरीकों अथवा राजनीतिक व्यवस्था की दिशा में जब सामाजिक परिवर्तन होने लगते हैं, तब परिवर्तन की इसी प्रक्रिया को हम आधुनिकीकरण कहते हैं।

डॉ० योगेन्द्र सिंह ने अपनी पुस्तक "Modenization of Indian Tradition" में लिखा है, ''आधुनिकीकरण सांस्कृतिक क्रियाओं का एक विशेष रूप है जिसमें मुख्य रूप से

ार्वभौमिक और विकासवादी लक्षणों का समावेश होता है। ये लक्षण अतिमानवता से म्बन्धित होने के साथ ही सजातीयता और वैचारिक आधार से परे होते हैं। (योगेन्द्र सिंह, ॉडर्नाइजेशन ऑफ इण्डियन ट्रेडिशन, पेज-61)

म० एन० श्रीनिवास, लिखते हैं, ''किसी गैर पश्चिमी देश में एक पश्चिमी देश के प्रत्यख थवा अप्रत्यक्ष प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले परिवर्तन का नाम ही आधुनिकीकरण ।'' (एम० एन० श्रीनिवास, सोशन चेंज इन मॉडर्न इण्डिया, पेज-50)

ी निवास ने इस प्रभाव का तर्कपूर्ण लक्ष्यों के रूप में स्पष्ट किया है। उनके अनुसार जब माज में ऐसे लक्ष्यों को महत्व दिया जाने लगता है जो तर्क और विकास से सम्बन्धित होते , तब इस दशा को आधुनिकीकरण कहा जाता है।

ष्ट होता है कि आधुनिकीकरण परिवर्तन की वह प्रक्रिया है जो किसी परम्परागत अथवा पिछड़े हुये समाज में प्रौद्योगिक विकास, धर्मनिरपेक्षता, लौकिकता, स्वतंत्रता एवं गतिशीलता सी विशेषताओं के प्रभाव में वृद्धि करने लगती है।

12.3 विकास की अवधारणा एवं उसके विभिन्न आयाम

विकास किसी अपेक्षित दिशा में होने वाले परिवर्तन को कहते हैं। 'विकास'' शब्द परिवर्तन की उस गति को दर्शाता है जिसके अन्तर्गत एक अवस्था दूसरी अवस्था का स्थान लेती हुई अपेक्षित दिशा में आगे बढ़ती जाती है। इसमें एक के बाद दूसरी नई अवस्था या अवस्थायें सामने आती जाती है। इस प्रकार अपेक्षित दिशा में नियोजित परिवर्तन को ही विकास कहा जाता है। यह बात सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में भी लागू होती है। सामाजिक जीवन स्थिर या जड़ नहीं है, इसमें अपनी एक गति होती है और इसी गति के कारण वह समय के साथ-साथ आगे बढ़ता जाता है और सामाजिक जीवन में एक के बाद दूसरी नई अवस्था या अवस्थायें प्रगट होती है।

परिवर्तन मूल्य निरपेक्ष अवधारणा है जबकि ''विकास'' मूल्यपरक अवधारणा है ओरवह इस अर्थ में कि विकास में हम एक निश्चित प्रकार के परिवर्तन की अपेक्षा या आकांक्षा करते हतैं और उसी आकांक्षा के अनुरुप परिवर्तन की दिशा को नियोजित करते हैं।

हॉबहाउस लिखते हैं, ''विकास से मेरा तात्पर्य किसी भी प्रकार की प्रगति से है जिससे मानव सम्बन्धित है अथवा तार्किक ढंगसे वे उसे सम्बद्ध करते हैं।'' **(सोशल डेवलेपमेंट, अध्याय-4)**

एक महत्वपूर्ण नवीन गोष्ठी ''दि चेलेन्ज ऑफ डेवलपमेंट'' में विकास शब्द का प्रयोग कम आय वाले देशों में हो रहे औद्योगीकरण और उसकी तुलना पश्चिमी देशों में हो रहे औद्योगीकरण से करने के सन्दर्भ में किया है।

प्राय: देखने में आता है कि आधुनिक समय में ''विकास'' शब्द का प्रयोग अधिकांशत: आर्थिक अर्थों में किया गया है। प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि, श्रम विभाजन एवं विशेषीकरण में वृद्धि, बाजारों का विसतार, उत्पादन एवं उद्योगों में वृद्धि, पूंजी निर्माण में वृद्धि, प्राकृतिक स्त्रोतों का अधिकाधिक दोहन, मानवीय ज्ञान द्वारा प्रकृति पर अधिकाधिक नियन्त्रण आर्थिक विकास को इंगित करते हैं, किन्तु विकास शब्द के प्रयोग को आर्थिक एवं औद्योगिक क्षेत्र में होने वाले कुछ विशिष्ट परिवर्तनों तक ही सीमित कर देना उचित नहीं है। यह धर्म प्रथाओं, परिवार, राजनीति, संस्कृति आदि अनेक क्षेत्रों में प्रयुक्त किया जा सकता है। सामाजिक विकास में सामाजिक सम्बन्धों का विस्तार होता है, प्राचीन सामाजिक संरचनाओं, मूल्यों, मनोवृत्तियों

एवं विचारों में परिवर्तन एवं वृद्धि होती है। इस प्रकार सामाजिक विकास में व्यक्ति की स्वतंत्रता, पारस्परिक सहयोग एवं नैतिकता की भावना तथा समुदाय की आय एवं सम्पत्ति में वृद्धि होती है। अत: आर्थिक विकास सामाजिक विकास काही एक अंग है, जिसे विभिन्न आधारों पर मापना सरल है।

स्पष्ट है कि "विकास समाज का विकासान्मुख परिवर्तन है जिसमें निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये नियंत्रित एवं जागरूक प्रयत्न किये जाते हैं।

जैसा कि स्पष्ट हो ही चुका है कि विकास एक व्यापक अवधारणा है तथा इसके अन्तर्गत न केवल आर्थिक अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक क्षेत्र में होने वाले अपेक्षित परिवर्तनों की प्रक्रिया को सम्मिलित किया जाता है। आज इस सत्य को स्वीकार किया जाता है कि केवल आर्थिक विकास कर लेने से ही आम जनता के जीवन को खुशहाल नहीं बनाया जा सकता। इसके लिये उनमें जीवन के सभी पक्षों का समुचित व संतुलित विकास आवश्यक है। इसीलिये अब समाजशास्त्रियों के अनुसार विकास के विभिन्न आयामों में निम्न बातों का होना आवश्यक हैं।

* आम जनता की रोटी, कपड़ा और मकान की मौलिक आवश्यकताओं को समुचित पूर्ति।
* शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के उत्तम स्तर को बनाये रखने के लिये आवश्यक पोषक आहार, प्रदूषण रहित वातावरण, चिकित्सा आदि की पर्याप्त सुविधायें।
* योग्यता व कार्यकुशलता के आधार पर, न कि जाति, प्रजाति, धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर रोजगार के पर्याप्त अवसर तथा रहन-सहन का ऊँचा स्तर।
* शिक्षा का समुचित विस्तार जिसके अन्तर्गत वैज्ञानिक शिक्षा, पेशेवर व नैतिक शिक्षा का समावेश ताकि समाज में सृजनात्मक क्षमता का विकास, शोध आविष्कार आदि सम्भव हो सके।
* बिजली, परिशुद्ध पानी, परिवहन और संचार जैसी बुनियादी सुविधायें सबके लिये सुलभ होना।
* समाज के पिछड़े व शोषित वर्गों, किसानों, महिलाओं, बच्चों, वृद्धों व विकलांगों के विकास के लिये आवश्यक सुविधायें उपलब्ध होना।
* विभिन्न आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक विषमताओं को दूर करना ताकि समाज में समता लाते हुये सामाजिक बदलाव सम्भव हो सके।
* विदेशी निर्भरता कम करके राष्ट्र को आत्म निर्भर बनने के सचेत प्रयत्न करना।
* राष्ट्र के स्वाभिमान, अस्मिता व राष्ट्रीय पहचान बनाये रखना।

12.4 आधुनिकीकरण एवं विकास

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अनुसरण सामान्यत: आर्थिक विकास के सन्दर्भ में किया जाता है। आर्थिक विकास की दृष्टि से आज संसार विकसित एवं अल्प विकसित देशों में बंटा हुआ है। यद्यपि इन राष्ट्रों में विकास के स्तर की दृष्टि से परस्पर बहुत अधिक अन्तर पाये जाते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) जापान, ब्रिटेन, कनाडा, रूस आदि कुछ ऐसे राष्ट्र हैं जिन्हें विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में रखा जाता है और जिनमें प्रति व्यक्ति आय का स्तर काफी

ऊँचा है और इस स्तर को ऊँचा रखने में आधुनिकीकरण की भूमिका उल्लेखनीय है। लेकिन आर्थिक विकास की आधुनिकीकरण का परिणाम नहीं है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप समाज एवं संस्कृति, राजनीति एवं प्रशासन जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में भी विभिन्न प्रकार के परिवर्तन/विकास हुये हैं जिनका उल्लेख निम्न प्रकार से है।

12.4.1 आधुनिकीकरण एवं प्रोद्योगिकी विकास

आधुनिकीकरण का सर्वप्रमुख परिणाम प्रोद्योगिक विकास के रूप में देखने को मिलता है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है यह सच है कि प्रोद्योगिक विकास की प्रक्रिया ब्रिटिश शासन के दौरान ही आरम्भ हो गयी थी लेकिन स्वतन्त्रता के बाद आर्थिक नियोजन के द्वारा इसमें बहुत अधिक वृद्धि हुई। आज भारत में सूती कपड़ों, रासायनिक खादों, सीमेंट, जूट, भारी मशीनों, बिजली के उपकरणों, दवाइयों तथा पेट्रोलियम पदार्थों के उत्पादन के बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो चुके हैं। अणु शक्ति के क्षेत्र में भी भारत एक आत्मनिर्भर देश बन चुका है। प्रोद्योगिकी विकास के साथ विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में भी इतनी वृद्धि हुई है कि हमारे समाज में अनेक संरचनात्मक परिवर्तन होने लगे। औद्योगिक विकास ने नगरीकरण की प्रक्रिया में भी वृद्धि की। आधुनिकीकरण काएक अन्य प्रभाव गतिशीलता में वृद्धि होना भी है। इसी के फलस्वरूप नगरीय जनसंख्या के प्रतिशत में लगातार वृद्धि हो रही है।

12.4.2 आधुनिकीकरण एवं जीवन स्तर में विकास

भारत में भूमि सुधारों तथा विभिन्न विकिास कार्यक्रमों के फलस्वरूप जीवन के सभी पक्षों में आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिला। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि उत्पादन बढ़ने से प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई। नगरीय क्षेत्रों में नई प्रौद्योगिकी पर आधारित वस्तुओं का अधिकाधिक प्रयोग किया जाने लगा। कुछ समय पहले तक समाज के जो दुर्बल वर्ग जीवन की अनिवार्य सुविधायें पाने से भी वंचित थे, उनमें भी चीनी और स्टील के बर्तनों का उपयोग बढ़ने लगा है। उसकी वेशभूषा तथा खान-पान के स्तर में व्यापक सुधार हुआ। मोटर साइकिल, टेलीविजन, घड़ी, ट्रांजिस्टर प्रेशर कुकर, गैस के चूल्हों और सौन्दर्य प्रसाधनों का उपयोग समाज के दुर्बल वर्गों में सामान्य होता जा रहा है। ग्रामों में भी विवाह और दूसरे आयोजनों के समय साज-सज्जा को विशेष महत्व मिलने लगा है। जीवन स्तर में होने वाला यह सुधार उन मनोवृत्तियों का परिणाम है जो आधुनिकता की उपज है।

12.4.3 आधुनिकीकरण एवं कृषि में विकास

आधुनिकीकरण का एक स्पष्ट प्रभाव गांवों में कृषि की नई प्रविधियों का बढ़ता हुआ उपयोग है। अब अधिकांश ग्रामीण ट्रैक्टर, काल्टीवेटर, पम्पिंग सेटों, थ्रेशरो तथा स्प्रेयर आदि का प्रयोग करके कृषि उत्पादन को बढ़ाने में लगे हुये हैं। अधिकांश किसानों द्वारा उन्नत बीजों, कीटनाशक दवाओं और रासायनिक खादों का प्रयोग किया जाता है। खेती के साथ पशुओं की नस्ल को सुधारने में भी ग्रामीणों की जागरुकता तेजी से बढ़ रही है। ग्रामीण, कृषकजन अधिकारियों से सम्पर्क करके ऐसी सभी जानकारियाँ लेने का प्रयत्न करते हैं, जिनकी सहायता से कृषि उत्पादन में वृद्धि हो सके तथा उन्हें अपनी उपज का अच्छा मल्य प्राप्त हो सके। कृषि के आधुनिकीकरण से गाँव और नगर के लोगों की दूरी कम हुई है तथा ग्रामीणों का विस्तृत जगत से सम्बन्ध बढ़ने लगा।

12.4.4 आधुनिकीकरण एवं समाज सुधार सम्बन्धी विकास

आधुनिकीकरण का सामाजिक संरचना पर सबसे स्पष्ट प्रभाव समाज सुधार की प्रक्रिया के रूप में देखने को मिलता है। आधुनिकीकरण से उत्पन्न होने वाली नई मनोवृत्तियों के परिणामस्वरूप

उन अन्धविश्वासों और कुरीतियों का प्रभाव तेजी से कम होने लगा जो सैकड़ों वर्षों से भारतीय सामाजिक जीवन को विघटित कर रही थी। समाज में जैसे-जैसे पश्चिमी मूल्यों और शिक्षा का प्रभाव बढ़ा, वैसे-वैसे बाल विवाह, अस्पृश्यता, दास प्रथा, विधवाओं का शोषण, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा, स्त्री-पुरुषों की असमानता तथा दहेज प्रथा का विरोध बढ़ने लगता है। आज अन्तर्जातीय विवाहों में होने वाली वृद्धि आधुनिकीकरण का ही परिणाम है। सच तो यह है कि आधुनिकता के प्रभाव से भारत में एक ऐसी सामाजिक चेतना उत्पन्न हुई जो समानता, सामाजिक न्याय और स्वतंत्रता के मूल्यों पर आधारित है।

12.4.5 आधुनिकीकरण एवं अन्तर्जातीय सम्बन्धों में विकास

भारत में एक लम्बे समय तक विभिन्न जातियाँ एक दूसरे से अलग-थलग रहीं जिसके फलस्वरूप समाज में उपयोगी विकास कार्य/परिवर्तन नहीं हो सके। स्वतंत्रता के बाद आधुनिकीकरण में वृद्धि होने से जाति के नियम तेजी से कमजोर पड़ने लगे। परिवहन के साधनों का विकास होने से सभी जातियों और क्षेत्रों के लोगों को एक दूसरे के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। प्रौद्योगिकी विकास ने सभी जातियों और क्षेत्रों के लोगों को व्यवस्था के नये अवसर प्रदान किये। शिक्षा से उत्पन्न होने वाली चेतना ने यह स्पष्ट कर दिया कि जन्म के आधार पर कोई भी व्यक्ति ऊँचा अथवा नीचा नहीं होता। इसी का परिणाम है कि आज व्यवसाय का चुनाव करते समय व्यक्ति जाति के निमयों को ध्यान में न रखकर अपनी कुशलता और सामाजिक प्रतिष्ठा को ध्यान में रखता है। गांवों में जजमानी व्यवस्था से सम्बन्धित अधिकांश जातियाँ अब अपने परम्परागत पेशों को छोड़ रही है। नाई, धोबी, धानुक, कुम्हार तथा माली जैसी जातियाँ नगरों में अपने व्यवसाय को आधुनिक रूप देकर अपने सामाजिक स्तर में सुधार लाना अच्छा समझने लगी है। विभिन्न जातियों के बीच खानपान की दूरी लगभग पूरी तरह समाप्त हो चुकी है। विभिन्न जातियों के बीच पारस्परिक सम्पर्क तथा सामाजिक आदान-प्रदान में वृद्धि हो रही है। ये सभी परिवर्तन, भारतीय सामाजिक व्यवस्था की अधिसंरचना में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करते हैं।

12.4.6 आधुनिकीकरण एवं शिक्षा के क्षेत्र में विकास

आधुनिकीकरण के माध्यम से शिखा के क्षेत्र में भी विकास सम्बन्धी अनेक परिवर्तन हुये हैं। आज अधिकांश माता-पिता आर्थिक कठिनाईयों के बाद भी अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलाने के पक्ष में हैं। इसी के फलस्वरूप शिक्षित लोगों के प्रतिशत तथा शिक्षा के स्तर में व्यापक सुधार हो सका। आज भारत में एक ऐसी शिक्षा का प्रसार हो रहा है जिसका उद्देश्य कार्यालयों के लिये क्लर्क पैदा करना नहीं बल्कि ज्ञान और विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में नई पीढ़ी की योग्यता और प्रतिभा में अधिकाधिक वृद्धि करना है। ग्रामीण और जनजातीय समुदायों में भी आज अधिकांश व्यक्ति अपने बच्चों को शिखा दिलाने के पक्ष में हैं। सायंकालीन प्रौढ़ शिक्षा में ग्रामीण का सहभाग लगातार बढ़ता जा रहा है। वास्तविकता यह है कि शिक्षा आधुनिकीकरण का न केवल परिणाम है, बल्कि इससे स्वयं आधुनिकता में गुणात्मक रूप से वृद्धि हो रही है।

12.4.7 आधुनिकीकरण एवं आर्थिक विकास

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया सामान्य रूप से आर्थिक विकास के अर्थ में समझी जाती हैं, आर्थिक विकास और आधुनिकीकरण की अवधारणायें परस्पर सम्बद्ध हैं। उदाहरण के लिये एक सजग जन-समुदाय शिक्षा को अच्छे जीवन हेतु आवश्यक मान सकता है किन्तु स्कूलों, पुस्तकों एवं अध्यापकों के लिये धन की आवश्यकता है। अत: हमें भोजन या फैक्ट्रियों में साधन स्रोतों को इस ओर मोड़ना होगा। इसी प्रकार सामाजिक न्याय के लिये भूमि सुधार या

जोत की सीमाबन्दी आवश्यक हो सकती है, किन्तु इसकी सफलता तभी सम्भव है जबकि नई पूंजी, विकसित तकनीकें, परिवर्तित विपणन प्रक्रियायें व-स्वतन्त्र किसानों को उपलब्ध करायी जायें। इसलिये यह उचित हैं कि आधुनिकीकरण को आर्थिक उन्नति के रूप में समझा जाता है। यह आर्थिक उन्नति मुख्यत: औद्योगीकरण के द्वारा होती है। औद्योगीकरण में संगठन, यातायात, संचार आदि के माध्यम से उत्पादन में वृद्धि के प्रयास शामिल हैं।

आधुनिकीकरण की अवधारणा मुख्य रूपसे जिस तीसरी दुनिया के लिये प्रयुक्त की जाती है, वहाँ के लोग आर्थिक अभाव और परेशानी का जीवन व्यतीत करते हैं। तीसरी दुनिया के अधिकांश लोग रोटी और स्वतंत्रता के लिये संघर्षरत हैं। पाश्चात्य अध्ययन-कर्ताओं ने तीसरी दुनिया में अभाव की स्थिति का वर्णन करते हुये लिखा है कि भारत में गरीब, अछूत लोग स्वयं और अपने परिवार के खाने के लिये गाय के गोबर में से अनपचे अन्न के दाने निकालते हैं। इसी प्रकार लैटिन अमेरिकी बच्चे हजारों की संख्या में पानी के बिना मर जाते हैं। भारत के अनेक गांवों में भी लोग पीने के पानी के लिये तरसते हैं। विशेषत: राजस्थान के रेगिस्तानी भागों के लोग दो बूंद पानी के लिये अपनी इज्जत और ईमान तक दांव पर लगा देते हैं। इस प्रकार दुनिया के करोड़ों लोग प्रतिपल भूख और बीमारी से त्रस्त हैं। विकसित और विकासशील देशों के विभिन्न तुलनात्मक अध्ययन जो आंकड़े प्रस्तुत करते हैं वे चौंकाने वाले तथा भयानक हैं। इन असमानताओं के कारण विश्व के लोग उस परिवर्तन के लिये अभिप्रेरित हो रहे हैं, जिसे आधुनिकीकरण कहा जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि दुनिया के लोग अमेरिकी प्रकार की या पश्चिमी ढंग की समाज व्यवस्था अथवा आर्थिक संरचना के अभिलाषी हैं। उनकी खोज तो मुख्यत: रोटी और स्वतंत्रता की खोज है। स्पष्ट है कि आधुनिकीकरण के कलेवर में समाहित मुख्य विषय आर्थिक विकास है जिसे आज ओद्योगीकरण के रूप मे जाना जाता है।

12.4.8 आधुनिकीकरण एवं लोकतांत्रिक नेतृत्व का विकास

ग्रामीण स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था तथा किवास कार्यक्रमों के फलस्वरूप भारत में लोकतांत्रिक नेतृत्व का विकास हुआ। इससे भी आधुनिकीकरण के तत्वों को प्रोत्साहन मिला। ग्रामीणों पर जाति पंचायतों का प्रभाव कम हो गया तथा सभी जातियों के लोगों को आर्थिक स्थिति, धर्म और लिंग के भेद भा के बिना ग्रामीण राजनीति में हिस्सा लेने का अवसर मिलने लगा, जिन जमींदारों के उच्च जातियों के पास परम्परागत रूप से नेतृत्व के अधिकार हैं, उनकी शक्ति कमजोर पड़ने लगी। मताधिकार पर आधारित नेतृत्व के विकास से उन समूहों की शक्ति बढ़ गयी जिनकी संख्या शक्ति अधिक है। नगरों में भी श्रमिक वर्ग को एक बड़े समुदाय का नेतृत्व करने के अवसर मिलने लगे। शक्ति संरचना में होने वाले इस परिवर्तन ने भी ऐसी मनोवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया जो आधुनिकीकरण को बढ़ाने में सहायक सिद्ध होने लगीं।

12.4.9 आधुनिकीकरण एवं धर्मनिरपेक्षता का विकास

धर्मनिरपेक्षीकरण का प्रत्यक्ष सम्बन्ध बुद्धिवाद से है। प्रो० श्रीनिवास ने लिखा है कि धर्म निरपेक्षीकरण में यह बात निहित है कि जिसे पहले धार्मिक माना जाता था उसे अब वैसा नहीं मानते। धर्मनिरपेक्षीकरण में प्रत्येक व्यवहार को कार्यकारण सम्बन्धी की कसौटी पर कस कर स्वीकार किया जाता है जिसे बुद्धिवाद से सम्बोधित किया जाता है।

धर्मनिरपेक्षीकरण के कारण जीवन चक्र की धारणा तथा कर्मकाण्डों के रूपों में परिवर्तन हुआ है। विभिन्न संस्कारों का संक्षिप्तीकरण धर्म निरपेक्षीकरण का प्रभाव है। जैसे विवाह संस्कार का संक्षिप्तिकरण अधिक उल्लेखनीय है। अब विवाह को सम्पन्न करने के लिये नये प्रकार के समारोह अधिक श्रेयस्कर समझे जाते हैं। विवाह तथा अन्य समारोहो में पहले स्त्रियाँ गाने-

बजाने का कार्यक्रम करती थीं, लेकिन ऐसे समारोहों अब सी० डी० कैसेट रिकार्ड आदि लगा दिये जाते हैं। प्रो० श्रीनिवास ने लिखा है कि हिन्दू धर्म अधिकाधिक यद्यपि धीमी गति से अपनी जाति, सगोत्रता और ग्रामीण समुदाय वाले पारस्परिक सामाजिक ढाँचे से अलग होता जा रहा है और राज्य, राजनीतिक दलों और भारतीय संस्कृति के प्रोत्साहन संगठनों से जुड़ रहा है। पारम्परिक सामाजिक संस्थाओं जैसे मठों, मन्दिरों, भजन मंडलियों और तीर्थ यात्राओं में लचीलापन और परिस्थिति के अनुरुप ढलने की क्षमता दिखाई पड़ी है। फिल्म, रेडियो, पुस्तकें-समाचार पत्र जैसे सामूहिक माध्यम हिन्दू धर्म को हिन्दू जनता के सभी वर्गों तक पहुंचाने में योगदान दे रहे हैं।

यह धर्मनिरपेक्षीकरण का ही प्रभाव है कि आधुनिक स्त्रियाँ अब रसोई घरों में पवित्रता के बारे में कम चिंता करके स्वास्थ्यता तथा पौष्टिकता के बारे में अधिक सजग रहती हैं।यह सब आधुनिकीकरण के फलस्वरूप धर्मनिरपेक्षीकरण का ही प्रभाव है।

12.4.10 आधुनिकीकरण एवं मानवतावाद का विकास

आधुनिकीकरण का सबसे प्रमुख प्रभाव मानवतावाद का विकास है। प्रो० श्रीनिवास ने लिखा है कि मानवतावाद का अर्थ है, बिना किसी धर्मक, जाति, यौन, आयु तथा आर्थिक स्थिति का ध्यान किये सभी लोगों का कल्याण करना। मानवतावाद के अन्तर्गत दो तत्वों को सम्मिलित किया जाता है—(1) समानता का विकास और (2) धर्मनिरपेक्षीकरण।

12.4.11 आधुनिकीकरण एवं सामाजिक मूल्यों एवं मनोवृत्तियों का विकास

आधुनिकीकरण के प्रभाव से भारत के परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन होने के साथ ही विभिन्न वर्गों की मनोवृत्तियों में भी व्यापक विकास हुये हैं। अब अधिकांश लोग भाग्य की अपेक्षा व्यक्तिगत योग्यता और परिश्रम को अधिक महत्व देने लगे हैं। जातिगत विभेदों की जगह समानता और सामाजिक न्याय के मूल्यों के प्रभाव में वृद्धि हुई है। समाज के विभिन्न वर्ग लौकिक और तार्किक व्यवहारों के महत्व को समझने लगे हैं। धार्मिक कट्टरता के स्थान पर धर्म निरपेक्ष विचारों का प्रभाव बढ़ा है। गतिशीलता जीवन का अभिन्न अंग बनती जा रही है। अपने से भिन्न धर्मों और जातियों के लोगों से सम्पर्क बढ़ाने के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई तथा दुर्बल वर्गों के लोग भी अपने अधिकारों के प्रति कहीं अधिक जागरूक होने लगे। ये सभी परिवर्तन/विकास भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण के बढ़ते हुये प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

भारत में परम्परा से आधुनिकीकरण की ओर होने वाले परिवर्तन से कुछ लोग यह समझने लगते हैं कि आधुनिकीकरण से यदि इसी प्रकार परिवर्तन होते रहे, तो कुछ समय बाद हमारे समाज की मौलिक परम्परायें पूरी तरह समाप्त हो जाएंगी। वास्तविकता यह है कि कोई समाज चाहे कितना भी आधुनिक क्यों न हो जाये वहां किसी न किसी रूप में परम्पराओं का प्रभाव सदैव बना रहता है। दूसरी बात यह है कि जिन्हें आज हम आधुनिकीकरण के लक्षण कहते हैं, प्रौद्योगिक और वैचारिक प्रगति के साथ भविष्य में उन्हीं को समाज की परम्पराओं के रूप में देखने की सम्भावना की जा सकती है। इस प्रकार परम्परातथा आधुनिकीकरण परस्पर सम्बन्धित और परस्पर निर्भर दशायें हैं, जिनका अध्ययन निरन्तरता अथवा सातत्य के आधार पर ही किया जाना चाहिये।

12.5 सारांश

* इस इकाई के अन्तर्गत आपने 'आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में होनेवाले विकास' की विवेचनातमक जानकारी प्राप्त की है। अब आप आधुनिकीकरण की प्रक्रिया और उसके फलस्वरूप भारतीय समाज में होने वाले

विभिन्न विकास सम्बन्धी परिवर्तनों से परिचित हो गये हैं।

आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले विकास/परिवर्तन हैं–प्रौद्योगिकी विकास, जीवन स्तर में विकास, कृषि का विकास, समाज सुधार सम्बन्धी विकास, अन्तर्जातीय सम्बन्धों में विकास, शिक्षा के क्षेत्र में विकास, आर्थिक विकास, लोकतांत्रिक नेतृत्व का विकास, धर्मनिरपेक्षता का विकास, मानवतावाद का विकास एवं सामाजिक मूल्यों तथा मनोवृत्तियों का विकास।

यद्यपि आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का अनुकरण सामान्यत: अधिक विकास के सन्दर्भ में किया जाता है, परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि प्रक्रियात्मक तत्वों, विश्लेषणों एवं परिणामों की दृष्टि से देखा जाये तो आधुनिकीकरण का क्षेत्र काफी व्यापक है; जैसा कि ऊपर वर्णित हैं।

2.6 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

आइसनस्टैड : मॉडर्नाइजेशन. प्रोपेस्ट एण्ड चेंज

जी० आर० मदन : विकास का समाजशास्त्र

योगेन्द्र सिंह : मार्डनाइजेशन आफ इण्डियन ट्रेडिशन

2.7 बोध प्रश्न/उत्तर

ीर्घउत्तरीय

आधुनिकीकरण एवं विकास में क्या सम्बन्ध है।

विकास के विभिन्न आयामों की विवेचना करें।

ाघुउत्तरीय :

आधुनिकीकरण एवं आर्थिक विकास के मध्य सम्बन्ध बताये।

आधुनिकीकरण के फलस्वरूप सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन को स्पष्ट करें।

स्तुनिष्ठ

द जसिंग आफ ट्रेडिशनल सोसाइटी'' के लेखक कौन हैं :

अ) श्रीनिवास (ब)इरावती कर्वे (स) लर्नर (द) बोटोमोर

त्तर : (स)

''माईनाइजेशन आफ इण्डियन ट्रेडीशन'' के लेखक कौन है :

अ) श्रीनिवास (ब) योगेन्द्र सिंह (स) मैकाइनर एवं पेज (द) बोगार्डस

त्तर : (ब)

NOTES

खण्ड

4

विकसित एवं विकासशील समाज

इकाई 13

विकसित एवं विकासशील समाज

इकाई 14

विकसित व विकासशील समाज में सम्बन्ध

इकाई 15

विकासशील समाजों की समस्याएँ

इकाई 16

परम्परा आधुनिक एवं विकास

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

खण्ड - 4 : खण्ड परिचय - विकसित एवं विकासशील समाज

इस खण्ड में विकसित एवं विकासशील समाज पर प्रकाश डाला गया है। **पहली इकाई** का शीर्षक है 'विकसित एवं विकासशील समाज'। इस इकाई में विकसित एवं विकासशील की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। **इकाई दो** का शीर्षक है ''विकसित व विकासशील समाज का सम्बन्ध''। इसमें इन समाजों के प्रति विभिन्न विचारकों के विचारों को प्रस्तुत किया गया है। इन समाजों में आपसी संबंधों एवं अन्तर का भी स्पष्ट किया गया है। **तीसरी इकाई** का शीर्षक है ''विकासशील समाजों की समस्याएँ'' इसमें विकासशील समाज की आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। भाषा, साम्प्रदायिकता, जनसंख्या विस्फोट, रूढ़ियों एवं परम्पराओं की धारणा की गई है। राजनैतिक बाधाओं एवं राजनैतिक अस्थितरा पर भी प्रकाश डाला गया है। **इकाई चार** का शीर्षक है। ''परम्परा आधुनिकता एवं विकास''। इसमें परम्परा और आधुनिकता के अर्थ की व्याख्या की गई है। परम्परा आधुनिकता और विकास के सम्बन्ध का विश्लेषण किया गया है। प्रतिमान चरों के आधार पर परम्परागत और आधुनिक समाज की प्रवृत्ति का उल्लेख किया गया है।

इकाई 13 विकसित व विकासशील समाज

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य
13.1 प्रस्तावना
13.2 विकसित समाज से तात्पर्य
13.3 विकसित समाज के लक्षण (विशेषताएं)
13.4 विकासशील समाज से तात्पर्य
13.5 विकासशील समाज के लक्षण (विशेषताएं)
13.6 सारांश
13.7 संदर्भ पुस्तकें
13.8 प्रश्नोत्तर

13.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई वैश्विक विकास प्रक्रिया के सामाजिक ढांचे की विविधताओं व विशेताओं पर आधारित हैं। इस विकास प्रक्रिया ने विश्व को मुख्यत: विकसित व विकासशील समाज में विभाजित किया है। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम :

- विकसित समाज के अर्थ व उन विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे जिनके कारण ये समाज विकसित समाजों की श्रेणी में आ सके।
- वैश्विक समाज को भली-भाँति समझने के लिए विकासशील समाजों को समझना अति आवश्यक है क्योंकि इनकी बहुलता इनके महत्व को स्वयं स्वष्ट करती हैं। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम इन विकासशील समाजों के अर्थ व परिभाषा से तो अवगत होंगे।
- साथ ही उन विशेषताओं को भी जानेंगे जो इन्हें विकासशील देशों की श्रेणी में रखते हैं।

13.1 प्रस्तावना

सभ्यता के विकास के साथ-साथ विश्व के समाज अपने नागरिकों के जीवन स्तर को उन्नत करने हेतु प्रयासरत हैं। इस विकास की प्रक्रिया में कुछ देश सामाजिक आर्थिक विकास के स्तर को प्राप्त करने में सफल रहे जबकि इसके विपरीत बहुसंख्यक देश अभी भी विकास की गति को अपनाने की प्रक्रिया में हैं। इस विकास की प्रक्रिया की अनेक बाधाएं रही हैं, जो क्षणिक नहीं हैं, वरन् सदियों से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौगोलिक आदि दशाओं को प्रभावित किए हुए हैं। ये बाधाएं विकासशील समाजों की विशेषताओं के रूप में सामने आती

हैं। प्रस्तुत इकाई इन विविधतायुक्त विभिन्न प्रकार के समाजों के प्रति समझ विकसित करने व इनकी विशेषताओं से अवगत होने का प्रयास है।

विकास की प्रक्रिया के आधार पर विश्व के देश मोटे-तौर पर तीन भागों में विभक्त हैं (1) विकसित देश (2) विकासशील देश (3) अविकसित देश। सामान्यत: अविकासशील देशों को विकासशील पुन: विकसित देशों की श्रेणी में परिवर्तित करने हेतु जो प्रक्रिया सामने आती है वह आर्थिक क्षेत्र में सम्बद्ध रहती है। लेकिन जब हम समाजशास्त्रीय आधार पर विकास की बात करते हैं तो हम आर्थिक वृद्धि को गौण मानते हैं एवं सामाजिक सम्बन्धों में सुधार को प्राथमिकता देते हैं।

13.2 विकसित समाज

विकसित समाज को मुक्त समाज, औद्योगिक समाज, पूंजीवादी समाज, द्वैतीयक सम्बन्धों वाला समाज, आधुनिक समाज आदि विभिन्न नामों से भी पुकारते हैं। यह वह समाज है जहाँ (1) प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतर एवं कुशलतम उपयोग किया जाता है। (2) औद्योगीकरण की गति तीव्र होती है (3) नगरीकरण की गति प्रखर होती है (4) साक्षरता का अनुपात औसत से अधिक होता है आदि लक्षण किसी समाज को विकसित समाज की श्रेणी में लाते हैं।

विकसित समाज विज्ञान व प्रौद्योगिकी निर्देशित समाज होता है। यही कारण है कि इसे धर्म निरपेक्ष व आधुनिक समाज भी कहते हैं। पूंजी निवेश की अधिक क्षमता होने से राष्ट्रीय व प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि इन समाजों को सम्पन्न समाज की श्रेणी में भी रखती है। पूंजी का अतिरेक इन्हें अन्य देशों में निवेश करने के लिए प्रेरित करता है। वर्तमान भूमण्डलीकरण प्रक्रिया भी इन्हीं सम्पन्न समाजों की देन है। इन देशों की श्रेणियों में मुख्यतया संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान आदि देश आते हैं।

विकसित समाजों को दो बड़े भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक ओर वे विकसित समाज हैं जिन्होंने विकास के लिए जनतंत्र के मार्ग को अपनाया है इस श्रेणी में संयुक्त राज्य अमेरिका, इंग्लैण्ड, पश्चिमी यूरोप के देश, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आदि आते हैं। इन देशों ने निजी अर्थव्यवस्था, मुक्त अर्थव्यवस्था जैसी आर्थिक नीतियों का अनुसरण कर अपने देश को आर्थिक रूप से समृद्ध बनाया है। प्रति व्यक्ति उच्च आय दर एवं भौतिक सुख-सुविधा ने इन देशों के नागरिकों को उच्च जीवन स्तर प्रदान किया है। अधिक जीवन प्रत्याशा, मृत्युदर, जन्मदर पर नियंत्रण, साक्षरता का उच्च स्तर, स्वास्थ्य की सुविधाएं, रोजगार की सुसभता, सामाजिक गव्यात्मकता, विज्ञान व प्रौद्योगिकी के प्रभाव, आधुनिकीकरण आदि सामाजिक प्रगति के लक्षण इन विकसित समाजों की विशेषताएं हैं। ये समाज अपने यहाँ प्रजातांत्रिक संस्थाओं को बनाये रखने, विधि का शासन लागू करने व मानवाधिकार का पालन करने का दावा करते हैं।

जनतंत्रीय शासन प्रणाली के विपरीत साम्यवादी शासन प्रणाली को अपनाने वाले अनेक देश भी विकसित समाज की श्रेणी में आते हैं। उस श्रेणी में पूर्व सोवियत संघ व पूर्वी यूरोप के अनेक देश जैसे यूगोस्लाविया, पूर्वी जर्मनी, चेकोस्लावाकिया आदि देश सम्मिलित हैं। इन देशों में निजी सम्पत्ति का विचारधारा के विपरीत उत्पादन के समस्त साधनों पर सामूहिक

नियंत्रण की नीति अपनायी गयी। उत्पादन व वितरण की प्रक्रिया पर राज्य का हस्तक्षेप रहता है कि कब, कितना, किनके द्वारा उत्पादन होगा और इसका वितरण किस प्रकार होगा। इस प्रकार के समाजों में अर्थतंत्र को अधिक महत्व देकर आध्यात्मिक पक्ष की अवहेलना की गयी है। जनतंत्रीय विकसित समाजों के समान इन साम्यवादी समाजों में विज्ञान व प्रौद्योगिकी ने अत्यधिक उन्नति की है एवं अपने देशों की जनसंख्या को स्वस्थ्य व सभ्य जीवन स्तर प्रदान करने की सुनिश्चितता कायम की है।

13.3 विकसित समाज की विशेषताएं

विकसित समाज के उपरोक्त विवरण से निम्न विशेषताएं (लक्षण) सामने आते हैं-

1. **तीव्र औद्योगीकरण व नगरीकरण**—विकसित समाजों में औद्योगीकरण व नगरीकरण की सहगामी प्रक्रियाएं साथ-साथ तीव्रता से चलती हैं। यहाँ शिक्षित व प्रशिक्षित मानव शक्ति, प्राकृतिक संसाधन और वैज्ञानिक तकनीकी तीनों उद्योगों के विकास एवं विस्तार में सहायक हुए हैं।

2. **विकसित यातायात व्यवस्था**—विकसित यातायात व्यवस्था औद्योगीकरण को तीव्रता प्रदान करने में सहायक होती है। विकसित समाजों में यातायात के तीनों साधन, जलमार्ग, वायुमार्ग तथा स्थलमार्ग का विकास हुआ है। यातायात की विकसित तकनीकी के माध्यम से अन्तर्महाद्वीपीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय यातायात व्यवस्था विकसित हुयी है।

3. **जनसंख्या के स्तर में गुणात्मक वृद्धि**—विकासशील समाजों में जनसंख्या की बहुलता पायी जाती है, जबकि इसके विपरीत विकसित समाजों में जनसंख्या की न्यूनता होती है। देश की जनसंख्या अधिक शिक्षित, स्वस्थ, जागरूक, उच्च आय प्राप्त करने वाली होती है।

4. **कृषि का यंत्रीकरण**—विकसित समाजों में परम्परात्मक कृषि उत्पादन प्रणाली को त्यागकर अपेक्षाकृत उन्नत तकनीकी प्रणाली को अपनाया है। प्रति हेक्टेयर उत्पादन बढ़ने से कृषकों का स्तर ऊंचा हुआ है, साथ ही विश्व बाजार में उत्पाद को बेचने की प्रतियोगिता में भी तीव्रता आयी है।

5. **शिक्षा का उच्च स्तर**—विकसित समाज शिक्षा के उच्च स्तर को प्रदान करने में सक्षम है। महिलाओं और पुरुषों के मध्य शिक्षा के लिए भेदभाव नहीं किया जाता है। सामान्यतया सभी लोग शिक्षित होते हैं।

6. **विचारों की व्यापकता**—वैज्ञानिकता व उच्च शिक्षा के प्रभाव के कारण विकसित समाज में लोगों की विचारधारा संकीर्ण प्रवृत्ति की नहीं हो पाती। अर्थतंत्र का अधिक महत्व विचारों में आध्यात्मिकता के प्रभाव को क्षीण कर देता है एवं लोग खुले व व्यापक मानसिकता वाले होते हैं।

7. **सुदृढ़ संचार व्यवस्था**—सुदृढ़ व विकसित संचार व्यवस्था विकसित समाजों की महत्वपूर्ण विशेषता है। कम्प्यूटरीकृत संचार व्यवस्था टेलीफोन, दूरदर्शन, अन्तरिक्ष संचार व्यवस्था आदि विकसित समाजों की संचार व्यवस्था के प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। इन विकसित संचार माध्यमों द्वारा विकसित समाज, विश्व बाजार में अपना प्रभुत्व स्थापित कर पाने में स्वयं को समर्थ पाते हैं।

8. **महिलाओं की उच्च प्रस्थिति**—उच्च शिक्षा व आत्मनिर्भरता विकसित समाजों में महिलाओं को उच्च प्रस्थिति प्रदान करती हैं। आधुनिकता से प्रभावित ये महिलाएं सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। पारिवारिक निर्णयों में भी इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

9. **जागरुकता**—विकसित समाज में व्यक्ति अपने निकट के राजनीतिक, सांस्कृतिक आर्थिक धार्मिक व पर्यावणीय मुद्दों के प्रति सचेत रहता है। साथ ही मानवाधिकार, मूलाधिकार व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में देश के महत्व के प्रति भी जागरूक रहता है।

10. **उन्नत आर्थिक स्थिति**—विकसित समाजों में औसत आय का प्रतिशत उच्च होता है। अत: व्यक्ति उच्च जीवन स्तर व्यतीत करने में सम्भव होता है।

इस प्रकार विकसित देश दो भागों में बंटे हुए हैं। इनमें से एक पूंजीवादी विकसित देश है, जबकि दूसरे साम्यवादी विकसित देश। वर्तमान में सोवियत संघ के विघटन के साथ ही साम्यवादी देश भी एक-एक करके प्रजातंत्रीय पूंजीवादी देशों की नीतियों को स्वीकार करने लगे हैं। इन दोनों विकसित देशों की श्रेणी से अलग विश्व का कहीं अधिक विशाल समाज विकासशील देशों का प्रतिनिधित्व करता है। ये विकासशील समाज अल्पविकास की समस्या से ग्रस्त हैं।

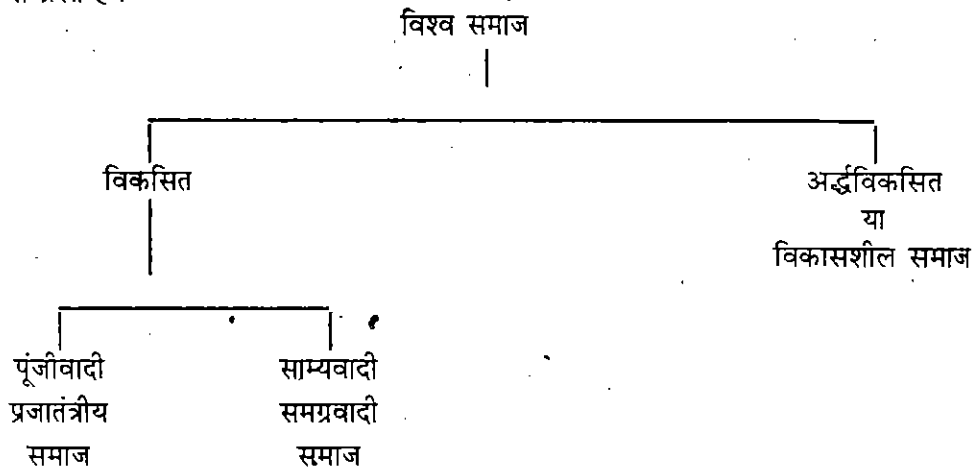

विकसित देशों की विशेषताओं का हमने अध्ययन किया। इन विशेषताओं में जहाँ इन विकसित समाजों की सम्पन्नता, आधुनिकता झलकती है, वहीं दूसरी ओर अनेक समस्याएं भी सामने आती हैं। ये समस्याएं मनोवैज्ञानिक अधिक हैं।

एरिक फ्राम व डेविड रीसमैन ने इन समाजों की समस्याओं की ओर ध्यानाकर्षित किया है।

एरिक फ्राम अपनी कृति (The sawe soceity) में उल्लिखित करते हैं कि पूँजावादी समाज ने सम्पन्नता के साथ-साथ मानसिक व भावनात्मक अलगाव की स्थिति भी उत्पन्न की है। व्यक्ति पूर्णतया अर्थोन्मुख व मशीनी हो गया है। आदर्श हीनता, भावनात्मक अस्थिरता ने व्यक्ति के व्यक्तितत्व की वास्तविकता और मूर्तता को खो दिया है। इन देशों में व्यक्ति मानसिक संतोष व शान्ति के लिए पूर्वी एशिया के देशों में आध्यात्मिकता की खोज व शरण हेतु प्रयासरत दिखाई देने लगे हैं।

इसी तरह डेविड रीसमैन का अपनी प्रसिद्ध कृति (The Lovely Crowd) में मानना है कि

अमेरिकी समाज दूसरों से निर्देशित है और यहाँ के नागरिकों का व्यक्तित्व भी दूसरों से निर्देशित है।

13.4 विकासशील समाज

विकासशील समाज से तात्पर्य ऐसे समाज से है, जहाँ आर्थिक विकास की प्रक्रिया अपेक्षाकृत नवीन है साधन उपलब्ध होते हुए भी विकास की गति धीमी रहती है। औद्योगीकरण का स्तर भी अपेक्षाकृत धीमा रहता है। इन सबके सम्मिलित प्रभाव के कारण भौतिक संस्कृति तीव्र गति नहीं पकड़ पाती।

इस समाजों को अन्य विभिन्न नामों से जैसे—अल्पविकसित समाज, अर्द्धविकसित, विकासोन्मुख, तृतीय विश्व आदि नामों से भी जाना जाता है। इन समाजों में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक विकास का स्तर मान्यता प्राप्त स्तर से निम्न होता है। यद्यपि विकास सम्बन्धी चेतना पायी जाती है एवं इसके लिए सामूहिक व नियोजित प्रयत्न किए जाते हैं। लेकिन वे समाज अभी विकास की चरम सीमा तक नहीं पहुँच पाए हैं। अल्प विकास के कारण इन समाजों में निर्धनता, बेरोजगारी, निरक्षरता, अज्ञानता दरिद्रता, आलस्य और बीमारी जैसी समस्याएं व्याप्त हैं।

प्रो० जे० आर० हिक्स के अनुसार—"एक अल्पविकसित देश वह है, जिसमें तकनीकी व मौद्रिक साधनों की मात्रा उत्पादन और बचत के वास्तविक स्तर के समान ही निम्न होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक को प्रति इकाई औसत पारिश्रमिक उस राशि से कम मिलता है, जो यदि ज्ञात साधनों में तकनीक की व्यवस्था की जाती तो उसे प्राप्त होती।

प्रो० जे० आर० हिक्स की उपरोक्त परिभाषा के अनुसार तकनीकी विकास की पूर्ण अवस्था में श्रमिकों को अपने परिश्रम के लिए जो पारिश्रमिक मिलना चाहिए वह जब उन्हें नहीं मिलता, तो उस दशा में जो समाज होगा उसे विकासशील कहा जायेगा। इस प्रकार समाज विकसित है या विकासशील इसका निर्धारण श्रमिकों की स्थिति को देखकर लगाया जा सकता है।

प्रो० केयर्नक्रास—अल्प विकसित समाज को विश्व अर्थ व्यवस्था की गंदी बस्तियों के रूप में परिभाषित करते हैं।

प्रो० सेम्युलसन भी आर्थिक आधार पर विकासशील समाज की व्याख्या करते हुए लिखते हैं कि "साधारणतया एक विकासशील राष्ट्र वह है, जिसमें प्रति व्यक्ति आज ऐसे राष्ट्रों, जैसे—कनाडा, संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस तथा पश्चिमी यूरोप के प्रति व्यक्ति आय की तुलना में कम हों। ऐसे राष्ट्रों के आय के स्तर में पर्याप्त सुधार करने की क्षमता होती है।

जैकब वाइनर—विकास की सम्भावनाओं के आधार पर अर्द्धविकास की परिभाषा देते हैं। उनके शब्दों में "अर्द्धविकसित देश वह है जिसमें उपलब्ध पूंजी, श्रम शक्ति, प्राकृतिक साधनों आदि से अधिक उपयोग की काफी सम्भावना है, जिससे वर्तमान जनसंख्या के रहन-सहन के स्तर को ऊंचा किया जा सके और प्रति व्यक्ति आय पहले से ही अधिक है, तो रहन-सहन के स्तर को नीचा किए बिना अधिक जनसंख्या का निर्वाह किया जा सके।"

इस प्रकार जैकब वाइनर की उपरोक्त परिभाषा सामाजिक साधनों के प्रयोग पर बल देती है।

भारतीय योजना आयोग की दृष्टि में "एक अल्पविकसित सामाजिक व्यवस्था वह है,

जिसमें मानवीय शक्ति का अल्प उपयोग या अनुपयोग एक ओर प्राकृतिक साधनों का समुचित उपयोग न होने की स्थिति दूसरी ओर साथ-साथ पायी जाती है।

विकासोन्मुख समाज विकासोन्मुख देशों के समान हैं, इसीलिए विकासोन्मुख समाजों की विशेषताएं लगभग वही हैं, जो विकासोन्मुख देशों की विशेषताएं हैं।

यूजीन स्टैली ने विकासोन्मुख देशों या समाजों की निम्नलिखित विशेषताओं की ओर ध्यानाकर्षित किया है:-

1. इन देशों में प्रति व्यक्ति आय का स्तर विकसित देशों के प्रति व्यक्ति आय की तुलना में अपेक्षाकृत निम्न होता है।

2. इन देशों के व्यक्तियों की जीवन प्रत्याशा विकसित देशों के व्यक्तियों की जीवन प्रत्याशा की तुलना में लगभग आधी है।

3. जनसंख्या का बड़ा भाग विभिन्न बीमारियों से पीड़ित है।

4. खाद्य की आपूर्ति विकसित देशों की खाद्य आपूर्ति की तुलना में एक तिहायी से भी कम है।

5. जहाँ बेरोजगारी, निरक्षरता, अज्ञानता और अंधविश्वास सामान्य रूप से मौजूद है।

विश्व बैंक ने अपनी (World Development Report, 2002) में प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पाद के आधार पर विभिन्न देशों का वर्गीकरण किया है। विकासशील देश तीन भागों में बांटे गये हैं : (क) निम्न आय वाले देश जिनमें 2000 में प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्री उत्पाद 755 डालर या इससे कम हैं। (ख) मध्यम आय वाले देश जिनकी प्रति व्यक्ति आय 755 डालर से 9265 डालर के बीच है। (ग) उच्च आय वाले देशों में आर्थिक सहयोग एवं विकास संस्था (OECD) के सदस्य एवं कुछ अन्य देश हैं, जिनमें प्रति व्यक्ति उत्पाद 9,265 डालर या इससे अधिक है।

World Development Report (2002) के अनुसार जहाँ निम्न आय वाले देशों में 2000 में कुल विश्व जनसंख्या का 40.6% निवास करता है, वहाँ उन्हें कुल विश्व राष्ट्रीय आय का केवल 3.4 प्रतिशत प्राप्त है। इसी प्रकार मध्यम आय वाले देशों में कुल विश्व जनसंख्या का लगभग 44.5% रहता है, परन्तु उनको कुल विश्व आय का लगभग 17.0 प्रतिशत प्राप्त है। इस प्रकार निम्न आय वाले व मध्यम आय वाले देश सम्मिलित रूप से विकासशील देशों की श्रेणी में आते हैं। इन देशों में विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग 85% रहता है, परन्तु इन्हें विश्व की कुल आय का लगभग 20% प्राप्त होता है। इनमें एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अधिकांश देश सम्मिलित हैं।

इसके विपरीत उच्च आय वाले देश जिनमें कुल विश्व जनसंख्या का 15 प्रतिशत निवास करता है, का विश्व की कुल आय में लगभग 80% है। इस प्रकार विश्व अर्थव्यवस्था में आय का संकेन्द्र व उच्च आय वाले देशों अर्थात् विकसित अर्थव्यवस्थाओं के पक्ष में हो रहा है। जबकि विश्व के अधिकतर गरीब निम्न आय एवं मध्यम आय वाले विकासशील देशों में रहते हैं।

3.5 विकासशील समाज की विशेषताएं (लक्षण)

कासशील समाज की प्रमुख विशेषताएं (लक्षण) निम्न हैं—

1) **प्राथमिक उद्योग की प्रधानता**—विकासशील देश प्रमुखता कृषि प्रधान या कृषि ाधारित उद्योगों पर आधारित होते हैं। इन समाजों में देश की लगभग तीन चौथाई जनसंख्या वों में निवास करती है। जनसंख्या वृद्धि इस भूमि आधारित उद्योग पर दबाव बढ़ा देती है। ापी बेरोजगारी, भूमि हेतु मुकदमेबाजी आदि समस्याएं बढ़ती जाती हैं। गैलब्रेथ के नुसार—कृषि प्रधान देश कृषि कार्य में भी पिछड़े मिलेंगे। प्रो० गुन्नार मिर्डल का मानना है ; "औद्योगीकरण से प्राप्त ज्ञान को कृषि कार्यों में लगाया जा सकता है, लेकिन कृषि कार्य ऐसा सम्भव नहीं है।"

2) **वास्तविक आय का कम होना**—निम्न वास्तविक आय विकासशील समाज की शेषता है। 2000 में भारत की प्रति व्यक्ति आय 460 डालर थी, चीन की 780 डालर। इन कासशील समाजों के विपरीत स्विटजरलैण्ड जैसे विकसित समाज की प्रति व्यक्ति आय)00 में भारत की आय का लगभग 83 गुना, संयुक्त राज्य अमेरिका की 74 गुना थी।

3) **प्राकृतिक संसाधनों का कम प्रयोग**—विकासशील समाजों में प्राकृतिक संसाधनों के हन में वैज्ञानिक तकनीक का समुचित प्रयोग न होने या अवैज्ञानिक ढंग से होने के कारण लब्ध प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर लाभ उठाना सम्भव नहीं हो पाता। ऐसे अनेक स्थान हैं, हाँ कोयला, लोहा तथा पेट्रोलियम आदि का विशाल भण्डार है, परन्तु उचित तकनीकी ज्ञान अभाव में उनका उचित दोहन नहीं हो पाता है।

4) **जनसंख्या का वृहद स्वरूप**—विकासशील देशों में जनाधिक्य पाया जाता है। एशिया जनसंख्या का घनत्व सबसे अधिक है। जन्म व मृत्यु की ऊँची दर अल्पविकसित समाज की ख्य समस्या है। जब किसी देश की अर्थव्यवस्था में जन्मदर व मृत्युदर दोनों ऊँचे होते हैं तो ा कारण जनसंख्या की वृद्धि अपेक्षाकृत कम होती है, किन्तु उत्तम स्वास्थ्य सुविधा से त्युदर कम होने लगती है फलत: जनसंख्या में वृद्धि की दर बढ़ जाने की स्थिति उत्पन्न हो ाती है। 1911-20 के दौरान मृत्युदर 48.6 प्रति हजार थी। किन्तु 2000 के दौरान यह घटकर 5 प्रति हजार रह गयी। इसकी तुलना में जन्मदर 1911-20 की अवधि में 49 प्रति हजार थी, ा 2000 में घटकर 25.8 प्रति हजार हो गयी।

5) **औद्योगीकरण की कमी**—विकासशील समाज में उद्योग धन्धे पिछड़ी अवस्था में हैं सके कारण उत्पादन कम होता है। शक्ति चालित उद्योग धन्धों का इन समाजों में अभाव ने से पूंजीगत वस्तुओं का उत्पादन बिल्कुल नहीं हो पाता। अधिकांश उद्योग उपभोग की स्तुओं का ही निर्माण करते हैं। औद्योगिक पिछड़ेपन के प्रमुख कारण पूंजी की कमी, कनीकी ज्ञान की जानकारी न होना, कुशल कर्मचारियों की कमी और प्राकृतिक साधनों का योग न किया जाना है।

6) **पूंजी निर्माण का निम्न स्तर**—विकासशील समाज में पूंजी का अभाव रहता है जो कि ा रूपों में प्रकट होता है - प्रथम, प्रतिव्यक्ति उपलब्ध पूंजी की निम्न मात्रा और द्वितीय जीनिर्माण की प्रचलित निम्नदर। बैंकिंग सुविधा की पर्याप्त सुलभता न होने से भी पूंजी ार्माण दर निम्न रहती है। विकसित देशों में जहां 70% से अधिक लोग बैंकों में रुपया जमा

करते हैं वहीं पर विकासशील देशों में केवल 30% लोग ही ऐसा कर पाते हैं।

(7) यातायात व संचार के साधनों का कम विकास—विकसित यातायात व संचार के साधन किसी समाज को समृद्धि कहने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करते हैं। विकासशील समाज में सड़क परिवहन यातायात का मुख्य साधन होता है परन्तु सड़कों की दशा अत्यन्त शोचनीय होती है। अधिकांशतया सड़क कच्ची होती हैं। सभी स्थान सड़कों से जुड़े नहीं होते। इसी तरह संचार की व्यवस्था भी निम्न कोटि की होती है। सभी स्थानों पर टेलीफोन तथा डाकतार की सुविधा उपलब्ध नहीं होती। उपलब्ध साधन भी विश्वसनीय नहीं होते।

(8) जनाँकिकीय विशेषताएं—विकासशील समाज के जनांकिकीय लक्षणों में जनसंख्या का अधिक घनत्व, 0-15 आयु वर्ग में जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात और कार्यकारी आयुवर्ग का कम अनुपात शामिल है। इसके अतिरिक्त जीवन की औसत प्रत्याशा भी कम होती है और शिशु मृत्यु दर अधिक होती है। अधिक जन घनत्व होने के कारण भूमि तथा अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर अपेक्षाकृत अधिक भार पड़ता है। बच्चों का अधिक अनुपात निर्भरता भार को बढ़ाता है क्योंकि अनुत्पादक जनसंख्या अनुपात व आकार दोनों में ही अधिक होता है।

(9) शिक्षा का निम्न स्तर—विकासशील समाजों में शिक्षा का स्तर अत्यन्त दयनीय होता है। शिक्षा विशेषीकृत ज्ञान को अपनाने का तरीका है। अज्ञानता तथा शिक्षा की कमी के कारण अधिकांश विकासशील समाजों में योजना निर्माण के कार्य सफल नहीं हो पाते हैं। शिक्षा की कमी लोगों को वैज्ञानिकता व परिवर्तन का विरोधी बनाती है जिसका प्रभाव उत्पादन पर पड़ता है। गुन्नार मिरडल 'एशियन ड्रामा' में लिखते हैं कि विकासशील देशों में प्रमुख सुधार कार्य शिक्षा के स्वरूप में सामाजिक परिवर्तन करना है।

(10) स्त्रियों की निम्न स्थिति—किसी भी समाज के विकास में महिलाओं की अहम् भूमिका होती है। विकासशील समाजों में महिलाओं को शिक्षा के, नौकरी के उचित अवसर नहीं मिल पाते, जिसके कारण वे समाज में पिछड़ी रहती हैं। इसका दुष्प्रभाव समाज के विकास में परिलक्षित होता है।

(11) राजनीतिक व प्रशासकीय विशेषताएं—विकास के लिए राजनीतिक स्थिरता आवश्यक है। विभिन्न स्वाधीन विकासशील देशों में सरकार का स्वरूप स्थिरता नहीं पा पाया है। आये दिन सरकारें बदलने की स्थिति में विकास अवरुद्ध होता है।

इसी तरह लोक जीवन तथा प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार भी विकासशील देशों की अपनी विशेषता है। यह भ्रष्टाचार विकास प्रक्रिया को दीपक की तरह खोखला कर देता है।

13.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हम लोगों ने विकसित व विकासशील समाज का अध्ययन करने का प्रयास किया। इस इकाई के माध्यम से हम विकसित व विकासशील समाज के अर्थ व विशेषता से अवगत हुए। हमने यह भी जानने का प्रयास किया है कि विकासशील समाज की वे क्या विशेषताएं हैं जो इनके विकास में बाधा के रूप में सामने आती हैं।

3.7 संदर्भ ग्रन्थ/ उपयोगी पुस्तकें

गुन्नार मिरडल—द एशियन ड्रामा 23, 26

संयुक्त राष्ट्र संघ—अल्पविकसित देशों के आर्थिक विकास के उपाय (1951) पृष्ठ 3

यूजीन स्टेलो—अल्पविकसित देशों का भविष्य, न्यूयार्क (1954) पृष्ठ 13

जे. के. गलब्रेथ—द एफ्ल्यूएण्ट सोसायटी

जैकब वाइनर—द एकोनामिक्स ऑफ डेवलपमेण्ट

रेगनर नर्कसे—एकोनामिक डेवलपमेण्ड

प्रो. मेराज अहमद—विकास का समाजशास्त्र पृ० 38 से 40

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

र्घ उत्तरीय प्रस्न—

1 विकसित समाज से क्या तात्पर्य है? एवं इसकी मुख्य विशेषताओं (लक्षणों) पर प्रकाश डालें।

2 उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें कि किसी समाज की विशेषताएं ही उस समाज के विकास को निर्धारित करती हैं।

3 विकासशील समाज की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकी विशेषताओं की विवेचना करें।

घुउत्तरीय प्रश्न —

1 विकसित समाज व इसके वर्गीकरण पर प्रकाश डालें।

2 विकसित समाज को कौन सी समस्याएं प्रभावित कर रही हैं? टिप्पणी लिखें।

3 विकासशील समाजों की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना करें।

4 यूजीन स्टैली द्वारा विकासोन्मुख समाज की किन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है।

हुविकल्पीय प्रश्न—

1 निम्न में से कौन सा देश विकसित देश का उदाहरण नहीं है?

(1) जापान (2) आस्ट्रेलिया (3) ब्राजील (4) फ्रांस

2 अल्पविकसित समाज को विश्व अर्थव्यवस्था की गंदी बस्तियों के रूप में किस विचारक ने परिभाषित किया है?

(1) रेगनर नर्कसे (2) जैकब वाइनर (3) यूजीन स्टैली (4) केयर्न क्रास

3 गुन्नार मिर्डल की निम्न में से कौन सी कृति है?

(1) भारतीय अर्थव्यवस्था (2) द थर्ड वर्ल्ड (3) द एक्टिव सोसायटी (4) द एशियन ड्रामा

प्र. 4 भारतीय समाज निम्न में से किस समाज का प्रतिनिधित्व करता है?

(1) विकसित समाज (2) विकासोन्मुख (3) अल्पविकसित समाज (4) चारों में से कोई नहीं।

उत्तर—1. (3) 2. (4) 3. (4) 4. (2)

इकाई 14 विकसित व विकासशील समाजों का सम्बन्ध

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य
14.1 प्रस्तावना
14.2 विकसित समाज से तात्पर्य
14.3 विकसित समाज के लक्षण (विशेषताएं)
14.4 विकासशील समाज से तात्पर्य
14.5 विकासशील समाज के लक्षण (विशेषताएं)
14.6 सारांश
14.7 संदर्भ ग्रन्थ/ उपयोगी पुस्तकें
14.8 संबन्धित प्रश्नोत्तर

14.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई पूर्व इकाई विकसित व विकासशील समाज का विस्तार है। पूर्व इकाई में हमने विकसित व विकाशील समाज का अर्थ व विशेषताओं का अध्ययन किया। इस इकाई के माध्यम से हम-

- विभिन्न विचारकों के इन समाजों के प्रति विचार से अवगत होंगे।
- इनके आपसी सम्बन्धों को जान पायेंगे।
- वे कौन से कारण हैं जो विकासोन्मुख, समाज को विकसित समाज के समान होने को प्रेरित करते हैं, को भी जानने का प्रयास करेंगे।
- अंत में विस्तृत रूप से इन समाजों के मध्य अंतर का भी अध्ययन करेंगे।

14.1 प्रस्तावना

समाज विकसित है या विकासशील। यह एक सापेक्षित अवधारणा है। प्रत्येक समाज अपने नागरिकों को सभ्य व स्वच्छ जीवन स्तर प्रदान करने के लिए सतत् विकास की प्रक्रिया अपनाता है। वर्तमान के विकसित समाज कभी न कभी विकासोन्मुख प्रक्रिया द्वारा संचालित थे। राजनीतिक, प्रशासनिक व नागरिक सहयोग शिक्षा व विज्ञान प्रचार-प्रसार प्रकृति का सहयोग आदि विभिन्न अनुकूलतम परिस्थितियां ही किसी समाज को विकसित समाज की श्रेणी लाती है। विकसित समाज की श्रेणी में आने के बावजूद भी ये विकासशील समाज से सम्बद्ध रहते हैं क्योंकि किसी एक समाज की आवश्यकता दूसरे समाज द्वारा पूरी की जाती है। उदाहरण के लिए विकासशरील समाजों द्वारा विकसित समाजों को मानव श्रम, कच्चा माल आदि का निर्यात किया जाता है जबकि विकसित समाज विकासशील समाजों में पूंजी निवेश व प्रौद्योगिकी निर्यात में सक्षम है। इस प्रकार विभिन्न आवश्यकताएं दोनों समाजों को सम्बद्ध भी करती है और उनमें अंतर भी उत्पन्न करती हैं। अत: प्रस्तुत इकाई दोनों समाजों के आपसी सम्बन्ध के साथ-साथ अंतर से भी अवगत होने का प्रयास है।

14.2 विकासित व विकासशील समाजों में सम्बन्ध

पूर्व इकाई के अध्ययनोपरान्त हम विश्व समाज के दोनों भाग—(1) विकसित समाज (2) विकासशील समाज से पृथक् पृथक् रूप से अवगत हो चुके हैं।

विभिन्न विचारकों ने अध्ययन की सुविधा व आवश्यकतानुसार इन समाजों का भिन्न-भिन्न नामकरण किया है—

विचारक का नाम	विकसित समाज	विकासशील समाज
1. आगस्त कॉम्ट	धार्मिक स्तर का समाज	प्रत्यक्षवादी स्तर का समाज
2. हरबर्ट स्पेंसर	सैनिक समाज	औद्योगिक समाज
2. इमाइल दुर्खीम	यांत्रिक एकता का समाज	सावयकी एकता का समाज
4. हेनरी समनर मेन	प्रस्थिति या रक्त शासित समाज	संविदा शासित समाज
5. कार्ल मार्क्स	एशियाई समाज	वर्गविहीन समाज
6. राबर्ट ई. पार्क	पवित्र समाज	धर्म निरपेक्ष समाज
7. टानीज	जैमिन शॉफ्ट (समुदाय समाज)	जैसलशॉफ्ट (समिति समाज)
8. चार्ल्स कूले	प्राथमिक सम्बन्ध	द्वैतीयक सम्वन्ध
9. लर्नर, लेवी हास[illegible]	[illegible]	आधुनिक
10. सल्फ लिन्टन	[illegible]पूर्ण समाज	अर्जित पूर्ण समाज

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अध्ययन की सुविधा के लिए विकसित व विकासशील समाज के वर्गीकरण हेतु विभिन्न नामों का प्रयोग किया है फिर भी अंतिम रूप से यह कहना कि किया गया वर्गीकरण इस समय की समस्त विशेषताओं का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करता है समीचीन नहीं होगा। दूसरे वर्गीकरण में भी पूर्व वर्गीकरण की कुछ न कुछ विशेषताएं परिलक्षित हो सकती हैं। एक आधार पर किसी समाज को विकसित तथा दूसरे आधार पर उसी समाज को विकासशील कहा जा सकता है। इस प्रकार विकसित व विकासशील समाज की अवधारणा सापेक्षित है, कहीं न कहीं विशेषताओं के अन्तर्व्याप्त होने के कारण बॉटोमोर का भी मानना है कि "हमें समानों के विभिन्न प्रकारों के शुद्ध उदाहरणों को पाने की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

कोई भी समाज हो, सदैव गतिमान अवस्था में रहता है। विकसित समाज विकास की चरम अवस्था में है तथापि विकास की नयी-नयी अवधारणाएं सामने आती रहती हैं।

भूमण्डलीकरण उदारीकरण की अवधारणाएं एक विश्वीय समाज की संकल्पना प्रस्तुत करते हैं जो कि कहीं न कहीं विकसित समाज में ठहरे हुए विकास के लिए विकल्प हैं। अत्यधिक विज्ञान व प्रौद्योगिकी का ज्ञान पूंजी का अतिरेक, मानवीय ज्ञान, विकसित संचार माध्यम महत्वाकांक्षा विभिन्न कारक है जो विकसित समाजों का विकासशील समाजों की ओर ध्यानाकर्षित करती है। विकासशील समाज इन विकसित समाजों के लिए बाजार है जहां से वे श्रम शक्ति व प्राकृतिक संसाधनों को कच्चे माल के रूप में लेते हैं एवं उनमें पूंजी,

नीक व संचार माध्यमों का प्रयोग कर इन्हीं विकासशील समाजों में पुन: आपूर्ति करते हैं। प्रकार कच्चे माल व अत्यधिक श्रम बाहुल्यता की खपत के लिए विकासशील समाजों को कसित समाज की व नवीन ज्ञान, तकनीकी व पूँजी के अतिरेक के निवेश के लिए विकसित ाजों को विकासशील समाजों की आवश्यकता पड़ती है। नि:सन्देह दोनों समाज सदैव मान रहते हैं।

4.3 विकासशील समाज गतिमान समाज के रूप में

ीन स्टैली ने अपनी पुस्तक The Future of the Underdevelopment Countries में कासोन्मुख समाजों को गतिमान समाजों के रूप में प्रस्तुत किया है। आपके अनुसार इन ाजों में तीन ऐसी प्रक्रियाएं कार्य कर रही हैं जो इन समाजों को गत्यात्मकता प्रदान करती ये प्रक्रियाएं निम्नलिखित हैं :—

प्रत्याशाओं में होने वाली वृद्धि—विकासशील समाजों की जनसंख्या की भौतिक ाओं और प्रत्याशाओं में अत्यधिक वृद्धि हुयी है। यातायात व दूरसंचार के विस्तृत फैले हुए ने दुनिया को बहुत छोटा कर दिया है। यही कारण है कि विकसित समाज की भौतिक सुविधा विकासशील देश की जनता को भी अपना जीवन-स्तर उन्नत करने हेतु प्रेरित ती है। भारत में भी जनसाधारण की प्रत्याशाओं में क्रान्ति दिखायी देती है। यूजीन स्टैली के सार आज व्यक्ति इतना अधिक महत्वाकांक्षी हो गया है कि क्षणिक समय ने भौतिक ासिता की समस्त सुविधाएं एकत्र कर लेना चाहता है। व्यक्ति का आदर्श बंधुत्व, सादा न उच्च विचार न रह कर श्रेष्ठ निवास स्थान, कार आधुनिक जीवन से सम्बन्धित ासिताओं पर स्वामित्व हो गया है। यह सापेक्षिक वंचना की भावना व्यक्ति को आदर्श के से विचलित कर येन-केन प्रकारेण धनी बनने हेतु प्रेरित करने लगी है। जैसा कि एस. . फ्रैंकिल ने अपनी पुस्तक "The Economic Impact on Underveloped Countries' में किया है कि विकासशील देशों के जनसाधारण की इच्छाओं एवं प्रत्यक्षाओं पर विकसित की आय तथा उपभोग के स्तर का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ रहा है एवं ये लोग भी कसित देशों के नागरिकों के समान उच्च जीवन स्तर की आकांक्षा करने लगे हैं।

ोन स्टैली के अनुसार लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाने में सरकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका ायी है। ये सरकारें निर्धनता को अभिशाप मानते हुए इसके उन्मूलन के लिए प्रयासरत हैं। ने राजनीतिक एजेंडों में भी जीवन स्तर उन्नत करने के बाद प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार जन ारण को एक उच्चतर जीवन स्तर प्रदान करने का आश्वासन देकर उनकी इच्छाओं और ाशाओं के परम्परागत प्रतिमान को तोड़ दिया गया है। सभ्य व स्च्छ जीवन स्तर प्रदान करने लिए विकासोन्मुख देशों का राजनैतिक सामाजिक नेतृत्व प्रगतिवादी विचार व नीति का सरण कर रहा है जिसके लिए तीव्र आर्थिक विकास को महत्वपूर्ण माना जा रहा है। इस र विकासशील समाजों में आर्थिक विकास के माध्यम से गत्यात्मकता दिखायी दे रही है।

आधुनिकीकरण एवं सामाजिक राजनीतिक परिवर्तन—नवीन ज्ञान व तकनीकी माध्यम से विकासशील समाजों में अर्थव्यवस्था का नवीनीकरण करने का प्रयास किया जा है, साथ ही शिक्षा के माध्यम से जनता को सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन के लिए रूक किया जा रहा है। उत्पादन व वितरण में नयी-नयी तकनीकी सुविधाएं प्रयोग में लायी रही हैं। इन तकनीकी का समुचित प्रयोग हो, इसके लिए जनता की मनोवृत्तियों में भी

परिवर्तन लाने का प्रयास किया जा रहा है।

3. **प्रगतिवाद बनाम प्रगतिविरोधी वाद**—ज्ञान, शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ विकासोन्मुख समाज का एक वर्ग प्रगति उन्मुख सुधारोन्मुख हो गया जबकि एक बड़ा वर्ग अभी भी धर्म परम्परा के नाम पर प्रगति व सुधार का विरोध करता है। इन समाजों में प्रगतिवादी नेतृत्व आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता पर बल दे रहा है और इसके लिए योजनाबद्ध प्रयत्न भी कर रहा है, जबकि दूसरी ओर स्वार्थी तत्व अपनी पारम्परिक व राजनीतिक सत्ता बनाए रखने के लिए परिवर्तन, सुधार व प्रगति का विरोध कर रहे हैं। इन वैचारिक द्वन्द्वों का आधार सेमर गुन्नार मिरदल ने दक्षिण एशिया के देशों पर अपनी पुस्तक "The Asian Drama' लिखी।

उपरोक्त आधारों को विकासोन्मुख समाज में विकास की समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हुए यूजीन स्टैली का मानना है कि ये विकासशील देश सतत गतिमान हैं। विकसित देशों के समान अपने देश के नागरिकों को सभ्य व स्वच्छ जीवन स्तर प्रदान करने की आकांक्षा तो रखते हैं, लेकिन अभी इस स्तर को प्राप्त नहीं कर पाए हैं।

14.4 विकसित व विकासशील समाज में अन्तर

विभिन्न समाजशास्त्रियों ने अपने-अपने विचारों के माध्यम से अन्तर प्रस्तुत करने के तरीकों पर प्रकाश डाला है। इसमें पारसन्स के क्रिया सम्बन्धी सिद्धान्त के अन्तर्गत निश्चित संरूप विकल्प (Pattern Variables) के आधार पर भी विकसित (व्यवहार प्रतिमान) व विकासशील समाज में अंतर किया जा सकता है। पारसन्स के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख किसी भी परिस्थिति में दो विकल्प उपस्थित रहते हैं। यह उस व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह कौन से विकल्प को प्राथमिकता दे। वैसे ये विकल्प समाज विशेष की संस्कृति द्वारा स्वीकार अथवा अस्वीकार किए जाते हैं और किसी भी सांस्कृतिक व्यवस्था के आदर्शमूलक पहलू से सम्बन्धित होते हैं—

पारसन्स ने 5 प्रकार के संरूप विकल्प का उल्लेख किया है—

1. भावनात्मकता बनाम भावनात्मक तटस्थता
2. स्वहित बनाम सामूहिक हितसम्बन्धी
3. सार्वभौमिक बनाम विशिष्ट पक्षीय
4. एक पक्षीय अथवा बहु पक्षीय
5. अर्जित व प्रदत्त सम्बन्धित

उपरोक्त व्यवहार प्रतिमान के विकल्प में विकासशील समाजों में व्यक्ति का व्यवहार, हासलिट के अनुसार भावनात्मक अधिक होता है। व्यक्ति धर्म परम्परा पर अधिक आश्रित होने के कारण सामाजिक प्रदत्त प्रस्थिति पर अधिक आश्रित रहता है। विकासशील समाज में विशिष्ट पक्ष सम्बन्धी विशेषता पायी जाती है, जबकि विकसित समाज में सार्वभौमिक पक्ष प्रधान होता है। इसी तरह आर्थिक तथा सामाजिक कृत्य बहुपक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि ये कृत्य विकसित समाजों में एक पक्षीय होते हैं।

निष्कर्षत: विकसित समाजों में लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु सार्वभौमिक प्रतिमान तो अपनाया जाता है। परन्तु लोगों की भूमिका में श्रमविभाजन व विशेषीकरण की प्रधानता भूमिका को विशिष्ट

देती है। अर्जित योग्यता समाज में व्यक्ति की प्रस्थिति निर्धारित करती है।

ने नवाचर तथा विभिन्न संस्थाओं में अधिकतर सत्ता के आधार पर विकसित तथा कासशील समाज में अंतर को स्पष्ट किया है।

कसित व विकासशील समाजों के मध्य निम्नलिखित आधारों से भी अंतर को प्रस्तुत किया सकता है—

आर्थिक संरचना के आधार पर

सामाजिक संरचना के आधार पर

जनसंख्यात्मक संरचना के आधार पर

प्रौद्योगिकीय विशेषता के आधार पर

राजनैतिक व प्रशासकीय विशेषताओं के आधार पर

आर्थिक संरचना के आधार पर—विकसित समाज में द्वैतीयक व तृतीयक उद्योगों निर्भरता अधिक होती है जबकि इसके विपरीत विकासशील समाज में अधिकांश जनसंख्या निर्भरता प्राथमिक उद्योगों पर होती है।

विकसित समाजों में पूंजी का अतिरेक पूंजी निवेश में सहायक है जबकि विकासशील समाजों में उद्योगों में कम पूंजी का विनियोग किया जाता है।

श्रेष्ठ तकनीकी का प्रयोग विकसित समाज में प्रति इकाई उत्पादन लागत को कम कर देती है। जबकि विकासशील समाज में प्रति इकाई उत्पादन लागत अधिक होती है।

विकसित समाजों में उत्पादन की बड़ी-बड़ी इकाइयों का संगठन किया जाता है जबकि विकासशील समाजों में उत्पादन की छोटी-छोटी इकाइयों का संगठन किया जाता है।

विकसित समाजों में अधिकतर निर्मित माल का निर्यात किया जाता है जबकि विकासशील समाजों में कच्चे माल का निर्यात किया है।

विकासशील समाजों से क्रय किये गये माल को विनिर्मित कर पुनः विकासशील समाजों में अधिक लाभ के साथ बेचा जाता है जबकि विकासशील देश अपने ही कच्चे माल की तैयार सामग्री पर अधिक व्यय करने पर मजबूर होते हैं।

विकसित समाजों में प्रति व्यक्ति वास्तविक आय विकासशील समाज की प्रति व्यक्ति आय से काफी अधिक होती है। उदाहरण के लिए 2000 में स्विटरजरलैंण्ड की प्रति व्यक्ति आय 38,120 डालर थी, अमेरिका की 30,600 डालर थी जबकि इसी अवधि में भारत की 460 डालर, बांग्लादेश की 380 और नेपाल की 220 डालर थी।

उचित शिक्षा वे प्रशिक्षण से विकसित समाज में श्रमिकों की कार्यक्षमता अधिक होती है, जबकि विकासशील समाजों में कार्यक्षमता कम होती है।

विकसित देशों की निर्यात पर कम निर्भरता होती है, जबकि विकासशील देश अपनी आवश्यकता पूर्ति हेतु निर्यात पर आश्रित होते हैं।

विकसित देशों में बैंकिंग सुविधाएं उपलब्ध रहती हैं जबकि विकासशील देशों में प्रायः अभाव रहता है विकसित देशों में 70% लोग बैंकिंग सुविधा का लाभ उठा पाते हैं, जबकि विकासशील देशों में मात्र 30%।

- विकसित व विकासशील देशों के मध्य धन के वितरण पर असमानता पायी जाती हैं। विकसित देशों में धन की विषमता काफी कम होती है तथा धन के वितरण की कोई समस्या नहीं होती जबकि विकासशील समाजों में राष्ट्रीय आय का अधिकांश भाग चन्द लोगों के हाथों में केन्द्रित होता है, और अधिकांश जनता अभावग्रस्त होती है।
- विकसित समाजों में बेरोजगारी की समस्या नये रूप में होती है जबकि विकासशील समाजों में बेरोजगारी व अर्द्ध बेरोजगारी की स्थिति बनी रहती है।
- विदेशी व्यापार में अनुकूल प्रभावशाली स्थिति होती है जबकि विकासशील समाजों में विदेशी व्यापार में प्रतिकूल स्थितियों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

सामाजिक संरचना के आधार पर अंतर—

- विकसित समाज में सामाजिक नियंत्रण के साधन औपचारिक होते हैं कानून की महत्ता पायी जाती है, जबकि विकासशील समाज में सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधन अधिक प्रभावकारी होते हैं। धर्म तथा परम्परा की महत्ता व्यक्ति के जीवन में अधिक पायी जाती है।
- समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के समान होती है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त होती है, जबकि विकासशील समाजों में स्त्रियों को निम्न स्थिति ही प्राप्त होती है और इन पर विभिन्न प्रकार के पारम्परिक प्रतिबन्धों का नियंत्रण रहता है।
- विकसित समाज में शिक्षा के प्रचार प्रसार पर बल दिया जाता है। साक्षरता की दर 90% से अधिक पायी जाती है जबकि विकासशील देशों में सभी के लिए शिक्षा की व्यवस्था का प्रयास तो किया जाता है, परन्तु शिक्षा का स्तर 30% के आस पास रहता है।
- विकसित समाजों में सामाजिक जीवन में संघर्ष प्रस्थिति को ऊँचा करने के लिए होता है जबकि विकासशील समाज में सामाजिक जीवन में संघर्ष अस्तित्व को कायम रखने के लिए होता है।
- विकसित समाज में अर्जित प्रस्थिति की महत्ता होती है जबकि विकासशील समाज में प्रदत्त प्रस्थिति अब भी महत्वपूर्ण है।
- विकसित समामों में लोगों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक होता है जबकि विकासशील समाजों में अंधविश्वास सामाजिक प्रतिबंध और रूढ़िवादिता पायी जाती है।

जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताओं में अंतर—

- विकसित समाज में औसत जनसंख्या की बहुलता होती है, जबकि विकासशील समाज में जनसंख्या की बहुलता होती है।
- विकसित समाजों में जन्म दर व मृत्यु दर औसत होती है जबकि विकासशील समाजों में जन्मदर व मृत्युदर दोनों में अधिकता पायी जाती है।
- विकसित समाज में जनसंख्या का घनत्व कम होता है विश्व में सन 2000 में औसत जन घनत्व 47 प्रति वर्ग किमी था। यू.एस.ए. में 31, कनाडा, आस्ट्रेलिया में मात्र 3

प्रति वर्ग किमी था जबकि 2001 में भारत में जनसंख्या घनत्व 324 प्रति वर्ग किमी था।

- विकसित समाजों में औसत प्रत्याशित आयु अधिक होती है जबकि विकासशील समाजों में कम। भारत में 2000 में यह औसत प्रत्याशित आयु 64 वर्ष थी जबकि इसी अवधि में विकसित देशों में 75 वर्ष से अधिक थी।
- विकसित समाजों में आश्रितों की जनसंख्या कम होती है जबकि विकासशील समाजों में अधिक होती है।
- विकसित समाजों में जनसंख्या का अधिकांश भाग नगरों में रहता है जबकि विकासशील समाजों में ग्रामों में।
- विकसित समाजों में आय का प्रमुख भाग विनियोजन पर खर्च होता है जिसके कारण उत्पादन की मात्रा तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होती है जबकि विकासशील समाजों में आय का प्रमुख भाग भोजन तथा आवश्यक वस्तुओं पर खर्च होता है।

प्रौद्योगिकीय विशेषताओं में अंतर--

- विकसित समाज में इंजीनियरिंग तथा प्रौद्योगिकीय विकास के साधन अधिक सुलभ होते हैं जबकि विकासशील समाज में प्रौद्योगिकीय विकास के साधन कम उपलब्ध हैं।
- विकसित समाजों में कृषि कार्य में नए-नए उपकरण प्रयोग में लाए जाते हैं। खाद्यानों के बेचने के लिए उचित बाजार का प्रबन्ध होता है जबकि विकासशील समाजों में कृषि कार्यों के उपकरण परम्परागत हैं। बाजार की उचित व्यवस्था नहीं है। यही कारण है कि ऋण ग्रस्तता पायी जाती है।
- विकसित समाजों में यातायात व संचार के साधन अधिक विकसित हैं तथा पर्याप्त है जबकि विकासशील समाजों में यातायात व संचार के साधन अपर्याप्त हैं तथा वे विकसित नहीं हैं।
- उत्पादन में नयी-नयी प्रविधियों के प्रयोग से औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया में तीव्रता है, जबकि विकासशील समाजों में उत्पादन में पुरानी ही प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है, फलस्वरूप औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया भी धीमी है।
- विकसित समाजों में विकसित प्रौद्योगिकीय के कारण चरम अंशों का विशेषीकरण जीवन के प्रत्येक पहलू में पाया जाता है जबकि विकासशील समाजों में विशेषीकरण के साधन अपर्याप्त हैं। विशेषीकरण के लिए प्रयत्न किया जा रहा है।

राजनैतिक व प्रशासकीय विशेषताओं में अंतर—

- विकसित समाजों में जनता अधिक शिक्षित होने के कारण राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूक होती है जबकि विकासशील समाजों में राजनैतिक अधिकारों के प्रति जनता में अज्ञानता बनी रहती है।
- विकसित समाज शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विश्व राजनीति में अपनी पहचान व प्रभुत्व रखता है। इसके विपरीत विकासशील समाज एक कमजोर राष्ट्र के रूप में जाना जाता है।

- विकसित समाजों में विकाशील समाजों की तुलना में अधिक राजनीतिक स्थिरता पायी जाती है। विकासशील समाजों में शीघ्र सरकारों के बदलने से विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है।
- विकसित समाजों में प्रशासनिक व्यवस्था चुस्त होती है। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार नहीं पाया जाता है जबकि विकासशील समाजों में योग्य शासन का अभाव होता है। सार्वजनिक जीवन में चपरासी से लेकर मंत्री तक भ्रष्टाचार में लिप्त दिखाई देते हैं। राजनीति व प्रशासनिक भ्रष्टाचार पर प्रो० लीविस का मानना है कि "पिछड़े हुए राष्ट्रों में आयोजकों का यह प्रथम उद्देश्य होना चाहिए कि वे शैक्षणिक प्रशासन की दृष्टि से ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करे जो योजना के कार्यों को समझने के योग्य हों तथा अयोग्य व भ्रष्टाचारी लोगों को समाप्त कर सकें।
- विकसित देश विकासशील देशों की अपेक्षा श्रेष्ठ तकनीक व मानव पूंजी के कारण प्रतिस्पर्द्धा में आगे निकल जाते हैं जबकि विकासशील समाजों के सामने विकसित समाज द्वारा ही प्रौद्योगिकी निर्यात एवं विभिन्न प्रकार के प्रतिबन्धों के माध्यम से बाधाएं उत्पन्न की जाती हैं।

14.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई विकसित व विकासशील समाजों के आपसी सम्बन्धों पर आधारित है। इस इकाई के माध्यम से हम विभिन्न समाजों के प्रति समाजशास्त्रियों के विचारों से अवगत हुए और दोनों समाजों के आपसी सम्बन्धों से भी। यूजीन स्टैली के विचारों के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया कि विकासशील समाज विकसित समाज की श्रेणी में आने के लिए क्यों प्रेरित हैं व उनके सामने क्या बाध्यताएं हैं। इकाई के अंत में हमने विकसित व विकासशील समाज के मध्य आर्थिक, सामाजिक, जनसंख्यात्मक, प्रौद्योगिकी, राजनीतिक व प्रशासनिक आदि क्षेत्रों के मध्य अंतर का भी अध्ययन किया।

14.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. टी. बी बॉटोमोर - सोशियालोजी पृ0 117
2. यूजीन स्टैली - द फ्यूचर ऑफ द अण्डर डेवलप्ड कण्ट्रीज
3. गुन्नार मिर्डस - ए एशियन ड्रामा (3 वाल्यूम्स)
4. हासलिट - द पॉस्पेक्टस ऑफ इण्डियाज एकोनॉमिक ग्रोथ पृ0 260
5. बी. एफ. हासलिट्स - सोशियालाजिकल ऑस्पेक्ट आफ एकोनामिक ग्रोथ पृ0 31, 32, 33,
6. प्रो. मिराज अहमद - विकास का समाजशास्त्र

14.7 प्रश्नोत्तर

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

प्र. 1 विकसित व विकासशील समाजों के सम्बन्धों पर संक्षिप्त लेख लिखें।

प्र. 2 "विकासोन्मुख समाज गतिमान समाज है।" यूजीन स्टैली के सन्दर्भ में इस कथन

क्राई 15 विकासशील समाजों की समस्याएँ

.0 उद्देश्य

.1 प्रस्तावना

.2 विकासशील समाज की परिभाषा

.3 समस्याएं

15.3.1 समस्या की परिभाषा

15.3.2 समस्याओं का वर्गीकरण

.4 आर्थिक समस्याएं

15.4.1 गरीबी

15.4.2 बेरोजगारी

15.4.3 पूँजी की कमी

.5 सामाजिक समस्याएं

15.5.1 पुरानी आदतें, विचार पद्धतियाँ एवं संस्थाएं

15.5.2 विकास की प्रबल प्रेरणा एवं इच्छा की कमी

15.5.3 सहयोग एवं सहयोग की क्षमता का अभाव

15.5.4 भाषा

15.5.5 साम्प्रदायिकता

15.5.6 जनसंख्या विस्फोट

15.5.7 रूढ़ियाँ एवं परम्पराएं

.6 राजनैतिक बाधाएं

15.6.1 अप्रशिक्षित अयोग्य एवं भ्रष्ट प्रशासन

15.6.2 कर्मचारी तंत्र की भ्रष्टता

15.6.3 राजनैतिक अस्थिरता

15.6.4 राज्य व्यवस्था की दयनीय दशा

15.6.5 निकम्मी एवं कमजोर सरकारें

.7 सांस्कृतिक कारक

15.7.1 प्रौद्योगिकी

15.7.2 वैज्ञानिक दृष्टिकोण

.8 पर्यावरणीय समस्या

15.8.1 प्रकृति का असहनीय शोषण

.9 सारांश

.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

.11 प्रश्नोत्तर

15.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप:

- आप विकसित समाज की परिभाषा दे सकेंगे।
- विकासशील समाज की समस्याएँ स्पष्ट कर सकेंगे।
- विकसित और अल्प विकसित समाजों के बीच अन्तराल क्यों है। इसकी तुलना कर सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

विकासशील समाज विकसित समाजों से पीछे हैं, कम विकसित हैं। इसलिए उन्हें अल्प विकसित समाज कहा जाता है। उनके इस अल्प विकास का कारण कतिपय समस्याएं हैं, कुछ कमियां हैं और कुछ अभाव। इन समस्याओं कमियों एवं अभावों का विश्लेषण इस इकाई में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

15.2 विकासशील समाज की परिभाषा

विकासशील समाज वे समाज हैं जो विकास की ओर अग्रसर हैं और इस ओर बढ़ते रहेंगे जब तक कि वे विकास के शिखर तक न पहुँच जायँ। विकास की अन्तिम मंजिल पर पहुँच कर वे विकसित समाज की कोटि में स्थान पा सकेंगे। ये वे समाज हैं जिन्होंने विकास का कार्य आरम्भ करते आगे बढ़ने लगे हैं।

15.3 समस्याएँ

15.3.1 समस्या की परिभाषा — विकास की समस्याओं को ऐसी स्थितियों, कमियों और अभावों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है इन्हें विकास की बाधाएं भी कहा जा सकता है।

समस्या एक विशिष्ट दशा है जो समाज के लिए हितकर नहीं होती परन्तु यह विशिष्ट दशा तब तक समस्या का रूप नहीं ले सकती जब तक कि समाज जन साधारण उसे समस्या के रूप में नहीं देखते हैं। बहुत सी समस्याएं समाज में अपना अस्तित्व रखती हैं, पर उनकी तरफ जन साधारण का ध्यान आकृष्ट नहीं होता है और इसलिए उनकी चिंता उन्हें नहीं सताती है फलत: उन्हें समस्या का दर्जा नहीं दिया जाता। कोई विशिष्ट स्थिति जब जनता के लिए चिंता का विषय बन जाती है और समाज पर प्रतिकूल प्रभाव डालने लगती है और जन साधारण जब इनके प्रतिकूल प्रभाव के प्रति सजग हो जाता है तब ही उसे समस्या माना जायेगा। समस्याएं अवांछित होती हैं क्योंकि ये समाज पर गहरा दुष्प्रभाव डालती हैं। इनकी भूमिका दुष्क्रियात्मक होती है। इसके अतिरिक्त कोई एक विशिष्ट स्थिति समस्या है तो उसकी कसौटी यह है कि एक सार्थक संख्या द्वारा उसे समस्या के रूप में मान्यता मिली हो। गतिरोध अथवा अवरोध को समस्या के अन्तर्गत रखा जाता है। कभी अथवा अभाव भी एक समस्या है।

15.3.2 **समस्याओं का वर्गीकरण** -प्रस्तुत इकाई में उन कमियों, अभावों एवं बाधाओं का विवेचन करना उद्दिष्ट है जो विकासशील देशों के विकास को मन्द करती है और विकास के लिए अनुकूल नहीं होती है। विपरीत स्थितियां विकास में बाधक हैं। इन विपरीत स्थितियों का संबंध एक क्षेत्र से न होकर कई क्षेत्रों से है। अत: इन समस्याओं को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं पर्यावरणीय क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है। सुविधा के लिए इस इकाई में विकास से संबंधित आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय समस्याओं पर चर्चा होगी। क्योंकि ये सभी अलग अलग और सम्मिलित रूप से विकास को अवरूद्ध करती हैं विकास प्रक्रिया को आगे बढ़ने से रोकती हैं। और विकास अपनी वांछित त्वरित गति से आगे नहीं बढ़ पाता। इन समस्याओं पर अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों, राजनीतिशास्त्रियों और पर्यावरण विदों ने विचार विमर्श किया है। 'एशियन ड्रामा' नामक अपनी कृति में गुन्नार मिर्डाल ने 'द फ्यूचर आव द अन्डर डिवलप्ड कन्ट्रीज' में यूजीन स्टैली ने, जी हैम्विक द्वारा सम्पादित "डायन्मिक्स आव डिवलपमेन्ट" नामक पुस्तक में कीनलेसाइड ने अपने एक लेख में इन समस्याओं का उल्लेख किया है।

क्या कारण है कि विकासशील देश विकास की योजनाओं का निर्माण करके तथा विकास के लिए पर्याप्त धन व्यय करने के बाद भी आशानुकूल विकास नहीं कर पाते। इस विकास के बाधक तत्व अनेक हैं।

15.4 आर्थिक समस्याएँ

15.4.1 **गरीबी** -गरीबी के दुष्चक्र में फंसे अल्प विकसित देश गरीबी की स्थिति से उबर नहीं पाते हैं वे गरीबी के दल-दल में सदैव फँसे रहते हैं। गरीबी के कारण विकासशील समाज में आय कम होती है, उपभोग का स्तर नीचा होता है गरीब जनों के भोजन, वस्त्र और शिक्षा आदि का ठीक से प्रबन्ध नहीं हो पाता है। श्रमिकों की कार्य कुशलता गरीबी से प्रभावित होती है। कार्यकुशलता की कमी का असर उत्पादन क्षमता पर पड़ता है जिससे उत्पादन में कमी आती है। और भी अधिक आय कम होने से बचत पर भी विपरीत प्रभाव पड़ेगा जिससे पूंजी निर्माण में कमी आना स्वाभाविक है। पूंजी की कमी का परिणाम होना विनियोग में ह्रास। विनियोग में ह्रास का अर्थ उत्पादन में ह्रास। उत्पादन में ह्रास का अर्थ पुन: गरीबी। इस प्रकार जब कोई समाज गरीबी के भँवर में उलझ जाता है तो आसानी से उससे बाहर नहीं आ पाता। गरीबी के गतिरोध से मुक्ति पाकर ही पूंजी निवेश बढ़ाकर कोई देश विकसित हो सकता है। उत्पादन बढ़ाकर तथा बाजार का विस्तार करके विकास के लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।

विकासशील देशों के समाजों में अधिकतर समाज औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र हुए हैं। औपनिवेशिक शासनकाल में वे देश औपनिवेशित देशों से धन और पूँजी अपने देश में समेट ले गये और उन्हें कंगाली की हालत में छोड़ गये। इस कारण भी विकासशील समाज गरीबी की हालत में बने रहे। गरीबी एक अभिशाप है क्योंकि उसमें सवयं बढ़ते रहने की प्रवृत्ति होती है।

गरीबी के कुचक्र को उसके भाग पक्ष ओर पूर्ति पक्ष के फ्लोचार्ट द्वारा प्रदर्शित किया जा रहा है।

पूर्तिपक्ष
↓
कम वास्तविक आय
↓
कम बचत क्षमता
↓
कम बचत
↓
कम विनियोग
↓
कम उत्पादकता
↓
कम वास्तविक आय

गरीबी के कुचक्र का मांग पक्ष

कम वास्तविक आय
↓
कम क्रय शक्ति
↓
कम विनियोग प्रेरणा
↓
कम विनियोग
↓
कम उत्पादकता
↓
कम वास्तविक आय

गरीबी के कुचक्र के मांग पक्ष एवं पूर्ति पक्ष पर विचार करने से जो परिणाम सामने आता है उससे यही सिद्ध होता है कि गरीबी पुन: गरीबी को जन्म देती है। इस चक्र को तोड़कर या भेदकर ही विकासशील देश विकसित होने का स्वप्न देख सकते हैं।

उदाहरण के लिए भारत एक विकासशील समाज है। गरीबी विकास पर प्रतिकूल प्रभाव तो डालती ही परन्तु यह अन्य अनेक सामाजिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं की जननी है कुपोषण, बुरा स्वास्थ्य, भिक्षावृत्ति, वेश्यावृत्ति, ओर बेरोजगारी जैसी समस्याएं गरीबी की देन है। अर्थ व्यवस्था, गरीबी और शिक्षा के बीच गहरा संबंध होता है। निरक्षरता का सीधा संबंध गरीबी से है। उच्च शिक्षा में अनियोजित वृद्धि के फलस्वरूप शिक्षित बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है। गरीबी एक प्रकार की बदनसीबी है परमात्मा मौत दे दे परन्तु गरीबी न दे। गरीबी की व्यथ कथा अजब दारूण है।

गरीबी छोटे छोटे बच्चों को श्रमिक बना देती है गरीब परिवार के लोग अपने बच्चों की कमाई पर रहने के लिए मजबूर है। जब बालकों की उम्र स्कूल जाने की होती है उन्हें मजदूर के रूप में काम करना पड़ता है।

गरीबी के कारण गांव के लोग शहर में कमाई के लिए जाने लगते हैं और कुछ शहरों में आबादी बेहद बढ़ जाती है जिससे शहरी गरीबी, बेरोजगारी, भीड़ भाड़ प्रदूषण, मलिन

बस्तियां आदि जैसी समस्याओं का आविर्भाव हुआ है।

15.4.2 बेरोजगारी - बेरोजगारी विकासशील समाजों की एक समस्या है । बेरोजगार आय रहित होते हैं । अनेक स्वस्थ पुरूष और स्त्रियां रोजगार न मिलने से भीख मांगते देखे जाते हैं। भिक्षावृत्ति बेरोजगारी का प्रत्यक्ष परिणाम है बेरोजगार गरीब होने के लिए बाध्य हो जाते हैं भरपेट खाना न मिलने से इनकी कार्य कुशलता कम हो जाती है। बेरोजगार जब बीमार पड़ता हैं तो अपना इलाज भीनहीं करा पाता है जिससे वह रोग ग्रस्त बना रहता है। रोग ग्रस्त एवं कार्य दक्षता से हीन मानव संसाधन से किसी भी समाज का विकास नहीं हो सकता है।

भारत जैसे विकासशील समाज में बड़ी संख्या में बेरोजगारी ऑपनिवेशिक विरासत के रूप में मिली है। बेरोजगारी का सामना रोजगार प्रदान करने वाली योजनाओं द्वारा किया जा सकता है। विकासशील समाजों के पास बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करने की क्षमता नहीं होती है। पूंजी की कमी के कारण भारी उद्योगों को लगा पाना संभव नहीं होता। रोजगार के इतने द्वार नहीं खोले जा सकते कि सबको रोजगार मिल सके। बेरोजगारी मनुष्य को असहाय बना देती है। गरीबी के साथ बेरोजगारी भी विकास को अवरूद्ध करती है। सरकार लघु एवं कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहित कर सकती है परन्तु इससे भी बेरोजगारों की खपत न हो सकेगी। जनसंख्या की वृद्धि के कारण पहले से मौजूद बेरोजगारों की संख्या में वृद्धि होती रहती है गरीबी, बेरोजगारी ओर जनाधिक्य में सीधा एवं गहरा संबंध है।

15.4.3 पूंजी की कमी -

अल्प विकसित देशों में विशेषकर भारत में पूँजी का अभाव परिलक्षित होता है। श्रम की बहुलता है पूँजी की कमी अल्प विकास के लिए उत्तरदायी है। पूँजी का निर्माण बचत से होता है। जब बचत से पूंजी का निर्माण नहीं हो पाता है अल्प विकसित समाजों को विदेशी पूंजी पर निर्भर होना पड़ता है अथवा उधार लेने के लिए विवश होना पड़ता है। जब विदेशी पूंजी अल्पविकसित देशों में लगाई जायेगी तो उसका अधिकांश लाभ विदेशी कम्पनियों, उद्यमियों एवं साहसियों को होगा। अल्प विकसित देशों में प्रति व्यक्ति आय कम होने के कारण बचत पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। बचत के अभाव में पूंजी निर्माण कैसे हो सकता है।

15.5 सामाजिक समस्याएँ

15.5.1 पुरानी आदतें, विचार पद्धतियां एवं संस्थायें– विकासशील देशों के विकास में उक्त सामाजिक तत्व बाधक रहे हैं इनके रहते वैज्ञानिकता, प्रत्यक्षवादिता और तार्किकता का प्रसार एवं प्रचार नहीं हो पाता। फलत: अनेक प्रकार के अन्ध विश्वास एवं तर्करहित विचार समाज में व्याप्त हो जाते हैं जो विकास शील समाजों के सदस्यों की इच्छा एवं क्रिया को कमजोर कर देते हैं उन्हें निष्क्रिय बना देते हैं। निष्क्रियता और आलस्य विकास को पीछे की ओर ढकेलते हैं। सदस्यों में पविर्तन का भय पैदा कर देते हैं। निष्क्रियता के साथ परिवर्तन का भय विकास को बाधित कर देते हैं।

15.5.2 विकास की प्रबल प्रेरणा और इच्छा की कमी -यदि किसी समाज के सदस्यों में विकास की प्रबल प्रेरणा और इच्छा मौजूद हो तो विकास गति तीव्र होगी क्योंकि जहां इच्छा होती है वहां मार्ग अपने आप प्रशस्त हो जाता है। सरकार और समाज विकास की लाख

कोशिश करें परन्तु विकास की प्रेरणा एवं इच्छा के बिना वांछित तीव्र विकास संभव नहीं है। अगर समाज के लोग अपनी दीन हीन दशा को सुधारना नहीं चाहते हैं तथा उनकी प्रत्याशाओं का स्तर निम्न है तो विकास की दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।
इससे आगे वे परिवर्तन और नवीनता से भयभीत हैं और घबराते हैं उनकी परम्पराएं तथा प्रथाएं विकास के प्रतिकूल हैँ, उनमें विज्ञान विरोधी प्रवृत्ति विद्यमान हैं तो विकास में बाधा अवश्य उत्पन्न होगी। उक्त बिन्दु विकास की मन्दगति के लिए एक बड़ी सीमा तक उत्तरदायी है।

15.5.3 सहयोग एवं सहयोग की क्षमता का अभाव -
किसी समाज का विकास उसके नागरिकों के सहयोग पर आश्रित है। जहां सहयोग की भावना और सहयोग की क्षमता का अभाव है समाज कैसे उन्नति कर सकता है। सामूहिक प्रयत्न और परिश्रम से विकास की गति तीव्र होती है समाजों की संरचना में जहाँ जाति, प्रजाति एवं वर्ग के आधार पर श्रेणीकरण पाया जाता है वहां विभिन्न श्रेणियों के बीच पूर्वाग्रह, पक्षपात और सामाजिक दूरी जैसे तत्व उभरते हैं और उभरकर सहयोग और सहकारिता के विकास में बाधा उत्पन्न करते हैं और सामूहिक प्रयत्न एवं परिश्रम के अभाव से विकास में बाधा पड़ती है अकेले किसी भी कार्य को करना सामाजिक प्रवृत्ति के प्रतिकूल है। मिल जुल कर दूसरों के सहयोग से बड़े से बड़े कार्य को पूरा किया जा सकता है। जाति, धर्म, भाषा, नृजातीयता और क्षेत्र की धारणाएं संकीर्ण धारणाएं हैं और ये सामाजिक पृथकता और सामाजिक दूरी की जननी है । सामाजिक पृथकता और सामाजिक दूरी विकास की गति को मन्द करते हैं तथा विकास की धार को मोथरा कर देते हैं।

15.5.4 भाषा - भाषागत भेद विभिन्न भाषा भाषी लोगों में मनमुटाव, खिंचाव, तनाव एवं दुराव पैदा करते हैं ये विवाद सर्जक भी हैं। अत: इनके रहते त्वरित विकास एक सपना बना रहेगा ।

15.5.5 साम्प्रदायिकता -धर्म के आधार पर साम्प्रदायिक समस्याओं को बढ़ावा मिला है। विभिन्न धर्मों के बीच संघर्ष पैदा हुआ है। साम्प्रदायिकता के बढ़ावा के विषय में मिर्डाल कहते हैं, ''ढुलमुल नीति वाले राज्य'' की नीति ने और साम्प्रदायिक संगठनों के विरूद्ध कठोर निर्णय न लेने की प्रवृत्ति ने सम्प्रदायवाद की समस्याओं को बढ़ाया है। साम्प्रदायिक संघर्ष विकास को काफी पीछे ढकेलते हैं इनसे धन जन की हानि होती है।

15.5.6 जनसंख्या विस्फोट -जनसंख्या विस्फोट एक ऐसा सामाजिक कारक है जिसने विकास को अवरूद्ध करने वाली अन्य समस्याओं को जन्म दिया है। इससे विकास और कल्याण कार्यक्रम के लाभ जनसंख्या के अनुपात में लोगों तक नहीं पहुंच सकते हैं । जनाधिक्य के कारण विकास कार्यक्रमों से मिले लाभ संभावना से बहुत नीचे होते हैं। जनसंख्या में वृद्धि से गरीबी, बेरोजगारी और निरक्षरता की समस्या और गहराती जाती है। उक्त समस्याओं से प्रभावित लोगों की संख्या में भी वृद्धि होती है जनाधिक्य से भिक्षावृत्ति एवं वेश्यावृत्ति, बाल अपराध एवं अपराध जैसी समस्याएं पैदा होती हैं जो विकास में बाधा डालती है।

बढ़ती हुई जनसंख्या विकासशील समाजों के आर्थिक एवं सामाजिक विकास के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। कहने की जरूरत नहीं है कि अल्प विकसित देशों की सभी प्रमुख समस्याओं का मूल यही समस्या है। जनसंख्या वृद्धि से राष्ट्रीय का एक बड़ा भाग बढ़ी

नसंख्या के उपभोग पर ही व्यय हो जाता है। अत: विनियोग तथा बचत की मात्रा को ढ़ाना बड़ा ही कठिन हो जाता है। इससे पूंजी निर्माण दर में भी कमी आती है। क्योंकि मसे आय और उपभोग के बीच अन्तर निरन्तर बढ़ता जायेगा। पूंजी निर्माण की कमी से ल्पविकसित समाजों में विकास की दर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगता है।

5.5.7 **रूढ़ियां एवं परम्परायें** -विकासशील समाजों में ऐसी अनेक रूढ़ियां एवं परम्परायें ई जाती हैं जिनके कारण विकास प्रक्रिया ठंड पड़ जाती हैं । इन समाजों के सदस्यों के म्परावादी दृष्टिकोण के कारण नवीन उत्पादन प्रणालियों का अपनाना कठिन हो जाता है। ये ग प्राचीन उत्पादन प्रणालियों से इतने चिपके होते हैं कि नई चीजों को अपनाना पसन्द ीं करते हैं। परम्पराएं एवं रूढ़ियां प्रत्येक परिवर्तन का प्रबल विरोध करती हैं। जिससे कास कार्य लटक जाता है। इन प्रचलित परम्परागत रीति रिवाजों एवं संस्थाओं के कारण ग्य साहसियों के विकास में बाधा पड़ती है। परम्परागत और पिछड़े समाजों में साहसी ों के विकास एवं प्रयोग में अड़चनें आती हैं।

5.6 राजनैतिक बाधाएँ

5.6.1 **अल्प विकसित अथवा विकासशील समाजों में अप्रभावशाली, अप्रशिक्षित योग्य एवं भ्रष्ट प्रशासन** - अल्प विकसित अथवा विकासशील समाजों में अप्रभावशाली, प्रशिक्षित अयोग्य एवं भ्रष्ट प्रशासन विकास में रोड़ा अटकाते हैं। प्रगतिवादी नीतियों को पनाने एवं विवेक सम्मत योजनाओं को कार्यरूप में परिणत करने पर विकास अवलम्बित उक्त दोनों कार्य प्रशासन को पूरा करना है। अयोग्य एवं भ्रष्ट प्रशासन से इन्हें पूरा करने आशा नहीं की जा सकती। ऐसे में विकास की सम्भावना क्षीण हो जाती है। आज कास का उत्तरदायित्व अधिकतर कर्मचारी तंत्र अथवा नौकरशाही के हाथों में सुपुर्द है। तंत्र अनेक दोषों से आक्रान्त हो चुका है। तद्नूभूति का अभाव इसका प्रथम दोष है। शिष्ट वर्गवाद नैत्यकवाद (नियमित पालन किये जाने वाले कार्यों की श्रृंखला में निष्ठा), लफीता शाही (दफ्तर के जटिल नियम जो प्रगति में बाधा डालते हैं। इस शब्द की उत्पत्ति लाल फीतों से हुई है जो दफ्तर के प्रलेखों को बांधने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं) र शासकीय आलस्य (एक मेज से दूसरी मेज पर फाइल जाने में वर्षों लग जाते हैं) दि नौकरशाही के अन्य दुर्गुण हैं। इन दुर्गुणों से घिरे कर्मचारी तंत्र की न तो विकास में चे रह जाती है। और न ही वह विकास के प्रति उत्तरदायी रह जाता है। कर्मचारी तंत्र पर न सरकार का अंकुश है और न ही प्रजातांत्रिक नियंत्रण क्योंकि यह जनसाधारण से कर रह गया है। सरकार अथवा सत्ताधारी वर्ग अपने निहित स्वार्थों के ।

5.6.2 **कर्मचारी तंत्र की भ्रष्टता** -कर्मचारी तंत्र के अनुशासित करने में अक्षम है । प्रशासन ईमानदारी की कमी विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में बाधक हैं। विकास का अधिकांश विकास कार्य में लगे अधिकारियों की जेब मे चला जाता है। अनुमानत: विकास हेतु र्धारित सौ रूपयों में से औसतन 60 से 80 प्रतिशत धन विकास से जुड़े छोटे बड़े चारियों में बँट जाता है और शेष 40 से 20 प्रतिशत धन विकास कार्यों में व्यय होता ऐसी हालत में विकासशील समाजों में तीव्र एवं वांछित विकास कैसे हो सकता है। जब ा ही चोर अथवा भ्रष्ट हो तब प्रजा का कल्याण और विकास एक सपना बनकर रह

जायेगा। कार्यपालिका भ्रष्ट हो यहां तक तो गनीमत है जब न्यायपालिका भी भ्रष्ट हो तो प्रगति और विकास और भी कम होगा। जहां न्याय बिकता हो वहां विकास की बात करना व्यर्थ है। जहां घूसखोरी को सुविधा शुल्क कहा जाय वहां विकास कैसे हो सकता है। विकास कार्य में लगे लोगों की धन लिप्सा विकास कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार विकास के लिए सबसे बड़ी चुनौती है।

15.6.3 राजनैतिक अस्थिरता -सरकार के स्वरूप तथा उसमें मानवीय स्वतंत्रता किस हद तक है विकास को प्रभावित करते हैं। विकास के लिए स्थाई सरकार का होना अति आवश्यक है। यदि सरकारों टिकाऊ नहीं हैं और उनमें जल्दी जल्दी बदलाव होता है तो विकास प्रतिकूल प्रभाव के घेरे में आ जाता है। बदलती सरकारें विकास के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहराई जा सकतीं। जब यह मालूम हो जाता है कि सरकार गिर जानी है तो विकास में एक तो उसकी दिलचस्पी नहीं रह जाती और दूसरे वे विकास से अपना पल्लू झाड़ लेती है। सरकारों के बदलने से विकास काय्र अधूरे रह जाते हैं। जब एक सरकार आकर विकास कार्यक्रमों को आगे बढ़ाती है और सरकार के गिर जाने से उसे विकास कार्य करने का अवसर नहीं मिलता। इसी बीच दूसरी सरकार आती है ओर मंद विकास के लिए पहले की सरकार पर दोष मढ़ देती है और स्वयं को पहली सरकार की आड़ में दोष मुक्त कर लेती है। अत: राजनैतिक अस्थिरता विकास के कार्य के लिए कोई अनुकूल दशा नहीं है।

15.6.4 राज्य व्यवस्था की दयनीय दशा - विकासशील समाजों/ दोषों की राज्य व्यवस्था यदि दयनीय अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं तो विकास से जुड़ी समस्याओं के साथ अन्य सभी समस्याएं भी हल नहीं हो पाती हैं। भारत एक विकासशील देश है। इसके उदाहरण के द्वारा इस बात को उजागर किया जा रहा है। निर्बल एवं दोषपूर्ण राज्य व्यवस्था विकास कार्य को खटाई में डाल देती है। भारत की राज्य व्यवस्था किसी भी समस्या का स्थाई हल नहीं खोजती। जब कोइ समस्या राष्ट्रीय चर्चा में आ जाती है तो सरकार अपनी तत्परता दिखाती है। कारण यह है भारत की राज्य व्यवस्था में समग्र विचार की कोई परम्परा नहीं है और न ही कोई कार्य संस्कृति।

समग्र विचार परम्परा और कार्य संस्कृति का लोप - राज्य व्यवस्था का सबसे बड़ा दुर्गुण है। जब सरकार से जुड़े लोग हवाला, बवाला एवं घोटाला में लिप्त होते मिलेंगे तब विकास कैसे होगा। नक्सली हिंसा भारत की एक स्थाई समस्या है। इसे भारत की राज्य व्यवस्था निपटा नहीं पायी है। भारत लगातार इसलिए भी कमजोर होता जा रहा है क्योंकि विदेशी घुसपैठ को नियंत्रित करने में पूरी तरह विफल है और पूरी तरह से विफल है आन्तरिक शत्रुओं और आतंकवादियों के विरूद्ध कार्यवाही करने में। संसद बुनियादी परिवर्तन से संबंधित विधायन नहीं करती। न्यायपालिका विश्वास खो रही है। सरकारें संविधान की छाप लगाकर लुटेरी संस्थाएं बन गई हैं। बोलबाला है बाहुबलियों, धनबलियों और सत्ताबलियों का। इन तीनों प्रकार के बलशालियों द्वारा सरकारें बनाई और चलाई जाती हैं। यहाँ पर दल पारिवारिक सम्पत्तियां बन रहे हैं अथवा फिर हाई कमानों (हाई कमान सम्पत्तियां) की कठपुतली या प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियां। राजनीति का अपराधीकरण और नामकरण की राजनीति जोरों पर है। राजनीतिक दफ्तरों से मत,मजहब ओर पंथ चलते हैं। राजनीति कट्टर मौलवियों और पंथिक पादरियों के कब्जे में हैं।

मता, स्वतंत्रता जैसे मूल्य गिरवी रख दिये गये हैं। रोटी और दवाई न मिलने से लोग मर रहे । सामाजिक पारस्परिकता का अता पता नहीं है। जनतंत्र ने बेईमानी का रूप ले लिया है। वतंत्रता का अर्थ लूट से है। जो सरकार में आवे जितना लूट सके लूट ले क्योंकि हो सकता दुबारा मौका न मिले। सरकार से मतलब सिद्धान्त हीन और चरित्र हीन बहुमत है। गठबन्धन रकार का प्राण वायु है।

5.6.5 निकम्मी एवं कमजोर सरकारें -भ्रष्टाचार ईश्वर की भांति सर्वव्यापी हैं। समाज कण कण में समाया हुआ है। पीने के पानी, दवाई, पढ़ाई, बिजली आदि की कमी है। गता है कि जरूरी सेवाओं से राज्य व्यवस्था ने अपना पल्ला झाड़ लिया है। भूख बिकाऊ न गई है। भूख तन बेचती है, मन बेचती है। भूख ने वेश्यावृत्ति और भिक्षावृत्ति को उभारा । गरीब गरीबी के कारण निराश है। अमीर उपभोक्ता बनकर नितान्त निराश। भारत का जातंत्र एक मजाक बनकर रह गया है। प्रजातंत्र रो रहा है, पंछता रहा है। देश उग्रवाद, ाई. एस. आई. की देश विरोधी गतिविधियों और आतंकवाद से त्रस्त है। सरकारें इन्हें रोक ने में पूरी तरह से विफल हैं। कानून एवं व्यवस्था चरमरा गये हैं। विदेशी राष्ट्र विरोधी क्तियाँ सिर उठाये हैं। आये दिन फिरौती एवं तस्करी की घटनाएं घटित हो रही हैं। हत्या वं लूट पाट की घटनाओं में इजाफा हो रहा है और सरकार इस सोचनीय दशा से निपट नहीं ा रही है। इससे यह स्वत: प्रमाणित हो जाता है कि किसी विकासशील समाज की ोचनीय राजनीतिक व्यवस्था सभी प्रकार की समस्याओं विशेष रूप से विकास की मस्याओं को रोक न पाने के लिए दोषी हैं। और ऐसी राजनीतिक व्यवस्था विकास की एक हुत बड़ी समस्या है।

ामाजिक कुरीतियों एवं खर्चीली परम्पराओं के कारण पूंजी निर्माण हतोत्साहित होता है। न्म, विवाह और मृत्यु आदि संस्कार बहुत खर्चीले होते हैं और साथ ही यदि धन गाड़कर ख़ने की सोच हो तब तो पूंजीविनियोग पर विपरीत असर पड़ेगा जिससे विकास की दर पर तिकूल प्रभाव पड़ेगा। जब तक परम्परागत एवं प्रथागत ढांचे में बदलाव नहीं आता ाकास कार्य थोड़ा बहुत अवश्य अवरूद्ध होगा।

5.7 सांस्कृतिक कारण

ंस्कृतिक कारण - धर्म, जाति, क्षेत्र और सम्प्रदाय जैसी संकीर्णताओं की विकास -विरोधी कृति पर प्रकाश डाला जा चुका है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी और प्रविधि का पिछड़ापन ादि ऐसे सांस्कृतिक कारक हैं जो विकास के अनुकूल नहीं कहे जा सक्ते।

5.7.1 प्रौद्योगिकी -उत्पादन प्रणालियों के ज्ञान के रूप में प्रौद्योगिकी को समझा जा सकता । इससे हमें यह जानकारी होती है कि किस प्रकार के संसाधनों को उत्पादक तरीकों से लाया जा सकता है। प्रौद्योगिकी मानव संसाधनों की दक्षता ओर उत्पादकता को बढ़ाने में हायता करती है। प्रौद्योगिकी मानव- निर्मित संसाधनों को बनाने में सहायता पहुँचाती है। कर पौध, प्लास्टिक जैसे उत्पादक मानव निर्मित संसाधनों के आविष्कार हैं।

5.7.2 वैानिक दृष्टिकोण -वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास से समस्याओं को आसानी से मझा जा सकता है और उनका आसानी से समाधान ढूँढा जा सकता है। इससे न्याय संगत र्णय लिए जा सकते हैं और कार्यों में सृजनात्मकता की वृद्धि होती है। विज्ञान का प्रयोग

समाज करता है जिन वस्तुओं का मनुष्य प्रयोग करते हैं वे विज्ञान और प्रौद्योगिकी की देन है। बड़े बड़े खेतों को जोतने के लिए मशीनों की आवश्यकता है। रासायनिक खादें और कीटनाशक दवाइयाँ बड़े बड़े कारखानों में निर्मित होती हैं। अनाज के भण्डारण के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है जिससे दीमक और अन्य कीड़े अनाज को हानि न पहुँचा सकें। विज्ञान और प्रौद्योगिकी का लगातार प्रयोग उत्पादन के सुधार और उत्पादन लागत को कम करने के लिए किया जा रहा है। उदाहरण के लिए चरखे से बना कपड़ा मिल के बने कपड़े से घटिया और मंहगा होता है। अज: विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का ज्ञान आवश्यक है। उन्नत विज्ञान और उन्नत प्रौद्योगिकी विकास के लिए अनिवार्य हैं। विकासशील देशों में उन्नत प्रौद्योगिकी और उन्नत विज्ञान की कमी होती है। जिससे उनके विकास पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

15.8 पर्यावरणीय समस्या

जब तक विकास के लिए उपयुक्त पर्यावरण नहीं होता है विकास एवं विकास की प्रक्रिया में तीव्रता नहीं आती है। भूमि, जल, जमीन ओर वन की समस्याएं पर्यावरणीय समस्याओं के अन्तर्गत सम्मिलित हैं जमीन पर्याप्त है और जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम है तो विकास बाधित नहीं होगा। परन्तु विकसित समाजों में बढ़ते जनाधिक्य से ग्रामीण एवं शहरी दोनों क्षेत्रों में जीमन की भूख बढ़ रही है। आज से 5 दशक पूर्व लोागें में जमीन की इतनी भूख नहीं थी जितनी आज है ईधन और भवन निर्माण के लिए लकड़ी की आवश्यकता, फसल उगाने और रहने के लिए जमीन की भूख धीरे धीरे वन सम्पदा को नष्ट कर रही है। वनों के लगातार कटान से वन वृक्ष रहित होकर नाना प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएं पैदा कर रहे हैं। वनों के उजड़ने से पर्यावरणीय असन्तुलन का जन्म होता है और उसके प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगते हैं। वर्षा की बदलती हुई स्थिति, बढ़ता हुआ मिट्टी का कटाव (भूमि अपरदन), पशुओं के लिए चारे और गरीबों के लिए जलाने की लकड़ी भारी मात्रा में कमी आदि पर्यावरणीय असन्तुलन के प्रभाव हैं।

15.8.1 प्रकृति का असहनीय शोषण - प्रकृतिक का शोषण जब असहनीय रूप ले लेता है तो प्रकृति विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालना शुरू करती है। ऊपर वनों के कटान से उत्पन्न हानियों की ओर संकेत किया जा चुका है। यदि कोई देश अपने तेल भण्डार से सभी तेल खर्च लेता है तो भविष्य में विकास को सहायता पहुँचाने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहेगा। इन प्रतिकूल परिणामों से बचने के लिए परिस्थिति वैज्ञानिकों ने 'धारणीय विकास' के लिए आग्रह किया है। धारणीय विकास का अर्थ प्रकृति का सहनीय शोषण न कि असहनीय शोषण। धारणीय विकास को प्रकृति बनाये रख सकती है ऐसे विकास से प्राकृतिक संसाधनों के जीवन चक्र को नष्ट होने से बचाया जा सकता है। और प्राकृतिक परिस्थिति और पर्यावरण को संरक्षित रखा जा सकता है।

15.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में विकासशील समाज का अर्थ बताते हुये उनमें विकास को अवरूद्ध करने वाली बाधाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है। समस्याओं के अन्तर्गत आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणीय कमियों की सम्यक व्याख्या की गई है।

5.10 प्रश्न

घु उत्तरीय –

विकासशील देश किसे कहते हैं?

समस्या का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

धारणीय विकास का आशय स्पष्ट कीजिए।

गरीबी और विकास में क्या संबंध है?

गरीबी के दुष्चक्र से क्या आशय है? समझाइये

र्घ उत्तरीय –

विकास के सामाजिक कारकों की व्याख्या कीजिए।

आर्थिक बाधाएं विकास पर क्या असर डालती है व्याख्या कीजिए।

विकास से जुड़ी राजनैतिक बाधाओं पर सविस्तार प्रकाश डालिए।

सांस्कृतिक तत्व विकास प्रक्रिया पर क्या प्रभाव डालते हैं? विवेचना कीजिए।

स्तुनिष्ठ

निम्नलिखित में से सांस्कृतिक तत्वों को चुनिए।

1. गरीबी 2. भाषा 3. परम्परायें एवं रूढ़ियां 4. प्रौद्योगिकी 5. विज्ञान जनसंख्या ।

निम्नलिखित में से गरीबी के परिणाम छांटिए।

1. उपभोग का निम्न स्तर 2. पूँजी की कमी 3. कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव
4. जनसंख्या की वृद्धि 5. नगरीकरण 6. प्रतिव्यक्ति उच्च आय स्तर
7. पूंजी निर्माण में वृद्धि ।

रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

1. विकासशील देशों के अधिकतर समाज .....शासन से स्वतंत्र हुए हैं।
2. गरीबी पुनः .....को जन्म देती है।
3. गरीबी एक प्रकार की .....है।
4. पूँजी का निर्माण ..... से होता है।
5. .....और .....विकास को पीछे की ओर ढकेलते हैं।

5.11 सहायक पुस्तकें / सन्दर्भ ग्रन्थ

पाण्डेय, राजेन्द्र, सोसिआलोजी आव डिवलपमेन्ट

अहमद, मेराज, विकास का समाजशास्त्र

दुबे एस सी., विकास का समाजशास्त्र

इकाई 16 परम्परा, आधुनिकता एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 परम्परा और आधुनिकता में संबंध

16.3 परम्परा का अर्थ एवं महत्व

16.4 आधुनिकता का अर्थ एवं महत्व

16.5 असमकालीन की समकालीनता (परम्पराओं की आधुनिकता)

16.6 परम्परा, आधुनिकता और विकास

16.7 प्रतिमान चर

16.8 प्रतिमान चरों के आधार पर परम्परागत और आधुनिक समाज की प्रकृति

16.9 सारांश

16.10 उपयोगी पुस्तकें

16.11 प्रश्न

16.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन के पश्चात आप -

* परम्परा आधुनिकता का अर्थ एवं महत्व स्पष्ट कर सकेंगे।

* परम्परा, आधुनिकता और विकास के सम्बन्ध का विश्लेषण कर सकेंगे।

* प्रतिमान चरों के आधार पर परम्परागत और आधुनिक समाज की प्रकृति का उल्लेख कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

विकास में अभिरूचि रखने वाले समाज वैज्ञानिक और अर्थशास्त्री परम्परा और आधुनिकता पर विचार विमर्श करते रहे हैं क्योंकि इनके विवरण के अभाव में विकास प्रत्यय को ठीक से समझना कठिन हो जाता है। परम्परा विकास का विरोध करती है। आधुनिकता विकास का संकेतक। सूचकांक है। परम्परा ओर आधुनिकता का विकास से प्रगाढ़ संबंध है।

16.2 परम्परा और आधुनिकता में संबंध

जहाँ आधुनिकता का संबंध आधुनिक समाज से है वहीं परम्परा का संबंध पुराने समाज से है। केवल पुरातन पर बल देना एक एकांगी दृष्टिकोण है और केवल नूतनता पर केन्द्रित होना

ी एकांगी अथवा एक पक्षीय दृष्टिकोण का संकेतक है। परम्परा और आधुनिकता के सुमेल से
ामाज का सम्यक एवं वांछित विकास संभव है। परम्परागत और आधुनिक विचारधाराओं,
श्वासों, कार्य विधियों, दृष्टिकोणों, मूल्यों एवं आदर्शों में संतुलन विकास के लिये अनिवार्य
। परम्परा और आधुनिकता में गहरा संबंध है। परम्परा के अभाव में आधुनिकता का कोई
र्थ नहीं है। परम्परा वह बुनियाद है जिस पर आधुनिकता का ढांचा खड़ा किया जा सकता
। जिस समाज का कोई अतीत नहीं उसके वर्तमान का कोई अतिस्तत्व नहीं होता। अतीत
ी कुक्षि से वर्तमान का जन्म होता है। आधुनिकता परम्परा की संतान है। माता-पिता बूढ़े
ो जाते हैं तो उन्हें कहीं फेंक नहीं दिया जाता। उसी तरह परम्पराओं को भी त्यागने की
रूरत नहीं है। जरूरत है उनमें संशोधन की। जो परम्पराएं असामयिक हो चली हैं उन्हें
ामयिक बना लेने में कोई हर्ज नहीं है और जो समसायिक हैं उन्हें अंगीकार कर लेने में
ोई दोष नहीं है। नवीनता अथवा आधुनिकता सर्वथा दोषमुक्त हो ऐसा नहीं है। उदाहरण के
लए नगरीकरण एवं औद्योगीकरण आधुनिकता के सूचक हैं पर नगरीकरण और औद्योगीकरण
अनेक बुराइयों को जन्म दिया हैं। औद्योगीकरण से वायु प्रदूषण और जल प्रदूषण को जन्म
मिला है। व्यक्तिवादिता और स्वार्थपरायणता में वृद्धि हुई है। वर्ग संघर्ष को जन्म मिला है।
गरीकरण ने झुग्गी झोपड़ी (मलिन) की बस्तियों की समस्या को उत्पन्न किया है। न अतीत
ी पूर्णरूपेण उपयोगी है और न वर्तमान ही। **अतीत और वर्तमान की अच्छाइयों को लेकर
ना समाज न्याययुक्त, समतायुक्त एवं स्वतंत्रता युक्त समाज होगा**। अतीत का समाज
मुक्त था, वहीं आधुनिक समाज मुक्तता का परिचय देता है। अतीत आधुनिक समाज को
ाधार प्रदान करता है। भारतीय समाजशास्त्री डी. पी. मुकर्जी ने परम्परा और आधुनिकता के
ंबंध पर विचार किया है। उनके अनुसार **परम्पराएं कभी मरती नहीं, वे नवीन
रिस्थितियों से सामंजस्य बैठा लेती हैं**। वे कहते हैं कि परम्परा के अभाव में आधुनिकता
ा काई अर्थ नहीं है। आधुनिकता एक निरपेक्ष धारणा नहीं है यह तो एक सापेक्ष अवधारणा
और परम्परा से संबंधित है वे आगे कहते हैं कि परम्परा और आधुनिकता में अन्तखेल
ोता है जिसके परिणाम स्वरूप परम्परागत मूल्यों और सांस्कृतिक प्रतिमानों में विस्तार एवं
ंशोधन होता है और आधुनिकीकरण का जन्म होता है। **आधुनिकता का तात्पर्य परम्पराओं
े मुक्ति नहीं**।

ुकर्जी आधुनिकता से समृद्ध आधुनिकीकरण को परम्परा पर टिकी प्रक्रिया मानते हैं।
रम्पराएं अनेक विकल्पों में से समीचीन का चयन करने का सुअवसर उपलब्ध कराती है।
े प्राचीन और नवीन के समन्वय से एक नये सांस्कृतिक प्रतिमान के निर्माण का सुयोग
उपस्थित करती हैं परम्परा और आधुनिकता के टकराव से वाद और प्रतिवाद का द्वन्द्व
उपजता है। इस द्वन्द्व से एक संशोधित और समन्वित नवीन स्थिति उत्पन्न होती है जिसे
आधुनिकीकरण कहा जाता है।

16.3 परम्परा का अर्थ एवं महत्व

यह निर्विवाद सत्य है कि परम्पराओं का संबंध अतीत एवं पुराने से है। आदि कालीन समाज
परम्परागत समाज का दृष्टान्त है। सुविधा के लिए पूर्व औद्योगिक समाजों को परम्परागत समाज

की श्रेणी में रखा जा सकता है और औद्योगिक समाजों और इसके बाद के समाजों को आधुनिक समाज की कोटि प्रदान करना उपयुक्त रहेगा।

परम्पराओं को समझने के लिए अतीत में जाना होगा, इतिहास में पैठना होगा। प्राचीन साहित्य का आश्रय लेना होगा। प्राचीन ग्रन्थों का ज्ञान परम्परागत ज्ञान है। इन ग्रन्थों में वर्णित विश्वास, व्यवहार के तौर तरीके और कार्य प्रणालियां परम्पराएं हैं। वे मूल्य आदर्श परम्परा में निहित हैं जिनका वर्णन पुराने ग्रन्थों में है। कभी कभी कुछ व्यवहार प्रतिमान लिखित न होकर अलिखित होते हैं और मौखिक परम्परा द्वारा उन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को पहुँचा दिया जाता है और इस प्रकार वे सुरक्षित रहते हैं। अतीत अथवा परम्परा के अध्ययन पर जोर देने वाले भारतीय विद्वानों में वी. एन. सील, घुर्ये और डी. पी. मुकर्जी विशेष उल्लेख की पात्रता रखते हैं। इनका कहना है कि इनके आधार पर वर्तमान को समझना सरल और उपयोगी है।

ट्रडीशन शब्द की उत्पत्ति ट्रेडियर शब्द से हुई है जिसका अर्थ 'हस्तान्तरण करना' हैं। ट्रडीशन को संस्कृत में परम्परा कहते हैं जिसका अर्थ उत्तराधिकार अथवा 'ऐतिह' है। उत्तराधिकार का अर्थ यह बोध कराता है कि परम्पराएं हमें विरासत में मिलती है। 'ऐतिह' का अर्थ इतिहास है। परम्पराओं का स्रोत इतिहास है। परम्पराओं का एक लम्बा इतिहास होता है। ये हमें विरासत में मिलती हैं। इन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी की स्वीकृति प्राप्त हैं। लम्बे समय से इनका प्रचलन रहता है। लम्बे समय से प्रचलन इन्हें आदरणीय एवं प्रतिष्ठित बनाता है। परम्पराओं का हम आदर करते हैं, समाज में इन्हें प्रतिष्ठा और गौरव प्राप्त रहता है। ये समाज में दृढ़ता एवं संतुलन बनाने का कार्य करती हैं। सामाजिक विरासत के दो पक्ष होते हैं। भौतिक और अभौतिक। धर्म, विचार, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान, प्रथाएं, नियम, रीतिरिवाज, प्रथाएं, संस्थाएं आदि अभौतिक विरासत हैं। यह अभौतिक विरासत परम्परा कही जाती है। चिन्तन और विश्वास करने की विधि का हस्तान्तरण परम्परा का द्योतन करता है। एक समूह की विशेषता बतलाने वाले सम्पूर्ण विचारों, आदतों और प्रथाओं का योग परम्परा है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। इन परम्पराओं का पालन मनुष्य अचेतन रूप से करता रहता है।

परम्परा का अर्थ है पुराने रीति-रिवाजों, नैतिक मूल्यों तथा आदर्शों आदि का महत्व । परम्परा पुराने मूल्यों को दर्शाती है। प्रसिद्ध भारतविद् और सामाजिक विचारक आनन्त कुमार स्वामी परम्परा का अलग अर्थ बताते हैं। परम्परा से उनका आशय उन आधारभूत मूल्यों से है जो पूर्व और पश्चिम दोनों के लिए सामान्य हैं। कुमार स्वामी परम्परा के युग में सामूहिक जीवन और गुणात्मक उपलब्धियों के महत्व को स्वीकारते हैं। वे कहते हैं कि औद्योगिक क्रान्ति ने परम्परा को बदल दिया।

रीति-रिवाज, प्रथाएं, रूढ़ियां कार्य करने की प्रणालियां (संस्थाएं) आदतें, पुराने विश्वास, दृष्टिकोण, विचारधाराएं, आदर्श एवं मूल्य परम्परा में सम्मिलित हैं। इसलिए परम्परा से इन सबका बोध होता है। परम्पराओं के विकास का एक लम्बा काल होता है। परम्पराएं पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रहती हैं।

महत्व- सुदीर्घ जीवन औरइनका अचेतन पालन इनके महत्व को बतलाते हैं। परम्पराओं में हम जन्म लेते हैं और इन्हीं पर हमारा अस्तित्व निर्भर करता है। इनसे हम घनिष्ठ रूप से बंधे होते हैं। इनका आदर एवं पालन हमारे लिए अनिवार्य हैं। भारतीय समाज में तो परम्परा संस्कृति का आधार है। लोगों को परम्परा से शक्ति मिलती है जो उनका पोषण करती है। परम्परा दिशा बोध को लुप्त होने से बचाती है। परम्परा भार स्वरूप भी बन जाती है यदि उसमें ठहराव आ जाता है । इस ठहराव का कारण परम्पराओं को आदर्श मानकर आँख बन्द कर इनकी पूजा करना है। परम्परा के प्रति आलोचनात्मक दृष्टि उसमें सांस्कृतिक ठहराव को रोकती है। वैयक्तिकता को प्रोत्साहित करने की जरूरत है व्यक्ति को न तो पूर्ण रूप से स्वतंत्र होना चाहिए और न ही पूर्ण रूप से परतंत्र । वैयक्तिकता और समाजन के संतुलन से परम्परा की सृजनात्मकता बनी रहती है।

16.4 आधुनिकता का अर्थ एवं महत्व

आधुनिकता का संबंध औद्योगिक और उत्तर औद्योगिक समाजों से है। ज्ञान का विकास उत्तरोत्तर होता रहता है। पहले जो बातें अज्ञात थीं, असंभव थीं, अस्तित्व में नहीं थी। विज्ञान ओर प्रौद्योगिकी के विकास से ज्ञात, संभव और अस्तित्वमान है । उदाहरण के लिए पहले कभी बादल को छूने की बात अचरज भरी थी। आज हमारे हवाई जहाज बादल के ऊपर उड़ते हैं। यह एक आधुनिकता का नमूना है। पहले हम धर्म के बन्धन में जकड़े थे और धर्म के प्रति हमारी संकुचित मनोवृत्ति थी आज धर्म निरपेक्षता के विचार जोरों पर है और हम धर्म निरपेक्षता का डंका बजा रहे हैं। यह भी आधुनिकता ही है। पहले कृषि कार्य देशी हल से सम्पन्न होता था। फसल की बुआई, निराई, कटाई और मड़ाई के पुराने तरीके थे। आज जुताई ट्रेक्टर से होती है। मड़ाई के लिये थ्रेसर हैं। ये सभी गतिविधियां आधुनिकता की सूचक हैं। पहले समाजों में अमुक्त (बंद) व्यवस्था थी। आज समाज में खुलापन, लचीलापन और व्यापकता के दर्शन होते हैं। यह आधुनिकता नहीं तो और क्या है? पहले आर्थिक विकास कुटीर उद्योग धन्धों पर निर्भर था। अब बड़ी बड़ी मशीनों से उत्पादन होता है और इन मशीनों से उत्पादित माल बढ़िया और कम लागत वाला होता है। इस कारण बाजार में इनकी मांग है। यह भी आधुनिकता है पहले यातायात के साधन बैलगाड़ी और साइकिल थे, आज बस, रेल, पानी के जहाज और हवाई जहाजों का प्रयोग हो रहा है। पहले संदेश भेजने के लिए चिड़ियों के गले में पत्र बांध दिया जाता था और चिड़ियां उन्हें गन्तव्य तक पहुंचा देती थी। कालिदास ने मेघदूत को संदेश वाहक बनाया था । आज संचार के साधन आधुनिकतम तकनीक से लैस हैं आधुनातम तकनीक वाले यातायात के साधन और संचार साधन आधुनिकता के आगे उत्तर आधुनिकता और अतिआधुनिकता के प्रतीक हैं।

पहले लोग गाँवों में रहते थे। आज गांव की आबादी का प्रवाह नगर की ओर है जिससे नगरीकरण को प्रोत्साहन मिला है। नगरीकरण के फलस्वरूप नगरों में जनसंख्या की भीड़ आधुनिकता की ओर संकेत करती है। बुद्धिवाद, उदारवाद का विकास आधुनिकता के परिचायक हैं। आप समानता, स्वतंत्रता और भाई चारे के विचार आधुनिकता पर प्रकाश डाल रहे हैं। पहले आविष्कार और शोध कम होते थे। आज आविष्कारों और शोधों की भरमार है। चोट पहुँचाने के लिए पहले ढेले का प्रयोग होता था । आज अन्तर्राष्ट्रीय प्रक्षेपास्त्रों का प्रयोग

हो रहा है। बम और हाइड्रोजन बम का प्रयोग किया जा सकता है। पहले दुनिया बहुत फैली थी। आज वह बहुत सिमट गयी है। आज हम भूमण्डलीकरण की बात करते हैं। पहले शिक्षा सीमित एवं गुह्य थी। आज विद्यार्जन सभी के लिए सुलभ है। निरक्षरता के स्थान पर साक्षरता में वृद्धि हो रही है। हमारी प्रत्याशाओं में वृद्धि हुई है। जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई है। जीवन के हर क्षेत्र में नवीनता और नवप्रवर्तन के दर्शन हो रहे हैं। इन सभी का सम्मिलित नाम आधुनिकता है आधुनिकता की ओर बढ़ने की प्रक्रिया को आधुनिकीकरण कहते हैं।

आधुनिकता का संबंध तर्कसंगति, स्वाधीनता और समानता जैसे पाश्चात्य विचारों से है। आधुनिकता में नये मूल्यों का निवास है। आधुनिकता में उन दशाओं का स्वागत किा जाता है जो कि परिवर्तन को जन्म देती है। आधुनिकता में सुधार की प्रबल इच्छा और प्रयोग करने की लालसा निहित हैं **आधुनिकता का मुख्य तत्व यह है कि निर्धारित मार्ग पर चलने के बजाय अपने भविष्य का पथ प्रदर्शन स्वयं करना चाहिए।** लोग अपने उद्देश्यों की प्राप्ति स्वयं की क्रिया से प्राप्त कर सकते हैं, पूजा या स्तुति के द्वारा नहीं। सहभागिता आधुनिक समाज का प्रमुख गुण है इसलिए लर्नर आधुनिक समाज को सहभागी समाज कहना पसन्द करते हैं। आधुनिकता में मशीन प्रयोग, तकनीकी ज्ञान, विवेक सम्मत प्रवृत्तियाँ, धर्म निरपेक्ष उन्मुखता उच्च किस्म का विभेदीकरण, साक्षरता और जीवन प्रत्याशा में वृद्धि को सम्मिलित करने का आम रिवाज है।

महत्व – परम्परागत विचारों को परिवर्तित एवं संशोधित कर तथा विज्ञान और नई प्रौद्योगिकी का सहारा लेकर विकसित समाज विकास के शिखर पर पहुँच गये हैं। **आधुनिकता विकास में सहायक भी है और विकास का परिणाम भी।** अल्प विकसित देश परम्परागत प्रौद्योगिकी के बल पर विकास में कूद पड़े हैं। उनके पास इतना धन नहीं है कि नई प्रौद्योगिकी का विकास कर सकें। प्रौद्योगिकी का आयात करके विकास की बात सोच रहे हैं । आयातित प्रौद्योगिकी उच्च स्तर की नहीं होती हैं और उसके लिए काफी धन चुकाना पड़ता है। विकासशील देश आधुनिकीकरण के दौर से गुजर रहे हैं परन्तु वे आधुनिकता से पूरी तरह लैस नहीं है। आधुनिकता विकास के अनुकूल दशाएं उत्पन्न कर विकास की गति को इतना तीव्र कर देती हैं कि विकास की अन्तिम मंजिल शीघ्र ही हस्तगत की जा सकती है।

16.5 असमकालीन की समकालीनता (परम्पराओं की आधुनिकता)

प्राय: यह देखा गया है कि वे प्रथाएं, आदतें, दृष्टिकोण, विश्वास और कार्यप्रणालियां (संस्थाएं) जो पहले उपयोगी थीं और आज भी, जब परिस्थितियां बदल गयी हैं, मनुष्यों के व्यवहार को शासित करती हैं तो इस तथ्य को 'परम्पराओं की आधुनिकता' कह कर संबोधित किया जा सकता है । गत को आधुनिक मानकर उसके अनुसार चलना सांस्कृतिक पिछाड़ अथवा **परम्पराओं की आधुनिकता** की समस्या के लिए उत्तरदायी हैं। इस समस्या का विचारधाराओं और कार्यप्रणाली पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इससे दृष्टिकोण

आधुनिक बनने के बजाय परम्परागत और पौराणिक हो जाता है। नतीजा यह होता है कि विचार जगत में सामंजस्य की कठिन समस्या उत्पन्न हो जाती है। पुरानी विचारधारा से प्रेरित व्यवहार आधुनिक अथवा समकालीन मांगों की अपेक्षानुसार पूर्ति नहीं कर पाते हैं।

विकासशील समाजों में असमकालीनता में परिवर्तन की गति को मन्द किया है। परम्परागत जीवन शैली को अपनाकर समकालीन जीवनशैली में कूद पड़ने से प्रगति धीरे धीरे हो पाती है। देश काल और समय के अनुसार मूल्यों, आदर्शों, आदतों, दृष्टिकोणों एवं कार्यप्रणालियों के बदल लेने से विकास तीव्र गति से होता है। **तीव्र विकास हेतु परम्पराओं से मोह त्यागने की आवश्यकता है।** भारत एक विकासशील समाज का उदाहरण है। यहाँ परम्परागत मूल्यों का प्रभाव है और इसलिये उनके मूल्य असमकालीन (समय की दृष्टि से पीछे) है। पाश्चात्य देशों के मूल्य समकालीन हैं। असमकालीन मूल्यों में निष्ठा के कारण भारत का वांछित विकास नहीं हो पाया है। जो भारत के लिए सही है वहीं अन्य विकासशील देशों के लिए सच है।

कहने की जरूरत नहीं कि कदम से कदम मिलाकर चलने से विकास सम्भव है। अन्य देशों के अच्छे सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण करने में कोई संकोच और आपत्ति का अनुभव नहीं करना चाहिए। शर्त यह है कि वे समकालीन जीवन के लिए उपयोगी हों। यहाँ पर गांधी जी का अनायास स्मरण हो आया है वे कहा करते थे कि मैं नहीं चाहता कि मेरा घर चारों तरफ दीवालों से बंद हो तथा खिड़कियाँ भी बन्द हों। मैं चाहता हूँ कि सभी भूमियों की संस्कृति की हवायें मेरे घर में निर्विघ्न रूप से आयें परन्तु मैं यह नहीं स्वीकार करता कि केसी भी हवा से मेरे कदम उखड़ जायें। भारत एवं अन्य विकासशील देशों के समाज एवं उनकी अर्थ व्यवस्था परम्परागत मूल्यों से प्रभावित है।

16.6 परम्परा, आधुनिकता और विकास

यह त्रित्व विकास के अध्ययन के लिए और विकास की मंजिल की प्राप्ति के लिए पर्याप्त महत्वपूर्ण है। कहने की आवश्यकता नहीं कि परम्परा विकास पर अच्छा असर नहीं डालती है। नर्मदेश्वर प्रसाद सांस्कृतिक परिवर्तन की शिथिलता के लिए अपनी पुस्तक "चेन्जिंग स्ट्रेटेजी इन अ डेवलपिंग सोसायटी" के अध्याय 2 में जिसका शीर्षक 'ट्रेडीशनल सोसायटी एण्ड माइनारिटी' है परम्परागत विरोध को दोषी पाते हैं। यह परम्परागत विरोध है जो कि रूढ़ियों के अन्तर्गत नवीन के प्रति लोगों में देखने को मिलता है। इस खण्ड की इसके पूर्ववर्ती इकाई में इस बात पर प्रकाश डाला जा चुका है कि परम्परायें विकास का बाधक तत्व नहीं है। **परम्पराओं से मोह और उनसे चिपके रहने से विकास निश्चय ही अवरूद्ध होगा।**

त्वरित विकास के लिए परम्पराओं में बदलाव की आवश्यकता है। परम्परा में आमूल चूल परिवर्तन भले ही न हो पर उन्हें समयानुकूल बनाने की सख्त आवश्यकता है यदि कोई समाज विकास की वांछित दर की आशा करता है तो परम्पराओं का वह तत्व जो समयातीत हो चुका है उसे बदलना ही होगा और उसे बदल लेने में कोई हर्ज नहीं है। परम्परागत मूल्य भारत में स्त्रियों की आजादी के पक्ष में नहीं थे। आज महिला सशक्तीकरण के युग में उन्हें

बदलना ही होगा यदि आगे बढ़ने की समाज में चाह और उमंग है । महिलाओं को पिता की सम्पत्ति में हिस्सा देना ही होगा।

आधुनिकता विकास के लिए अनुकूल दशा है आधुनिक विचार, दृष्टिकोण, आदतें, कार्य प्रणालियाँ, मूल्य और आदर्श विकास के लिए अनुकूल भूमि तैयार करते हैं अत: उन्हें अपनाने में किसी भी प्रकार के संकोच की आवश्यकता नहीं करती है। ध्यान रहे अति आधुनिकता से बचने की जरूरत है। अंग प्रत्यंग प्रदर्शित करने की होड़ की अतिआधुनिकता विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। अति आधुनिकता की आड़ में फूहड़पन और अश्लीलता से बचने की जरूरत है। पत्नियों का बदलाव, यौन संबंधों की खुला छूट जैसे स्वेडन में (जैसे आस्ट्रेलिया में) एड्स जैसी घातक बीमारियों को जन्म दे सकती है और मानव समाज को स्वच्छन्द यौनाचार के युग में पुन: वापस लौटाकर विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती हैं। ये नकारात्मक आधुनिक मूल्य के दृष्टान्त हैं। इनसे बचने की जरूरत है समारात्मक आधुनिक मूल्यों को अपनाने की छूट होनी चाहिए तभी विकास का यथेष्ट और वांछित फल मिल सकेगा।

16.7 प्रतिमान चर (विन्यास प्रकारान्तर)

पार्सन्स अपने प्रतिमान चरों के आधार पर विकास के आदर्श प्ररूपात्मक उपागम की स्थापना की है। पार्सन्स मने आदर्श प्ररूप की धारणा वेबर से ग्रहण की है। वेबर ने प्रोटेस्टेन्ट आचार संहिता को पूँजीवाद के विकास के लिए उत्तरदायी माना है। वेबर परम्परागत प्रतिमान व्यवस्था में बदलाव तथा एक नूतन प्रतिमान व्यवस्था के उद्‌भव को आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण कारक मानते हैं। आर्थिक विकास विषयक वेबर की यह स्थापना तर्क संगत एवं विवेकपूर्ण है। वेबर का मत है कि प्रोटैस्टैन्ट आचार संहिता ने पूंजी वाद को जन्म दिया। पूँजीवाद ने आर्थिक व्यवस्था को एक नया और उच्च स्तर देकर आर्थिक विकास के दरवाजे खोल दिये। इस प्रकार वेबर ने पूंजीवाद और प्रोटेस्टैन्ट आचार संहिता के उदय में प्रगाढ़ संबंध स्थापित कर पूंजीवाद के विकास की सुन्दर व्याख्या की है।

पार्सन्स ने अपने पाँच प्रतिमान चरों के समूह के आधार पर परम्परागत समाज और आधुनिक समाज के स्वरूप की व्याख्या की है। पार्सन्स का मत है कि कर्ता का व्यवहार इन्हीं प्रतिमान चरों द्वारा नर्दिशित होता है। किसी भी परिस्थिति में कर्ता के सामने दो विकल्प होते हैं जिनमें से वह किसी एक को स्वीकार करता है और दूसरे को अस्वीकार करता है। उदाहरण के लिए, जब व्यक्ति को सार्वभौम मूल्यों और विशिष्ट मूल्यों में से चुनाव करना हो तो व्यक्ति इनमें से किसी एक को ही चुन सकता है। पार्सन्स के कुल पाँच प्रतिमान चर हैं इनमें से प्रत्येक प्रतिमान चर दूसरे का एक दम उल्टा है। ये प्रतिमान चर इस प्रकार हैं:

(1) भावात्मकता बनाम भावात्मकतटस्थता (2) आत्म उन्मुखता बनाम सामूहिक उन्मुखता, (3) सार्वभौमवाद बनाम विशिष्टतावाद, (4) प्रदत्त बनाम अर्जित और (5) विनिर्दिष्टता बनाम प्रसरणता ये प्रतिमान चर सामाजिक प्रणाली के अधिकांश व्यक्तियों

(सदस्यों) को अपनी भूमिकाएं चुनने के व्यापक निर्देश देते हैं। ये सामाजिक प्रणाली में भूमिका अन्त: क्रिया और भूमिका अपेक्षाओं को निरूपित करते हैं। इनसे हमें सामाजिक प्रणाली की प्रकृति की जानकारी मिलती है।

16.8 प्रतिमान चरों के आधार पर परम्परागत और आधुनिक समाज की प्रकृति

प्रतिमान चरों के आधार पर परम्परागत और आधुनिक समाज की प्रकति

परम्परागत समाज	आधुनिक समाज
1. भावात्मकता (इच्छा की तुरंत संतुष्टि पर बर	1. भावनात्मक तटस्थता (इच्छाओं की संतुष्टि को भावी सफलता के लिए स्थगित कर देना)
2. आत्म उन्मुखता (क्रिया के दौरान स्वार्थ पर बल देना)	2. सामूहिक उन्मुखता (क्रिया करते समय सामूहिक हित को वरीयता देना)
3. विशिष्टतावाद (दूसरों का मूल्यांकन उनकी पैतृक विशिष्टता के आधार पर करना)	3. सार्वभौमवाद (अन्यों का मूल्यांकन समता तथा न्याय संबधी सर्वव्यापी सिद्धान्तों के आधार पर करना)
4. प्रदत्त (व्यक्तियों की स्थिति का निर्धारण एवं पद प्रदान करते समय अभिरोपित गुणों का सहारा लेना)	4. अर्जित (व्यक्तियों की स्थिति निर्धारण और पर प्रदान करते समय उनके अर्जित गुणों एवं उपलब्धियों पर विचार करना)
5. प्रसरणता (व्यक्तियों के कार्यों का वितरण वंश या जाति विषयक परम्परागत व्यवसाय के आधार पर करना)	5. विनिर्दिष्टता (व्यक्तियों में कार्यों का बँटवारा उनकी विशिष्ट क्षमताओं एवं गुणों के आधार पर करना)

तिमान चरों के आधार पर उक्त तालिका में परम्परागत समाज ओर आधुनिक समाज के विकास को अच्छी तरह से व्याख्यायित किया गया है। भावात्मकता, आत्म उन्मुखता, विशिष्टतावाद, प्रदत्त और प्रसरणता के प्रतिमानों से निर्देशित समाजों में परम्परा का कठोर नियंत्रण होने के कारण सामाजिक संबंधों, क्रियाओं और भूमिकाओं के प्रतिमान विकास में बाधक रहे हैं। इसके विपरीत भावात्मक तटस्थता, सामूहिक उन्मुखता, सार्वभौमवाद, अर्जित एवं विनिर्दिष्टता के प्रतिमान आधुनिकता और विकास की ओर तेजी से बढ़ने में सहायक रहे हैं। ये प्रतिमान संबंधों क्रियाओं एवं भूमिकाओं के ऐसे प्रतिमान को प्रोत्साहन देते हैं जो विकास के अनुकूल हैं।

16.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में परम्परा, आधुनिकता और विकास पर चर्चा करते हुये परम्परा और आधुनिकता के अर्थ एवं संबंध पर प्रकाश डाला गया है। दोनों के महत्व को स्पष्ट किया गया है कि विकास में परम्परा और आधुनिकता की भूमिका पर यथेष्ट विचार किया गया है। अन्त में पार्सन्स के प्रतिमान चरों के आधार पर विकास के सन्दर्भ में परम्परागत समाजों और आधुनिक समाजों की प्रतिमान व्यवस्था को समझाने का प्रयत्न किया गया है।

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अहमद, मेराज : विकास का समाजशास्त्र

2. दुबे, एस. सी. : विकास का समाजशास्त्र

3. प्रसाद, एन.: चेन्जिंग स्ट्रटेजी इन अ डिवलपिंग सोसायटी ''अध्याय दो 'ट्रडीशनल सोसायटी एण्ड माडर्निटी।

4. एस. एल. दोषी, आधुनिकता उत्तर आधुनिकता एवं नव समाज शास्त्रीय सिद्धान्त, 2003, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

16.11 प्रश्नोत्तर

लघु उत्तरीय –

1. परम्परा के अर्थ का खुलासा कीजिये।

2. आधुनिकता के अर्थ को स्पष्ट कीजिये।

दीर्घ उत्तरीय –

1. परम्परा और आधुनिकता के मध्य संबंध स्थापित कीजिये।

2. प्रतिमान चरों के आधार पर परम्परागत समाजों और आधुनिक समाजों के विकास को समझाइये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. परम्परा के अध्ययन पर बल देने वाले भारतीय समाजशास्त्रियों का चयन कीजिये

   (अ) डी. पी. मुकर्जी (ब) आनन्द कुमार स्वामी (स) घुर्ये (द) कोंत (ध) दुर्खीम

2. निम्न सूची में से आधुनिकता सूचक तत्वों को छाँटकर लिखिए –

   (अ) विज्ञान और प्रौद्योगिगी (ब) धर्म निरपेक्षता (स) धर्म एवं जाति की जकड़ (द) साक्षरता (ध) जीवन प्रत्याशा में वृद्धि (न) रूढ़ियाँ

3. निम्नलिखित में से परम्परा के सूचकांक चुनिए –

(1) विभेदीकरण में वृद्धि

(2) परम्पराओं से मोह एवं उनसे चिपके रहने की प्रवृत्ति

(3) रूढ़ियाँ

(4) यातायात के साधन के रूप में बैलगाड़ी

(5) संदेश भेजने के लिए प्रकृति एवं जानवरों का प्रयोग

NOTES

खण्ड

5

शिक्षा, जनसंचार एवं विकास

इकाई 17

शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन एवं विकास

इकाई 18

जनसंचार एवं विकास

इकाई 19

जनसंचार वैश्वीकरण एवं उदारीकरण

इकाई 20

शिक्षा, जनसंचार एवं विकास का मिथक एवं वास्तविकता

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विकास का समाजशास्त्र

खण्ड - 5 : खण्ड परिचय - शिक्षा, जनसंचार एवं विकास

इस खण्ड में शिक्षा, जनसंचार एवं विकास के विभिन्न पक्षों की धारणा की गई है। पहली इकाई का शीर्षक है "शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन एवं विकास" । इसमें शिक्षा और समाज के पारस्परिक संबंधों की व्याख्या की गई है। शिक्षा के प्रकार और प्रकार्यों पर प्रकाश डाला गया है। सामाजिक परिवर्तन के स्रोत के रूप में शिक्षा की व्याख्या की गई है । शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता की अन्तर्क्रिया का विवेचन किया गया है। दूसरी इकाई का शीर्षक है 'जनसंचार एवं विकास"। इसमें जनसंचार माध्यम की अवधारणा एवं सिद्धान्तों को स्पष्ट किया गया है। जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका की व्याख्या की गई है। जनवेत्ता प्रसारण एवं संचार तथा सांस्कृतिक विकास के सम्बन्ध को विश्लेषित किया गया है। सामाजिक विकास की इसकी भूमिका का वर्णन किया गया है। तीसरी इकाई का शीर्षक है 'जनसंचार, वैश्वीकरण एवं उदारीकरण" । इस खण्ड में जनसंचार की अवधारणा एवं उसकी सामाजिक भूमिका को स्पष्ट किया गया है। वैश्वीरण एवं उदारीकरण की अवधारणाओं पर प्रकाश डाला गया है। भारतीय सन्दर्भ में वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के कारण पड़ रहे भारतीय समाज के प्रभावों पर प्रकाश डाला गया है। चौथी इकाई का शीर्षक है "शिक्षा जनसंचार एवं विकास का मिथक एवं वास्तविकता"। इसमें शिक्षा की सामाजिक और आर्थिक भूमिका को स्पष्ट किया गया है। सामाजिक विकास में जनसंचार के विभिन्न माध्यमों की भूमिका की विवेचना हैं। शिक्षा और जनसंचार से संबंधित वास्तविकता एवं मिथक पर प्रकाश डाला गया है।

काई 17 शिक्षा, सामाजिक परिवर्तन एवं विकास

काई की रूपरेखा

.0 उद्देश्य

.1 प्रस्तावना

.2 समाजशास्त्र के उदय की पृष्ठभूमि

.3 शिक्षा : प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य

17.3.1 दुर्खीम

17.3.2 टॉलकाट पारसन्स

17.3.3 किंग्सले डेविस और विलबर्ट मूरे

.4 शिक्षा मार्क्सवादी व उदार वादी परिप्रेक्ष्य

.5 शिक्षा के प्रकार व प्रकार्य

.6 परम्परागत व आधुनिक भारत में शिक्षा

.7 शिक्षा, असमानता और सामाजिक परिवर्तन

.8 सामाजिक परिवर्तन के स्रोत के रूप में शिक्षा

17.8.1 शिक्षा तथा सामाजिक गतिशीलता

.9 सारांश

.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

इकाई में शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन के पारस्परिक सहसम्बन्धों पर प्रकाश डाला गया इस इकाई के अध्ययन के बाद आपके देवारा संभव होगा।

शिक्षा और समाद के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करना

शिक्षा को विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से समझना

शिक्षा के प्रकार व प्रकार्यों का उल्लेख करना

सामाजिक परिवर्तन के स्रोत के रूप में शिक्षा की व्याख्या करना

शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता की अन्तर्क्रिया की विवेचना करना

7.1 प्रस्तावना

क्षा समाज की एक प्रमुख उपव्यवस्था मानी जाती है। यह समाजीकरण, सामाजिक: वर्तन, तथा सामाजिक नियन्त्रण का प्रमुख अभिकरण है। यह वर्तमान शताब्दी की सबसे

महत्वपूर्ण संस्थागत प्रक्रिया है, जो व्यक्ति तथा समाज के जीवन को विविध रूपों में प्रभावित करती है। शिक्षा समाजीकरण की एक प्रक्रिया ही नहीं है बल्कि सांस्कृतिक मूल्यों को आगामी पीढ़ियों तक पहुँचाने तथा विभिन्न समस्याओं का सर्वोत्तम हल ढूंढने का भी यह सबसे अच्छा माध्यम है।

इस इकाई के भाग 1.2 में शिक्षा और समाज की पारस्परिक अन्तर्किया पर प्रकाश डाला गया है।

भाग 1.3 का शीर्षक शिक्षा: प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य है, इसके अन्तरगत प्रकार्यवादी विचारको, दुर्खीम, पारसन्स, तथा किंग्सले डेविड तथा विलवर्ट मूरे के शिक्षा के सम्बन्ध में प्रकार्यवादी विचार को व्याख्यायित किया गया है।

भाग-1.4 में शिक्षा : उदारवादी और मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य को विवेचित किया गया है।

भाग 1.5 में शिक्षा के प्रकार एवं प्रकार्यो का विश्लेषण किया गया है।

भाग 1.6 में 1.7 के अन्तरगत परम्परागत और आधुनिक भारत में शिक्षा तथा शिक्षा, असमानता तथा सामाजिक परिवर्तन पर विस्तृत रूप में लिखा गया है।

भाग 1.8 में सामाजिक परिवर्तन के स्रोत के रूप में शिक्षा की भूमिका बताई गई है।

भाग 1.9 में सारांश दिया गया है।

17.2 शिक्षा और समाज

शिक्षा एक ऐसी क्रिया है, जिसका उपयोग पुरानी पीढ़ी उस पीढ़ी पर करती है, जो सामाजिक जीवन के लिए अभी प्रस्तुत नहीं है। इसका उद्देश्य बच्चे में उन मौखिक, नैतिक और बौद्धिक दशाओं को विकसित तथा जागृत करना है, जिसकी अपेक्षा उससे सम्पूर्ण समाज और तात्कालिक सामाजिक पर्यावरण प्रदान करना है। शिक्षा आवश्यक ज्ञान और दक्षता प्रदान करती है, जो व्यक्ति को समाज में आदर्श रूप में कार्य करने योग्य बनाती है। शिक्षा वैचारिक मान्यताओं से प्रेरित होती है। जो समाज से ही ली जाती है। किन्तु इसका कार्य सांस्कृतिक विरासत हस्तान्तरण में और समाज के द्वारा धारित मूल्यों और आदर्शों को प्रोत्साहित करने तक ही समाप्त नहीं होता। सोद्देश्य अनुस्थापन (Purposive Orientation) किये जो पर शिक्षा आधुनिक समाज के आधुनिकीकरण और पुनर्गठन के लिए शक्तिशाली साधन हो सकती है। शैक्षिक संस्थाएँ शून्य में स्थित नहीं होतीं वे समाज के अभिन्न और संवेदन शील अंग है। कोई भी शैक्षिक व्यवस्था समाज के मूल्यों और प्रतिमानों से प्रभावित हुए बगैर नहीं ल सकती है और परवर्ती रूप में समाज में परिवर्तन भी शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है।

(आहूजा, 200 : 208-09)

आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण और अत्यन्त शक्तिशाली तत्व है। इस प्रकार शिक्षा का चरित्र और गठन किसी राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक लक्ष्यों के अनुरूप ही निश्चित किया जायेगा। इस प्रकार का परस्पर गतिशील सम्बन्ध स्थापित न हो

पाने के कारण हमारे देश में इन दोनों क्षेत्रों के बीच गंभीर विसंगति उत्पन्न हो गयी है।

(शर्मा, 2000 : 271-7)

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व शिक्षा से सम्बन्धित तीन विचार सम्प्रदाय प्रचलित थे :-

(i) प्रथम विचार सम्प्रदाय स्वं संस्कृति (Nativistic) और पुरूज्जीवनवादी (revivalistic) दृष्टिकोण वाला था जो प्रत्येक उस वस्तु का निषेध करता था जो विदेशी हो और समाज की प्राचीन विरासत में मान्य न हो। हिन्दू पुनरूज्जीवनवादियों ने प्राचीन भारत के गुरूकुल व्यवस्था के प्रतिरूप में अनेक विद्यालय और उच्च शिक्षा की संस्थाएँ स्थापित कीं। इन संस्थाओं ने जीवन की पवित्रता पर बल दिया और वैदिक साहित्य के अध्यापन पर ध्यान केन्द्रित किया।

(ii) दूसरे सम्प्रदाय का उद्देश्य शिक्षा का स्वदेशीकरण रहा। इस विशेषता वाली संस्थाएँ जानबूझकर विदेशी मूल के आधुनिक ज्ञान का निषेध करने को उद्धत नहीं थी। उनका प्रमुख उद्देश्य शिक्षा को भारतीय दशाओं में अधिक सार्थक बनाना और इसे एक राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का था।

(iii) तीसरे विचार सम्प्रदाय ने लन्दन और आक्सफोर्ड - ब्रिटिश नमूने के शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना पर ध्यान दिया। स्वतन्त्र भारत ने सभी स्तरों पर शिक्षा में अद्भूत विकास अनुभव कियां- प्राथमिक, उच्चतर माध्यमिक, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय स्तरों पर। लेकिन परिमाणात्मक (quantitative) विकास ने गुणात्मक विकास को प्रभावित किया।

अद्यतन, शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी दृष्टि और नीति का उद्देश्य है प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिकीकरण, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण और उच्च शिक्षा का तर्क संगतीकरण। एक ओर अशिक्षा को उखाड़ फेंकने तथा सभी के लिए शिक्षा की व्यवस्था (education for all) की नीतियाँ यह सुनिश्चित करने के लिए बनाई जा रही है। कि 6 - 14 वर्ष की आयु वर्ग के सभी बच्चों (देश की कुल जनसंख्या का 24 ब) को स्कूल जाने का अवसर प्राप्त हो। दूसरी ओर शिक्षा की गुणवत्ता में भी सुधार के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

17.3 शिक्षा और समाज

सैद्धान्तिक रूप में प्रकार्यवाद समाजशास्त्र में एक महत्वपूर्ण उपागम है, जो यह मानकर चलता है कि समाज में मौजूद प्रत्येक इकाई का सम्पूर्ण साकल्य के लिए कोई न कोई प्रकार्य है। इसीलिए वह अस्तित्व में हैं। प्रकार्यवादी एक प्रश्न उठाते हैं कि एक समग्र के रूप में समाज के लिए शिक्षा के क्या प्रकार्य हैं ?'' सामाजिक व्यवस्था की आवश्यकताओं के बारे में प्रकार्यवादी विचार के क्रम में उपरोक्त प्रश्न का आशय यह है कि शिक्षा का सामाजिक व्यवस्था में मूल्य समैक्यता तथा सांस्कृतिक सुदृढ़ता के लिए क्या योगदान है। दूसरा प्रश्न यह उठता है कि ''शिक्षा और सामाजिक व्यवस्था के दूसरे अंगों के बीच क्या प्रकार्यात्मक सम्बन्ध है?। इस प्रश्न का आशय यह है कि जैसे-शिक्षा और आर्थिक व्यवस्था में क्या सम्बन्ध है और किस प्रकार यह समाज को सम्पूर्णता में एकीकरण का कार्य करता है।

17.3.1 ईमाइल दुर्खीम (E. Durkhim)

फ्रांसीसी समाजशास्त्री दुर्खीम के अनुसार शिक्षा का मौलिक कार्य समाज के मूल्यों और प्रतिमानों का हस्तान्तरण करना है। इनके अनुसार 'समाज केवल तभी जीवित रह सकता है, जबकि इसके सदस्यों में पर्याप्त मात्रा तक समरूपतायें हों।' शिक्षा बच्चे के प्रारम्भ से सामूहिक जीवन की आवश्यकताओं के लिए इन समरूपताओं के बिना 'सहयोग' सामाजिक सुदृढ़ता, एवं स्वयं सामाजिक जीवन असम्भव है।

शिक्षा, और विशेषकर इतिहास का अध्ययन व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। यदि बच्चों में इतिहास को जीवित रखा जाये, तो उसे यह अनुभव होता है कि वह अपने से बड़ी किसी इकाई का हिस्सा है।

दुर्खीम के मतानुसार जटिल औद्योगिक समाजों में विद्यालय परिवार और मित्र समूह का तुलना में अधिक महत्वपूर्ण प्रकार्य करता है। शिक्षा विद्यालय के नियमों के पालन के साथ-साथ सामान्य रूप से नियमों के पालन की आदत बच्चे में डालती है। शिक्षा व्यक्ति के भविष्य के व्यवसाय के लिए आवश्यक कौशल की सीख देती है। यह प्रकार्य औद्योगिक समाजों जहाँ विरोधीकरण और श्रम - विभाजन पर बल दिया जाता है, के लिए आवश्यक है। औद्योगिक समाजों में अधिकतर विरोधीकृत कौशल की अन्तर्निभरता पर ही सामाजिक सुदृढ़ता आधारित होती है। उदाहरणार्थ - किसी एक उत्पाद के निर्माण के लिए कई विशेषज्ञों का समन्वय आवश्यक होता है। संयोजन की यह आवश्यकता सहयोग एवं सामाजिक सुदृढ़ता को बढ़ावा देती है।

(हारालाम्बोस, 1980, 174)

17.3.2 टॉलकाट पारसन्स

अमेरिकन समाजशास्त्री टॉलकॉट पारसन्स ने शिक्षा की प्रकार्यात्मकता के बारे में लिखा कि परिवार में प्राथमिक समाजीकरण के बाद विद्यालय केन्द्रीय समाजीकरण अभिकरण, है। विद्यालय समग्र रूप से परिवार और समाज के बीच कड़ी का कार्य करता है। परिवार में बच्चा विरोधीकृत मानको द्वारा संचालित होता है, जबकि बृहद समाज में उसे सार्वभौमिक मानकों (Universalistic standards) के अनुसार स्वीकार किया जाता है, जो कि सभी व्यक्तियों पर लागू होता है। परिवार में बच्चे की प्रस्थति प्रदत्त है। जबकि समाज में उसकी प्रस्थति की स्वीकार्यता अर्जित प्रस्थति के अनुसार तय होती है। विद्यालय युवाओं को इस प्रदत्त से अर्जित प्रस्थति प्रस्थति के संक्रमणकाल से अनुकूल की सीख देता है।

इस प्रक्रिया के हिस्से के रूप में विद्यालय बच्चों को समाज के मूलभूत मूल्यों के बारे में समाजीकृत करता है। अन्य प्रकार्यवादियों की तरह पासन्स की मान्यता है कि समाज के सुचारू रूप से संचालन के लिए मूल्य समैक्यता आवश्यक है। शिक्षा दो आवश्यक मूल्यों को पोषित करती है, पहली उपलब्धि का मूल्य तथा दूसरा अवसर की समानता का मूल्य उच्चतर औद्योगिक समाज में उपलब्धिपरक कार्यशक्ति की आवश्यकता होती है।

अन्ततः पारसन्स शैक्षणिक व्यवस्था को व्यक्तियों को उनक भविष्यगत भूमिकाओं के चयन के लिए एक महत्वपूर्ण क्रियातन्त्र मानते हैं। अतः शैक्षणिक संस्थाएं विद्यार्थियों के कौशल एवं योग्यताओं को संज्ञान में लाकर, उन्हें विकसित करके अनुकूल पदों या सेवाओं से जोड़ने का कार्य करती है।

(हारालाम्बोस, 1980 : 178 - 79)

17.3.3 किंग्सले डेविड और विजबर्ट मूरे

डेविस और मूरे शिक्षा को भूमिका निर्धारण के साधन के रूप में देखते हैं। परन्तु डेविस व मूरे शैक्षणिक व्यवस्था को सामाजिक स्तरीकरण से जोड़ते हैं। सामाजिक स्तरीकरण को ऐसी व्यवस्था मानते हैं। जिसमें समाज के अधिक महत्वपूर्ण पदों पर अधिक कुशल लोगों की भूमिका निर्धारित की जाती है। सर्वोच्च पदों के लए सभी प्रतिद्न्दिता होती है परन्तु अधिक कुशल लोग ही इन पदों पर पहुँचते हैं। शैक्षणिक व्यवस्था इस प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। डेविस के शब्दों में यह अपनी योग्यता को सिद्ध करने के लिए एक स्थान है, जिससे चयन करने वाली संस्था का अभिकरण लोगों को भिन्न-भिन्न प्रस्थतियों पर उनकी क्षमताओं के अनुसार चयनित करती है।

17.4 शिक्षा : मार्क्सवादी व उदारवादी परिप्रेक्ष्य

पश्चिमी औद्योगिक समाजों में शिक्षा की भूमिका का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य कई प्रश्नों को सन्निहित किये हुये है। इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि ''आर्थिक अस्थापना द्वारा शैक्षणिक व्यवस्था किस तरह निर्मित होती है।''

इस प्रश्न का आशय यह है कि समाज में जिसके पास आर्थिक संसाधन है, वह बेहतर शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं जिनके पास इसका अभाव है, वे या तो शिक्षा से वंचित है, या गैर गुणवत्ता वाली शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। इस प्रकार समतावादी मूल्यों से प्रेरित होकर शिक्षा का अवसर सभी को मिलना चाहिए। इस प्रकार शिक्षा का मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य शक्ति, विचारधारा, शिक्षा और उत्पादन सम्बन्धों के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या करता है।

शिक्षा का उदारवादी परिप्रेक्ष्य मूलरूप से समाजशास्त्र से जुड़ा नहीं है, बल्कि कई समाजशास्त्री इस परिप्रेक्ष्य से प्रभावित है उदारवादी परिप्रेक्ष्य के अनुसार शिक्षा व्यक्तित्व विकास और स्वविकास का माध्यम है। यह व्यक्ति को अपने मानसिर, भौतिक, भावनात्मक और अध्यात्मिक विकास के लिए प्रत्येक को मुफ्त शिक्षा देने पर बल देता है। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को उसकी क्षमताओं और कौशल को विकसित करने का समान अवसर प्रदान करती है। शैक्षणिक व्यवस्था और औद्योगिक प्रजातन्त्र, दोनों ही श्रेष्ठ गुणों के सिद्धान्त पर आधारित है। नौकरियाँ भी श्रेष्ठ योग्यता के आधार पर दी जाती है। व्यावसायिक प्रस्थति और शैक्षणिक योग्यता के बीच सहसम्बन्ध है। विद्यालय समाज के सभी सदस्यों के लिए अवसर की समानता उपलब्ध कराते हैं।

पश्चिमी औद्योगिक देशों में उदारवादी आदर्शों के अनुसार कई सुधार किये गये हैं। यहाँ सुधार इस ओर संकेत करते हैं कि शिक्षा अधिक समान और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना में सहायक है।

17.5 शिक्षा के प्रकार व प्रकार्य

शिक्षा मुख्य रूप से दो प्रकार की है—(1) अनौपचारिक शिक्षा (Informal education) (2) औपचारिक शिक्षा (formal education)

अनौपचारिक शिक्षा से अभिप्राय उस ज्ञान से हैं जो कि शिक्षा संस्थाओं द्वारा उपलब्ध नहीं होती अपितु जो व्यक्ति को परिवार, क्रीड़ा समूह, मित्र-मंडली तथा पड़ोस इत्यादि प्राथमिक समूहों द्वारा दी जाती है। प्राथमिक तथा द्वितीयक समूहों द्वारा जो ज्ञान हमें अनौचपारिक रूप में प्राप्त होता है, उसी को हम अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। औपचारिक शिक्षा से अभिप्राय उस ज्ञान या सीख से है, जो हमें ज्ञान प्रदान करने वाली संस्थाओं से प्राप्त होता है। यह औपचारिक विधि द्वारा सीखी जाती है। सरल समाजों में अनौपचारिक शिक्षा का अधिक प्रचलन था, जबकि आधुनिक समाजों में औपचारिक शिक्षा समाज द्वारा स्वीकृत मान्यताओं का ज्ञान कराने में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। शिक्षा के लिए विशेषीकृत संस्थाओं का विकास भी आधुनिक समाजों की ही देन है।

आज की औद्योगिक व्यवस्था ने जिस तरह के विभाजन और आर्थिक संरचना को जन्म दिया है, उसमें नियन्त्रित औपचारिक शिक्षा अनिवार्य हो गई है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित आज की समाज व्यवस्था को जिस तरह के प्रशिक्षित मानवीय संसाधन की आवश्यकता है, उसके लिए औपचारिक शिक्षा अनिवार्य है।

यदि शिक्षा के प्रकार्यों की चर्चा की जाये, तो कह सकते हैं कि आधुनिक समाज में शिक्षा अनेक प्रकार्यों को पूरा करती है। इनमें निम्नलिखित प्रकार्य प्रमुख है।

(1) ज्ञान तथा सूचना का प्रसारण

(2) नैतिक - चारित्रिक निर्माण तथा व्यक्तित्व का विकास

(3) मानवीय संसाधन का विकास

(4) सामाजिक और आर्थिक उन्नति में योगदान

(5) समाजीकरण

(6) सामाजिक नियंत्रण

(7) नये मूल्यों तथा विचारों का सृजन

(8) वैज्ञानिक प्रगति

(9) सांस्कृतिक आधार का निर्माण

(10) शान्ति और समन्वय को बढ़ावा करना तथा उसे सुदृढ़ करना। यहाँ 'शान्ति, को युद्ध, के विलोम के रूप में नहीं देखा गया है बल्कि इसे सकारात्मक दृष्टि से देखा गया है।

जो अन्तर्राष्ट्रीय समझ और सहयोग के प्रयत्न के उद्देश्य से समन्वित कार्य करें। इसमें सभी लोगों के प्रति आदर-भाव, उनकी संस्कृति, सभ्यता, मूल्यों और जीवन शैली के प्रति सम्मान निहित है।

न् 1971 से यूनेस्को द्वारा स्थापित शिक्षा के विकास पर गठित अन्तर्राष्ट्रीय आयोग का वार्षिक पोर्ट के अनुसार शिक्षा की प्रमुख आवश्यकता है ''जानना, (to know), हासिल करना (to osses) । यहाँ होना का अर्थ ''व्यक्तित्व और इसके विकास'' से है। सरल शब्दों में कहा जा कता है कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का उद्देश्य पढ़ना, लिखना (3Rj) सीखना है, माध्यमिक तर पर चारित्र निर्माण है, उच्च माध्यमिक स्तर पर समाज को समझना है, और विद्यालय / श्वविद्यालय स्तर पर दक्षता ज्ञान प्राप्त करना है।

ाथमिक शिक्षा सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक का कार्य करती है। भारत के विभिन्न राज्यों में स मामले में जो अन्तर हैं, केरल के अनुभवों का ऐतिहासिक विश्लेषण शैक्षिक प्रगति एवं ामाजिक परिवर्तन के बीच द्वन्दात्मक सम्बन्ध का निरुपण करता है। शिक्षा के प्रसार के लस्वरूप जाति, वर्ग, नगर-नारी भेद आदि की परम्परागत रूढ़ विषमताएँ धूमिल के कारण क्षा का प्रसार और फैल जाता है। केरल ने तो इस मार्ग पर बहुत पहले (19वीं शताब्दी में) चलना आरम्भ कर दिया था। इसी कारण बाद में चहुँमुखी सफलताएँ सम्भव हो पाई। सके एकदम विपरीत उत्तरी भारत के राज्यों के अनुभव रहे हैं। — परम्परागत विषमताओं के शेषतर जाति एवं स्त्री-पुरूष भेदभाव पर आधारित विषमताओं के निर्मूलन में बहुत ही कम फलता मिल पाई है। ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक दृष्टि से पिछड़े रह गये लोग शिक्षा को अपने च्चों के लिए सामाजिक व्यवस्था में ईपर चढ़ने की सीढ़ी मानते हैं। स्वतन्त्रता पूर्व भारत के नेक नेताओं और समाजसुधारकों ने शिक्षा पर ही सर्वाधिक ध्यान देने की आवश्यकता पर ल दिया था। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं। राजाराम मोहन राय, महर्षि कर्वे, स्वामी विवेकानंद, हात्मा गाँधी, जय प्रकाश नारायण आदि।

सेन , 2001)

17.6 परम्परागत व आधुनिक भारत में शिक्षा

रम्परागत भारतीय समाज में अनौपचारिक शिक्षा की प्रमुखता रही है। यह शिक्षा स्कूलों या हाविद्यालयों के माध्यम से नहीं दी जाती थी, अपितु परिवार, पड़ोस, मित्र-मंडली, व अन्य ाथमिक समूहों द्वारा दी जाती थी। प्राथमिक समूह ही समूह या समाज की संस्कृति को पीढ़ी र पीढ़ी हस्तान्तरित करते थे। फिर उच्च जातियाँ, विशेषकर क्षत्रिय वर्ण के लोगों तथा ासकों के बच्चों को शिक्षण -प्रशिक्षण लेने के लिए भी एक विशिष्ट परम्परागत प्रणाली रही । किसी गुरू के निर्देशन में बच्चों को संस्कृति तथा अस्त्र शस्त्र चलाने की शिक्षा दी जाती ी। निम्न वर्गों के बच्चों को इस प्रकार की परम्परागत शिक्षा व्यवस्था से बाहर रखा गया था। रम्परागत शिक्षा व्यवस्था एक सुदृढ़ प्रणाली पर आधारित थी तथा गुरूजनों को अत्यन्त आदर ी दृष्टि से देखा जाता था। शिष्यों से बड़े कठिन परिश्रम तथा आत्म संयम की आशा रखी ाती थी तथा शिक्षा के केन्द्र दूर वनों में या कुछ विशेष नगरों तक ही सीमित थे। इस समय शिक्षा का मुस्त विषय वैदिक साहित्य था।

आधुनिक भारत में, विशेषकर अंग्रेजी शासनकाल में, औपचारिक शिक्षा पद्धति का प्रारम्भ किया गया था। ब्रिटिश काल में शिक्षा का उद्देश्य लिपिक पैदा करना था। शिक्षा शिक्षक, केन्द्रित होने की अपेक्षा छात्र केन्द्रित अधिक थी। शिक्षा ने प्रारम्भिक समय में उच्च जातियों को ही आकर्षित किया, तथा उच्च जातियाँ ही शिक्षा के माध्यम से नये व्यवसायों व नौकरियों पर एकाधिकार प्राप्त कर सकीं। परन्तु कालान्तर शिक्षा के द्वार सभी जातियों के लिए खुल गये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने निम्न जातियों, विशेषकर अनुसूचित जातियों (SCI) और अनुसूचित जनजातियों (STs) एवं पिछड़ी जातियों (O.B.C.) को शिक्षा में विशेष सुविधाएँ प्रदान की हैं। आधुनिक भारत में शिक्षा व्यवस्था प्रशिक्षण, गतिशीलता, आधुनिकता व बृहद स्तर पर सामाजिक परिवर्तन का बड़ा स्रोत है। इसी शिक्षा ने भारतीय समाज को मानव, बौद्धिक व सामाजिक पूंजी प्रदानकर आर्थिक विकास लाने में सहायती दी है। प्रजातन्त्र के सुदृढ़ीकरण, लौकिकवाद के प्रसार, कर्मचारीतन्त्र के लिए प्रशिक्षण, लोगों की मनोवृत्तियों व मूल्यों में परिवर्तन तथा साहित्य, कला व दर्शन के विकास में भी आधुनिक शिक्षा ने भारत में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया है।

परन्तु आधुनिक भारत में शिक्षा, नैतिकता का विकास, नागरिक प्रशिक्षण, राष्ट्रनिर्माण तथा एकीकरण में अधिक सहायक नहीं रही है। इससे बेरोजगारों की संख्या अत्यधिक बढ़ी है। शिक्षा को रोजगारोंन्मुख नहीं बनाया जा सका है। अत: शिक्षा को समाज की आवश्यकताओं व जन-आकांक्षाओं के अनुरूप ढालने की आवश्यकता है।

17.7 शिक्षा, असमानता और सामाजिक परिवर्तन

यद्यपि यह एक तथ्य है कि सभी मनुष्य योग्यता और दक्षता में समान नहीं है, और ऐसे समाज की कल्पना करना भी अविवेकपूर्ण और आदर्शहीन होगा, जो अपने सभी सदस्यों को एक समान प्रस्थिति और लाभ प्रदान कर सके, फिर भी उनके उद्देश्यों और आकांक्षाओं की प्राप्ति के लिए सभी लोगों को समान अवसर प्रदान करना आवश्यक है। यहाँ हम लोगों के बीच आर्थिक असमानता की बात नहीं कर रहे हैं। बल्कि उस असमानता की चर्चा कर रहे हैं। जिसे आन्द्रेबेते ने अपनी पुस्तक 'Inequality among men, में 'आस्तित्व की दशाओं, में असमानता कहा है।

अत: उस समाज का प्रयत्न, जो अवसरों की समानता के लिए कटिबद्ध है, अधिकतर सेवाएं प्रदान करने का रूप ले लेता है। जो समाजीकृत सामुदायिक सेवाओं और शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करके आर्थिक पृष्ठभूमि में असमानता की क्षतिपूर्ति करता है। वास्तव में, इस प्रकार की सुविधाएँ पर्याप्त रूप से व सबको प्रदान करने के मार्ग में कठिनाइयाँ हैं।

सामाजिक स्थिति सुधारने के लिए अवसर की समानता अधुनिकतम (rent) विचार है, जो कि व्यक्ति के जीवन में प्रदत्त स्थिति के महत्व को अस्वीकार करने के बाद अर्जित प्रस्थिति के महत्व को मान्यता देकर स्वीकार किया गया है।

एम. एस. गोरे - (M.S. Gore) ने कहा है कि सामाजिक गतिशीलता तभी सम्भव हुई है, जब से व्यक्ति की स्थिति आनुवांशिक बंधनों से मुक्त हुई है।

भारतीय सन्दर्भ में एम. एस. ए. राव (M.S. A. Rao) का कहना है कि शिक्षा के विभेदीकरण

Differentiating) तथा चयनात्मक कार्य (Selective) एक ही प्रकिया के दो पक्ष हैं। प्रारम्भ में शिक्षा ने भारतीय समाज में जाति प्रथा को ही मजबूत बनाने में सहायती दी, क्योंकि शिक्षा केवल उच्च जातियों तक सीमित थी। नये व्यापारिक व नौकरी सम्बन्धी अवसरों पर भी इन्हीं उच्च जातियों का एकाधिकार हो गया। इसलिए यह कहा जाता है कि शिक्षा ने प्रारम्भ में न केवल असमता बनाये रखने अपितु इसे सुदृढ़ करने में सहायता प्रदान की है। परन्तु कालान्तर में शिक्षा पर उच्च जातियों व सामाजिक - आर्थिक दृष्टि से समृद्ध परिवारों का अधिकार नहीं रहा, अपितु सरकारी प्रयत्नों से निम्न जातियों में भी शिक्षा का विस्तार होने लगा। आज विभिन्न पदों पर चयन वैयक्तिक योग्यता के आधार पर होने लगा है, तथा इसलिए शिक्षा ने सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था को परिवर्तित करने में सहायता प्रदान की है। विभिन्न जातियों में असमानता कम करने तथा खाई को पाटने में शिक्षा की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है।

कई आनुभाविक अध्ययन शिक्षा और असमानता के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं। सन् 1974 ई० में आई० सी० एस० एस० आर० (I.C.S.S.R.) द्वारा प्रायोजित एवं प्रसिद्ध समाजशास्त्री आई० पी० देसाई के निर्देशन 14 राज्यों में अनसूचित जातियें एवं अनुसूचित जनजातियों की स्कूल और कालेज के छात्रों की स्थिति और उनकी समस्याओं का अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में यह संकेत मिला कि दलित छात्र अध्ययन के प्रति उदासीन होते हैं और अशिक्षा असमानता में वृद्धि करती है, तथा व्यावसायिक व सामाजिक गतिशीलता को रोकती है।

सुमा चिटनिस, विक्टर डिसूचा (Victor D.Souza, 1977) एम. एल.झा. सच्चिदानन्द सिन्हा, आदि के अध्ययन इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण है।

17.8 सामाजिक परिवर्तन के स्त्रोत के रूप में शिक्षा

शिक्षा को समाजीकरण की एक प्रमुख एजेन्सी के रूप में और शिक्षकों तथा शैक्षिक संस्थाओं को एजेन्ट के रूप में स्वीकार किया गया है। शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन के एक साधन के रूप में बताने में तीन कारक महत्वपूर्ण है : परिवर्तन का एजेंट, परिवर्तन की विषय वस्तु और उन लोगों का सामाजिक पृष्ठभूमि जिनका परिवर्तन किया जाना है अर्थात् छात्र। विभिन्न समूहों के नियन्त्रण वाली शिक्षण संस्थाएँ उन समूहों के मूल्यों को प्रदर्शित करती है जो उन संस्थाओं का प्रबन्ध और समर्थन करते हैं। ऐसी स्थिति में शिक्षक भी बच्चों में विरोध मूल्य, आकांक्षाएं और अभिरूचियाँ पैदा करते हैं।

भारत में तीव्र सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियां का प्रारम्भ ब्रिटेन के साथ हमारे सम्पर्कों का परिणाम है। अंग्रेजों द्वारा भारत की विजय की प्रक्रिया लगभग एक शताब्दी तक चलती रही। स्वाभाविक था कि वे अपने साम्राज्य की स्थापना के लिए और फिर उसे बनाये रखने के लिए कुछ नयी तकनीकी और संरचनाओं का भारतीय धरा पर आरोपण करते। और ऐसा ही हुआ। उत्पादन में नयी मशीन तकनीक, व्यापार की नयी बाजार प्रणाली, यातायात और संचार के साधनों का विकास, कर्मचारी तन्त्र पर आधारित सिविल सेवा का अखिल भारतीय स्वरूप, औपचारिक और लिखित कानून की स्थापना, प्रथक न्याय व्यवस्था, आधुनक औपचारिक

शिक्षा व्यवस्था के महत्वपूर्ण कदम है, जिन्होंने सामाजिक परिवर्तन के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार की। अंग्रेजों की इच्छा के विपरीत शिक्षा एवं सरकारी सेवाओं के नये आवसरों ने भारतीय समाज में ऐसे शिक्षित प्रबुद्ध वर्ग को जन्म दिया जो अपने समाज की दीन-दशा पर विचार करने के लिए बाध्य हो गया था। इसी वर्ग के नेतृत्व में भारत में समाज सुधार आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र, विद्यासागर, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, गांधी आदि इस आन्दोलन से जुड़े अग्रणी हैं। भारतीय समाज सुधार आन्दोलन के माध्यम से सती प्रथा, विधवा पुन र्विवाह, अस्पृश्यता, जैसी सामाजिक बुराईयों पर लगी रोक को दूर करने का प्रयास किया गया। इस आन्दोलन ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बल प्रदान किया।

इस नये प्रबुद्ध वर्ग और उभरते हुए नये पूँजीपति वर्ग में राष्ट्रीय चेतना का जागृत होना स्वाभाविक था, क्योंकि उनके हितों का संरक्षण इस बात में था कि अंग्रेज अपनी नीतियों में इस प्रकार संशोधन करें कि नीति-निर्माण में और प्रशासन में अधिक से अधिक भारतीयों को प्रतिनिधित्व मिल सके। इन वर्ग हितों ने राष्ट्रीय आन्दोलन को जन्म दिया जो धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ स्वतन्त्रता आन्दोलन के रूप में परिवर्तित हो गया।

स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया योजनाबद्ध और तीव्र गति से आगे बढ़ी। भारतीय संविधान बनाकर और उसे व्यवहार में क्रियान्वित कर भारत में सर्वप्रथम राजनीतिक आधुनिकीकरण की नींव रखी गयी। भारत में यद्यपि पश्चिम को अपना प्रेरणा स्रोत बनाया है, परन्तु आधुनिकीकरण का आपना एक अलग और विशिष्ट माडल अपनाया है।

प्रमुख मूल्य उन्मेष इस प्रकार है : समाजवाद, लौकिकबाद, उद्योगवाद, प्रजातन्त्र, समतावाद, एवं व्यक्ति की स्वतन्त्रता तथा मौलिक अधिकार। इनमें से अधिकांश मूल्य धर्म और जाति पर आधारित परम्परागत भारतीय सामाजिक संरचना के विपरीत है। इसलिए भारतीय समाज में मूल्य संघर्ष की स्थिति दिखाई पड़ती है, और अनेक विघटनकारी शक्तियों ने सिर उठा रखा है।

विकास का उपरोक्त माडल राजनीतिक - प्रशासनिक हैं। राजनेताओं के नेतृत्व में इसका प्रारूप और प्रमुख नीतियाँ निर्धारित की गई हैं। उनकी क्रियान्वयन का प्रमुख दायित्व प्रशासकों पर है। सिद्धान्त रूप में जन-सहभागिता को विकास एवं परिवर्तन का प्रमुख अंग माना गया है। परन्तु व्यवहार में जन-सहभागिता को प्राथमिकता देने की उपेक्षा होती रही है। स्वतन्त्र भारत में निरक्षरता उन्मूलन और सार्वभौमिक शिक्षा के लक्ष्य सामने रखे हैं। आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान के अनुसन्धान, शिक्षम और प्रशिक्षण के विकास के लिए विशेष उपाय अपनाये गये हैं। नये भारत के निर्देशक मूल्य समता और सामाजिक-आर्थिक न्याय है। इसलिए यह आवश्यक है कि शिक्षा की परिवर्तन में भूमिका का विवेचन करते समय परिवर्तन को इसी सर्वग्राही आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अर्थ में लिया जाये।

अनेक समाजशास्त्रियों ने शिक्षा और सामाजिक पुनर्गठन के पारस्परिक सम्बन्धों पर शोध किये हैं— जैसे ए. आर. देसाई (1974), एस. सी. दुबे (1971) एम. ए. गोरे (1973) एन. जयराम (1977) आदि।

आर. देसाई ने सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में शिक्षा की मान्यता पर प्रश्न चिन्ह ाया है। उनका मानना है कि शिक्षा को स्वतन्त्रता के बाद वांछित परिणाम प्राप्त करने के श्य से तैयार नहीं किया गया है।

ा चिटनिस (Suma Chitnis) ने विकास के साधन के रूप में शिक्षा की अनियमितता र्यप्रणाली की ओर संकेत किया है।

ांशत: सामाजिक परिवर्तन के एक स्रोत के रूप में शिक्षा की भूमिका को निम्नलिखित रूपों स्पष्ट किया जा सकता है :

(i) मानव पूँजी का निर्माण

(ii) बौद्धिक पूँजी का विकास

(iii) सामाजिक पूँजी का विकास

(iv) आर्थिक विकास का एक आवश्यक कारण

(v) नागरिकता के प्रशिक्षण की प्रमुख एजेन्सी

(vi) प्रजातन्त्र एवं समाजवाद का सुदृढ़ीकरण

(vii) सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकीकरण में योगदान

viii) कर्मचारी तन्त्र के लिए योग्य पदाधिकारियों का चयन

(xi) लोगों की मनोवृत्तियों और मूल्यों में परिवर्तन

7.8.1 शिक्षा तथा सामाजिक गतिशीलता

ाधुनिक शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का एक प्रमुख आधार है। सामाजिक गतिशीलता का र्थ लोगों का एक सामाजिक स्थिति से दूसरी स्थिति में गतिमान होना है। परम्परागत भारतीय वस्था जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था पर टिकी थी तथा इसमें गतिशीलता की कोई म्भावना नहीं थी। इसीलिए इसे बन्द व्यवस्था कहा जाता रहा है। परन्तु आज औद्योगिक व जातान्त्रिक व्यवस्था ने व्यक्ति को अपनी योग्यता व उपलब्धि के आधार पर एक स्थिति में ाने के अवसर प्रदान किये हैं। ऐसे अवसरों वाली व्यवस्था को हम खुली व्यवस्था कहते हैं। ।:संदेह भारतीय समाज बन्द व्यवस्था से खुली व्यवस्था की ओर बढ़ा है। सामाजिक तिशीलता का अध्ययन सामाजिक परिवर्तन को समझने के लिए आवश्यक हो जाता है। ामाजिक गतिशीलता लम्बवत् तथा समानान्तर, अन्तर-पीढ़ी तथा अन्तरा - पीढ़ी, प्रायोजित वं प्रतियोगी लघु रेंज व दीर्घ रेंज तथा व्यक्तिगत एवं सामूहिक किसी भी रूप में हो सकती ।

ाक्षा को सामाजिक गतिशीलता का प्रमुख अभिकरण माना जाता है, अंग्रेजी शासनकाल में ारत में गतिशीलता को प्रोत्साहन देने में शिक्षा की भूमिका को सभी विद्वान स्वीकार करते हैं। यक्ति के पास जितनी अच्छी और ऊँची शिक्षा होती है उतने ही उसके लिए गतिशीलता के वसर अधिक होते हैं। शिक्षा के नवीन व्यवसायों जैसे अंग्रेजी, चिकित्सा, इन्जीनियरिंग, ंकिंग इत्यादि को भी अत्याधिक प्रोत्साहन दिया है। शिक्षा ने निम्न जातियों में आत्म-विश्वास ादा करने तथा उन्हें विभिन्न पदों पर पहुँचने में काफ़ी सहायता की है।

1966 में कोठारी शिक्षा आयोग ने भारतीय शिक्षा में गतिशीलता तथा सार्थकता लाने के लिए शिक्षा के निम्न उद्देश्य हमारे सामने रखे हैं।

(1) शिक्षा को उत्पादन के साथ जोड़ना

(2) शैक्षणिक कार्यक्रम के द्वारा सामाजिक राष्ट्रीय एकता पर बल देना।

(3) शिक्षा के द्वारा प्रजातन्त्र को विकसित करना,

(4) सामाजिक, नैतिक और अध्यात्मिक मूल्यों का विकास करना,

(5) शिक्षण मनोवृत्ति और मूल्यों के द्वारा कौशल का विकास करते हुए समाज का आधुनिकीकरण करना।

यह शिक्षा द्वारा उत्पन्न सामाजिक चेतना ही है कि लोग सामाजिक स्थिति को अब दैवीय नहीं मानते है वरन् वे अब शिक्षा के आधार पर उच्च सामाजिक स्थिति प्राद्य करने के लिए प्रयत्नशील भी है।

कार्ल वीनवर्ग के शब्दों में "विद्यालय का प्रमुख कार्य, नवीन मार्ग प्रशस्त करना तथा इनमें सभी को स्थान देना है जिससे वह सामाजिक गतिशीलता के बदलते हुए ढाँचे के साथ कदम मिला सके। विद्यालय इस कार्य को तभी पूरा करता है। जब वह सभी प्रकार के आर्थिक स्तरों के बालकों को अपनी उन्नति के लिए व्यापक अवसर प्रदान करेगा।"

शिक्षा से उपरिमुखी गतिशीलता (Upward Mobility) को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। लेकिन शिक्षा के अभाव में अधोमुखी गतिशीलता (Down word Mobility) को बढ़ावा मिलता है।

मिलर और बूक (Miller and Wook) ने शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लिखा है "औपचारिक शिक्षा, सामाजिक गतिशीलता, से प्रत्यक्ष रूप से तथा कारण सम्बन्धित है। इस सम्बन्ध को सामान्यतः इस रूप में समझा जाता है कि शिक्षा स्वयं शीर्षात्मक सामाजिक गतिशीलता का एक प्रमुख कारण है।"

17.9 सारांश

जिसबर्ट का यह कथन प्रासंगिक है कि "शिक्षा का अर्थ उसे ग्रहण करने वाले में उन आदतों और दृष्टिकोणों का विकास करना है जिसके द्वारा वह भविष्य का सफलता पूर्वक सामना कर सके। इसमें शिक्षा ग्रहण करने वाले के द्वारा समाज में प्रचलित मूल्यों के अनुकूल ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करना भी सम्मिलित है।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है। शिक्षा ने भारतीय समाज के लगभग प्रत्येक अंग को परिवर्तित किया है, सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि पक्षों में आमूल-चूल परिवर्तन हुआ। लोगों के अन्दर राष्ट्रीय चेतना के प्रवाह का कार्य शिक्षा ने कार्य किया, जिसका परिणाम अन्ततः भारत में सामाजिक सुधार आन्दोलन के प्रणेताओं के अविर्भाव से हुआ। नवीन तकनीकी और प्रौद्योगिकी जो कि शिक्षा का परिणाम थी समाज को आर्थिक उन्नति एवं तकनीकी प्रगति की दिशा में ले जाने का कार्य किया। शिक्षा के लिए उन्हें उनके अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का बोध कराया। इन कमजोर वर्गों में व्यावसायिक

शीलता भी शिक्षा का ही परिणाम है। राजनीतिक आधुनिकीरण, समतावादी मूल्यों की पना, सामाजिक न्याय आदि शिक्षा का ही परिणाम है।

7.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

तुनिष्ठ प्रश्न

'इन इक्विलिटी अमांग मेन, (Inequality among men) पुस्तक के लेखक हैं ?

A- आन्द्रे बेते B- बी० डी० गोस्वामी C - मिचेल्स D- ट्यूमिन

"आवश्यक समानताओं, को शिक्षा का प्रकार्य किसने माना है।

A - दुर्खीम B– वेबर C - इलिच D- इनमें से कोई नहीं

शिक्षा के लिए 'विशेधीकृत मानको, एवं सार्वभौमिक मानको' पर किसने व्याख्या की है।

A - वेबर B- डेविस व मूरे C - पारसन्स D - समनर

निम्नलिखित में से कौन सा उपागम शिक्षा व्यवस्था एवं अर्थ के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा करता है?

A - उदारवादी उपागम B – मार्क्सवादी उपागम

C - प्रकार्यवादी Δ – इनमें से कोई नहीं

तिलघु उत्तरीय प्रश्न

1 शिक्षा और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालिये ?

2 शिक्षा के प्रकार्यों की विवेचना करिये ?

3 सामाजिक परिवर्तन के स्रोत के रूप में शिक्षा की भूमिका की व्याख्या करिये ?

ध प्रश्नों के उत्तर

1 A

2 A

3 C

4 B

इकाई 18 जनसंचार एवं विकास (Mass Communication and Development)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 जनसंचार माध्यम - अवधारणा व सिद्धान्त

18.3 जनसहभागी प्रसारण- सामाजिक विकास का अस्त्र

18.4 जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका

18.4.1 समाजीकरण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

18.4.2 सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

18.4.3 सामाजिक नियन्त्रण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

18.5 संचार और सांस्कृतिक विकास

18.6 जनसेवा प्रसारण

18.7 सामाजिक विकास के जनसंचार माध्यमों की भूमिका

18.8 विकाशील देशों में इलेक्ट्रानिक जनप्रसारण माध्यम

18.9 सारांश

18.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में जनसंचार की सामाजिक भूमिका पर प्रकाश डाला गया है, तथा यह भी विश्लेषित किया गया है कि जनसंचार और विकास में क्या पारस्परिक संबंध है, सामाजिक - सांस्कृतिक विकास के अस्त्र के रूप में जनसंचार का प्रयोग किस प्रकार हो रहा है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :

- जनसंचार माध्यम की अवधारणा एवं सिद्धान्तों को स्पष्ट कर सकेंगे
- जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।
- जनसेवा प्रसारण एवं संचार तथा सांस्कतिक विकास के सम्बन्ध को विश्लेषित कर पायेंगे
- सामाजिक विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका एवं विकाशील देशों में इलेक्ट्रानिक जनप्रसारण माध्यम को बृहद रूप में जान सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

संचार सामाजिक व्यवस्था का एक भाग है, मर्टन ने अपे इस कथन के प्रमाण में जान डब्लू रिले तथा एम० डब्लू० रिले० के प्रादर्श ''मास कम्यूनिकेशन एण्ड द सोशल सिस्टम, प्रस्तुत किये। रिले बन्धुओं के प्रादर्श के अनुसार संदेश प्रेषक तथा संदेश ग्राहक, संदेश प्रेषण प्राप्ति तथा प्रतिक्रिया व्यक्त करने में सामाजिक व्यवस्था के अन्तरगत एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। संचार की प्रक्रिया एक सामाजिक संगठन के अन्तरगत सामाजिक - सांस्कृतिक तथा प्रोद्योगिक सामाजिक व्यवस्थाओं के मध्य बहुपक्षीय प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करती हैं। जनसंचार एवं समाज के पारस्परिक संबंधों के कारण जनसंचार विकास का एक महत्वपूर्ण पाथेय बन जाता है। जनसंचार माध्यमों का आरम्भ मुद्रण तकनीक के साथ हुआ था। सदियों तक मुद्रित शब्द माध्यम ने मनुष्य की संस्कृति, आचार-व्यवहार तथा विचारों को प्रभावित किया। आज सेटलाइट से सम्बद्ध रेडियो-टेलीविजन के साथ-साथ मल्टीमीडिया, सी० डी० रां, तथा इन्टरनेट जैसे उच्च तकनीकी के इलेक्ट्रानिक माध्यमों ने एक सीमा तक दुनिया को एक भूमंडलीय गाँव में बदल दिया है। विकास के लिए संचार आवश्यक है और वह अपने आप में पर्याप्त नहीं है। उसकी अग्रगामी और पूरक भूमिकाएँ विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करती हैं और योजनाओं के कार्यान्वयन में अनेक रूपों में सहायक होती हैं। जन-सहमति और जन-सहयोग विकास योजनाओं की सफलता के लिए अनिवार्य है। राष्ट्रीय लक्ष्य और उनकी प्राप्ति के साधन इन दोनों पर न्यूनतम सहमति के बिना विकास योजनाओं का क्रियान्वयन यदि संभव नहीं हो तो कठिन जरूर होता है। जन-सहयोग की भावना विकसित करके ही साधनों और जनशक्ति का समुचित संगठन किया जा सकता है। संचार - साधनों के योजनाबद्ध उपयोग से जनता का ध्यान विकास-योजनाओं पर केन्द्रित किया जा सकता है और उसकी रूचि इन योजनाओं में जाग्रत की जा सकती है।

इस इकाई के भाग 2.2 में 'जनसंचार माध्यम : अवधारणा व सिद्धान्त को व्याख्यायित किया गया है।

भाग 2.3 का शीर्षक 'जन सहभागी प्रसारण : सामाजिक विकास का अस्त्र है।

भाग 2.4 में विस्तृत रूप में जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका का उल्लेख किया गया है।

भाग 2.5 में संचार और सांस्कृतिक विकास के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा की गई है।

भाग 2.6 एवं भाग 2.7 में जनसेवा प्रसारण व सामाजिक विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

18.2 जनसंचार माध्यम : अवधारणा व सिद्धान्त

जनसंचार माध्यम या मांस मीजिया का तात्पर्य ऐसी तकनीक या उपकरण से है, जिसके द्वारा समान संदेश, लगभग एक ही समय में बहुत से व्यक्तियों के बीच पहुँचाया जा सके। सामाजिक जनसंचार शास्त्री जे० कार्नर के मत में ''जनसंचार संदेश के बड़े पैमाने पर उत्पादन

तथा बृहद स्तर पर विषम वर्गीय जनसमूहों में द्रुतगामी वितरण करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में जिन उपकरणों या तकनीक का उपयोग किया जाता है, उन्हें जनसंचार माध्यम कहा जाता है।''

आधुनिक जनसंचार माध्यम ऐसे व्यक्तियों के बीच सामान्य सहमति का निर्माण करते हैं जो आमतौर पर परस्पर आमने-सामने नहीं मिलते हैं। समाज में सामान्य सहमति के निर्माण की प्रौद्योगिकीय प्रक्रिया के कारण जनसंचार माध्यम समाज की संस्कृति को भी प्रभावित करते हैं। वस्तुत: जनसंचार माध्यम संदेश उत्पादन तथा वितरण की प्रक्रिया में एक बड़े सामाजिक समूह को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करते हैं, जिसके कारण समूह की संस्कृति के भौतिक या अभौतिक दोनों ही प्रारूपों पर सकारात्मक या नकारात्मक परिवर्तन हो सकते हैं।

जनसंचार संबंधी नीतियाँ निजी और सार्वजनिक दोनों ही प्रकार के संगठनों की साहित्यिक कलात्मक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक प्राथमिकताओं के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है। इसी कारण सामाजिक संचारशास्त्र की मान्यता है कि जनसंचार मात्र सूचनाओं के आदान प्रदान की प्रक्रिया नहीं है; व्यापक समझ, धारणा निर्माण तथा आपसी सहमति इसकी विशेषताएँ हैं। उन्नत तकनीकी दृष्टि से आधुनिक जनसंचार माध्यमों की गति अबोध है लेकिन सामाजिक विचार को के मत में उन्नत प्रोद्योगिकीय तकनीक के कारण अबाध गति के ये संचार माध्यम समाज के कुछ वर्गों तक ही सीमित भी रह सकते हैं।

जनसंचार के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं :-

1. जनसंचार माध्यम, शिक्षा ज्ञान तथा सूचनाओं का एकत्रीकरण तथा उनका प्रचार - प्रसार करते हैं।
2. मतैम्य या सर्वसम्मति के निर्धारण में जनसंचार माध्यम महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।
3. जनसंचार माध्यम समाज की संस्कृति और विरासत को जीवित रखतु हुए, अगली पीढ़ी को उनके हस्तान्तरण में सहायता करते हैं। विकासशील देशों में फोक (folk) मीडिया भी यही कार्य करते हैं
4. मनोरंजन जनसंचार माध्यमों का महत्वपूर्ण कार्य है। पारस्परिक लोक माध्यमों की तरह तनाव मुक्ति तथा मानसिक संतुष्टि के लिए मनोरंजन प्रदान करना जनसंचार माध्यमों के लिए आवश्यक हैं।
5. जार्ज गर्वनर के मत में जनसंचार माध्यम समाज तथा राष्ट्र विशेष की सभ्यता व संस्कृति के प्रतीक रूप में भी कार्य करते हैं।

18.3 जनसहभागी प्रसारण-सामाजिक विकास का अस्त्र

आज रेडियो-टेलीविजन कार्यक्रम प्रसारकों के लिए एक महत्वपूर्ण शब्द है ''कार्यक्रमों में श्रोताओं / दर्शकों की सम्बद्धता''-अर्थात् लिनर्स इनवातवमेंट।

डी० स्टीफंस के अनुसार — ''अपने आरम्भिक विकास काल में पारम्परिक रेडियो, एक तटस्थ तथा स्टूडियो से एक ही दिशा में प्रसारण करने वाला शहरी माध्यम था।''

म्बे समय तक रेडियो कुलीन वर्ग का ही माध्यम बना रहा। इसकी सूचना, प्रचार तथा नोरंजन में तो भूमिका थी लेकिन आमजनों के जीवन में इसका सम्बन्ध न के बराबर था। लीविजन तो एक दुर्लभ प्रतिष्ठासूचक उपकरण मात्र था। दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् रेडियो-लीविजन के कार्यक्रमों की सामाजिक भूमिका स्पष्ट होने लगी।

ा० हेराल्ड ए. फिशर के अनुसार - ''1990 के रेडियो - टेलीविजन अपने श्रोता-दर्शक मुदायों के बीच विकेन्द्रीकृत, बहुपक्षीय संवादी तथा जनसहभागी प्रसारण वैकासिक संचार ो आधुनिकतम तकनीक है।

सरी दुनिया के देशों के सामाजिक - आर्थिक विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका की इली अवधारणा 1958 में समाज वैज्ञानिक डेनियल लर्नर ने अपने शोध ''द पासिंग आफ डेशनल सोसाइटी, के द्वारा प्रस्तुत की। लर्नर द्वारा प्रस्तुत आधुनिकीकरण, की अवधारणा में हा गया कि विकास के लक्ष्य की दिशा में वैयक्तिक और सामूहिक दोनों ही प्कार के प्रयास ावश्यक है। लर्नर ने विकास के आधुनिक व्यक्तित्व में परानुभूति तथा गतिशीलता के साथ-थ 'उच्च सहभागिता, को महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस अवधारणा का मत था कि एक ाधुनिकीकृत समाज में व्यक्ति की उच्च स्तरीय सहभागिता आवश्यक है। व्यक्ति सक्रिय और हभागी होकर ही सामाजिक विधयों से जुड़ कर, उनके बारे में खुले मन से विचार करता है। ा प्रकार निर्णय की प्रक्रिया निर्धारित होती है। आधुनिकीकरण अवधारणा में अभिवृत्ति और ल्यों में परिवर्तन के लिए जनसंचार माध्यमों का प्रभावी उपयोग किया जाना चाहिये। समाज ज्ञानिक डा० श्यामाचरण दुबे कहते हैं— ''विकास की प्रक्रिया को सही अर्थों में सहभागी ाने वाले प्रयास के विजय में सोचना आवश्यक है। यह तभी संभव होगा जब आम आदमी ो सही अर्थों में, न केवल सत्ता और संसाधनों में तक पहुँच हो।''

डियो और टेलीविजन को विकास के महत्वपूर्ण संसाधनों में शामिल किया गया है। नसहभागी संचार की दो मुख्य तकनीक हैं—

ब्राजील के शिक्षाशास्त्री पाडले फ्रेयरे द्वारा प्रतिपादित ''संवादात्मक पद्धति''

यूनेस्को द्वारा प्रतिपादित लोकतान्त्रिक जनंसचार माध्यमों में आम जनों की सहज पहुँच, सहभागिता तथा स्व-प्रबंधन के सिद्धान्त।

डले फ्रेयरे शिक्षा के आम जनों की सामाजिक - आर्थिक तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए ाया जाने वाला ऐसे सांस्कृतिक कार्य नामते हैं, जो व्यक्ति के ज्ञान में वृद्धि कर उसकी चेतना ा विस्तार करता है। फ्रेयरे ने ब्राजील में साक्षरता अभियान के अन्तगत पिछड़ी बस्तियों तथा ंसानों के बीच व्यावहारिक देशज संवादात्मक पद्धति का विकास किया। यूनेस्को के प्रस्ताव अनुरूप तीसरी दुनिया के देशों में रेडियो में जनसहभागी प्रसारण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य ाया है। निर्धनता, बेरोजगारी, निरक्षता, लैंगिक पक्षपात, कुपोषण, बढ़ती जनसंख्या, एड्स सी सामाजिक समस्याओं के लिए जनसहभागी रेडियो केन्द्रों द्वार कार्यक्रम प्रसारित किये ाते हैं।

ज्ञापन तथा व्यावसायिक संदेशों की रचना तथा जनसंचार माध्यमों द्वारा उनका वितरण आपस जुड़े कुछ क्रमबद्ध चरणों का औद्योगिकीय प्रक्रिया है। लेकिन वैकासिक संचारशास्त्र के

अन्तरगत जनसहभागी संदेशों की रचना तथा उनका प्रसारण, सामाजिक गतिशीलता की एक ऐसी प्रक्रिया है। जिसका उद्देश्य श्रोताओं की सामाजिक भागीदारी सुनिश्चित करना जरूरी है।

संचार शास्त्री वाल्टर डिक के अनुसार इन क्रमबद्ध चरणों द्वारा जनसहभागी संदेश के निर्माण व प्रसारण द्वारा सामाजिक विकास के लक्ष्य में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

1. विजय के संबंध में सही, निष्पक्ष, पूर्वाग्रहमुक्त तथा सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना।
2. विजय के संबंध में एकत्र जानकारी की विभिन्न सूत्रों से जांच।
3. श्रोताओं की दैनिक आदतों तथा मूल्यों का अध्ययन।
4. श्रोताओं की सामाजिक संस्कृति का मूल्यांकन
5. लक्षित समाज में कोई निषेध हों तो उनकी जानकारी प्राप्त करना।
6. श्रोताओं की जीवन-शैली, मूल्यों, संस्कृति, प्राथमिकताओं के आधार पर प्रसारण प्रारूपों का निश्चय
7. विषय के सम्बन्ध में श्रोताओं की भावनाओं तथा ज्ञान की जानकारी के लिए उनसे संवाद।
8. इस संवाद के आधार पर विजय के सम्बन्ध में श्रोताओं के पूर्वज्ञान, विश्वास, दृष्टिकोण तथा व्यवहार का मूल्यांकन
9. निर्धारित उद्देश्य प्राप्त करने हेतु माध्यम तथा कार्यक्रम आवृत्ति का निर्धारण
10. रचनात्मक प्रभावी योजना पैकेज की रचना।
11. संदेश के प्रसारण के पश्चात् उसकी ओर श्रोताओं के ध्यान, बोधगम्यता तथा क्रियान्वयन का अध्ययन।

18.4 जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका

संचार तथा सामाजिक जीवन के बीच गहरा सम्बन्ध है। पारस्परिक जागरूकता सामाजिक सम्बन्धों का एक अनिवार्यतत्व है। संचार पारस्परिक जागरूकता की सामाजिक क्रिया है। आज प्रविधि और संचार एक - दूसरे के अविभाज्य अंग बन गये हैं; और मानव की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं में बढोत्तरी करते जा रहे हैं। आज के समाज में संचार ने एक नयी महत्वपूर्ण सामाजिक भूमिका ग्रहण कर ली है। जनसंचार माध्यमों की तीन प्रमुख सामाजिक प्रक्रियायें इस प्रकार हैं —

(A) समाजीकरण

(B) सामाजिक परिवर्तन

(C) सामाजिक नियन्त्रण

18.4.1 समाजीकरण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

जनसंचार माध्यम समाजीकरण के प्रमुख माध्यम हैं। मानव समाज बुद्धि, तर्क, रीति-नीति, तथा सामाजिक -सांस्कृतिक परम्पराओं की सतत् प्रक्रिया द्वारा विकास की ओर गतिशील है। इस गति को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि वह इनका हस्तान्तरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करता रहे। संचार की विभिन्न विधाएं हस्तान्तरण की इस प्रक्रिया में सहायता कर सामाजिक निरन्तरता बनाये रखती है। समाजीकरण का मूल आधार ही संचार है।

मनुष्य जैविकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी तब बनता है जब संचार द्वारा सांस्कृतिक अभिवृत्तियों, मूल्यों और व्यवहार प्रकारों को आत्मसात कर लेता है। व्यक्ति के समाजीकरण में संचार के महत्व को समझने के लिए समाजीकरण की प्रक्रिया के तत्वों की जानकारी सहायता कर सकती है।

अन्तर-वैयक्तिक संचार तथा जनसंचार दोनों ही रूपों में संचार की प्रक्रिया व्यक्ति में सामाजिक जागरूकता उत्पन्न कर उसे सामाजिक व्यवहार अपनाने हेतु प्रेरित करती है। जनसंचार माध्यम स्वयं भी सामाजिक संस्थानों के रूप में नयी मान्यताओं तथा मूल्यों का प्रचार-प्रसार कर पुनसमाजीकरण करते हैं। इस प्रक्रिया में पूर्व प्रचलित सांस्कृतिक अभिवृत्तियों, रीति - नीति तथा मूल्यों में परिवर्तन होता है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया सदैव कल्याणकारी हो यह आवश्यक नहीं है। आधुनिक जनसंचार माध्यमों की प्रगति के साथ समाजीकरण की प्रक्रिया में भी परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के अध्ययन में स्पष्ट करते हैं कि इन माध्यमों के सामाजिक दायित्व में बढ़ोत्तरी ही हुई है। क्योंकि आधुनिक समाज जनसंचार माध्यमों पर अधिक आश्रित हो गया है।

18.4.2 सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

समाजशास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार सामाजिक परिवर्तन एक अनिवार्य सामाजिक घटना है, लेकिन गति प्रत्येक समाज में समरूप नहीं होती है। अधिकांश समाजों में इसकीगति इतनी धीमी होती है कि सामान्यत: आमजनों को इसका आभास नहीं होता है। जीवन की स्वीकृति रीतियों में परिवतन को सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। इन परिवर्तनों के कारण इस प्रकार हो सकते हैं-

1. भौगोलिक दशाओं के कारण
2. सांस्कृतिक साधनों के कारण
3. जनसंख्या की संरचना
4. विचार धाराओं में परिवर्तन
5. सामाजिक समूह में आंतरिक या बाहरी अविष्कारों के प्रसार के कारक भी परिवर्तन हो सकते हैं।

सामाजिक परिवर्तन के कारकों के विश्लेषण हेतु समाजशास्त्री एकमत नहीं हैं। कार्लमार्क्स आर्थिक कारकों को, मैक्सवेबर धार्मिक कारकों को, सोरोकिन, सांस्कृतिक कारकों को

सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी मानते हैं। लेकिन आधुनिक समाज वैज्ञानिकों के मत में मानवीय विवेक द्वारा चेतन और व्यवस्थित प्रयत्नों द्वारा सामाजिक परिवर्तन किया जा सकता है।

रेमंड विलियम्स, पाउलो फेयरे, डेनियल लर्नर, रोजर्स इत्यादि कई आधुनिक संचार-समाज वैज्ञानिकों ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में जनसंचार माध्यमों की भूमिका पर नयी दृष्टि से विचार किया है। नयी मान्यताओं के अनुसार शिक्षा और ज्ञान के माध्यम से बुद्धि भावना को जीता जा सकता है। ताकि सामाजिक प्रगति की दिशा से सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी नियोजन संभव हो सके।

समाज वैज्ञानिक आगवर्न के मत में, प्रोद्योगिकी, समाज को पर्यावरण में परिवर्तन द्वारा, जिसके प्रति हमें अनुकूलित होना पड़ता है, बदलती है। यह परिवर्तन प्राय: भौतिक पर्यावरण में पहले आता है। हम इन परिवर्तनों के साथ जो अनुकूलन करते हैं, उससे प्रथाओं तथा सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन हो जाता है। यह तथ्य संचार साधनों पर भी लागू होता है। आधुनिक इलेक्ट्रानिक माध्यम प्रोद्योगिकीय परिवर्तनों की उपज है। इस कारण इन माध्यमों ने सामाजिक संबंधों में अनेक परिवर्तन उत्पन्न कर सामाजिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

जनसंचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में सामाजिक विवेक तथा सामाजिक सहमति का निर्माण भी करते हैं। कोई भी समाज व्यवस्था अपने आप में पूर्ण नहीं हो सकती है। जनसंचार साधनों के माध्यम से की गयी चर्चा से, नवीन वैचारिक स्थितियों और उनकी समस्याओं को उनके व्यापक सामाजिक परिदृश्य में समझने में सहायता मिलती है। कई स्तितियों में जनसंचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज को नेतृत्व भी प्रदान करते हैं। जनसंचार माध्यमों की कार्यप्रणाली में सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। व्यावसायिक आवश्यकताओं या तथाकथित यथार्थ सूचना के त्वरित पम्प्रेषण की जिम्मेदारी के नाम पर ये माध्यम अपने सामाजिक उत्तरदायित्व से नहीं बच सकते। मुख्य बात यह है कि जनसंचार माध्यम जन समाज के लिए है, इस कारण समग्र सामाजिक कल्याण की निगरानी इनका मुख्य उत्तरदायित्व है। यही कारण है कि संदेश के प्रसारण के पूर्व, उस संदेश के सभी पक्षों का उचित सामाजिक विश्लेषण आवश्यक है। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में जनसंचार माध्यमों को अपना सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया में जनसंचार माध्यमों को अपना सामाजिक उत्तरदायित्व समझते हुए केवल वहीं प्रयत्न करना चाहिये, जो समाज के लिए सकारात्मक हों।

18.4.3 सामाजिक नियन्त्रम में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

सामाजीकरण तथा सामाजिक परिवतन के साथ-साथ सामाजिक गतिविधियों में समरसता का व्यवस्था बनाये रखना जनसंचार माध्यमों का मुख्य सामाजिक उत्तरदायित्व है। यही कारण है कि समाज शास्त्रियों ने जनसंचार माध्यमों को जनमत के अभिकरण के रूप में सामाजिक

नियन्त्रण के सशक्त साधनों में सम्मिलित किया है।

लैंडिस के अनुसार – ''सामाजिक नियन्त्रण एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है, और सामाजिक संगठन के निर्मित व संरक्षित किया जाता है।''

डा० राधाकमल मुखर्जी अपने ग्रंथ ''द शोशल स्ट्रक्चर आफ वैल्यूज'' की भूमिका में लिखते हैं—''मनुष्य और समाज-तैरती हुयी बत्ती और गहरे तेल के बीच चलने वाले अनन्त आदान-प्रदान से मूल्य अनुभव की उजली स्थिर ज्योति पनपती है, जो कि हमारे नीरस और निरानन्द विश्व को निरन्तर प्रकाश और गरमाहट देती रहती है।

स्पष्ट है कि जब तक समाज के सारे सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थों, आकांक्षाओं व भावनाओं को सारे समाज की कल्याण प्रक्रिया में नहीं समाहित करेंगे। सामाजिक संगठन प्रभावी ढंग से काम नहीं कर सकेगा। इसलिए सामाजिक नियन्त्रण द्वारा वैयक्तिक सदस्यों के व्यवहार को समाज की आवश्यकतानुसार नियन्त्रित करना आवश्यक है।

आधुनिक जनसंचार माध्यम जनमत निर्माण व इसकी अभिव्यक्ति के मुख्य अभिकरण हैं। प्रतिदिन मुद्रण जनसंचार माध्यम विभिन्न प्रकाशनों के माध्यम से समसामायिक घटनाओं व नीतियों के सम्बन्ध में सामग्री प्रकाशित करते हैं। प्रकाशित तथ्य, सूचनाएँ विश्लेषण पाठकों के विचारों को प्रभावित करते हैं। सामाजिक तथा असामाजिक गतिविदियों को प्रकाशित कर प्रचलित नैतिक मूल्यों, नियम-कानूनों का दबाव बनाते हैं। इस प्रक्रिया द्वारा निश्चित दिशा में जनमत का निर्माण होता है। और जनमत सामाजिक नियन्त्रण का एक अच्छा अभिकरण है।

प्रचार के लिए भी जनसंचार माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। एडंसन व पार्कर के अनुसार ''प्रचा किसी पूर्वनधारित विचार या कार्यरेखा के समर्थन हेतु लोगों को अभिप्रेरित करने के लिए जनसंचार माध्यमों का सोचा-समझा प्रयोग है।''

सामाजिक निर्माम कार्यों तथा सामाजिक अविष्कारों तथा परिवार कल्याम, अस्पृश्यता आन्दोलन, साक्षरता, प्रचार, जनगणना इत्यादि के लिए प्रचार का सहारा लिया जाता है। आधुनिक समाजों में प्रचार व जनमत सामाजिक नियन्त्रण के प्रभावशाली अभिकरण बन गये हैं, वर्तमान समाजों का आकार इतना बड़ा है कि उन्हें नियन्त्रण के प्राथमिक साधनों जैसे-धर्म, नैतिकता, परिवार, प्रथाओं, जनरीतियों के द्वारा ही नहीं नियन्त्रित रखा जा सकता है।

क्रच और क्रचफील्ड (Krech and Crutechfield) का कथन है कि ''प्रचार ने उन शक्तियों में उच्च प्राथमिकता प्राप्त कर ली है जो मनुष्य के जीवन को नियन्त्रित करते हैं।'' उपरोक्त विश्लेषण में जनसंचार माध्यमों की सामाजिक नियन्त्रण में भूमिका स्पष्ट हो जाती है।

18.5 संचार और सांस्कृतिक विकास

संचार के साधनों का विकास और उसके संदेशों की सुलभता यदि एक ओर सामाजिकता की परिभाषा को प्रभावित करते हैं, तो दूसरी ओर उनके द्वारा समाजीकरण की प्रक्रिया में अनेक मूलभूत परिवर्तन होते हैं। जब मनुष्य के पास मौखिक संचार की सीमित शक्ति थी, व्यक्ति का समाजीकरण परिवार और प्राथमिक समूह के सीमित दायरे में होता था। लिपि के अविष्कार

और प्रसार में बाद एक संस्थागत क्रान्ति हुई। परिवार और अन्य प्राथमिक समूहों का कुछ उत्तरदायित्व इस क्षेत्र में अब भी रहा, परन्तु नयी संस्थाओं की साझेदारी उन्हें स्वीकार करनी पड़ी।

संचार व्यवस्था का दूसरा मुख्य दायित्व है-सामाजिक गतिविधियों की निगरानी करना, संचार का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य है—व्यक्ति और समाज के संज्ञानात्मक मानचित्र का विस्तार। नयी सूचनाएँ मानसिक क्षितिजों को विस्तारित करती हैं। और आकांक्षाओं के धरातल को उठाती है। उनके कारण नई अभिरूचियाँ उत्पन्न होती हैं। समस्याओं और उनके संभव समाधानों पर ध्यान केन्द्रित होता है, और प्रयोग की प्रवृत्ति जाग्रत होती है।

मानव के सामाजिक और सांस्कृतिक विकास की कहानी ने संचार की प्रक्रिया तथा उसके प्रभावों और परिणामों, सम्भावनाओं और सीमाओं को जानना आवश्यक है। जीव जगत में मानव अपने-आपको एक विशिष्ट और उच्च कोटि का प्राणी मानता है। यह उसका दंभ नहीं है, क्योंकि उसकी कई क्षमताएँ अद्वितीय है, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण उसकी अभिव्यक्त करने की क्षमता है। संदेश दे सकने और ले सकने की क्षमता ने मानव के सामाजिक अंतः सम्बन्धों को एक विशेष स्वरूप प्रदान किया है। सीमित संचार साधनों के समय में समाज छोटी-छोटी इकाईयों में बँटा हुआ था। इसके विपरीत, जनसंचार के माध्यमों के अभूतपूर्व विकास ने सामाजिक विश्व को संकुचित कर एक बड़ा सा गांव बना दिया है। सांस्कृतिक सात्मीकरण की प्रक्रिया भी यहीं से प्रारम्भ हुई।

भाषा का विकास मानवीकरण की प्रक्रिया का प्रमुख अंग था। प्राइमेट वर्ग की जिस शाखा ने मानव बनने की राह अपनायी, उसने पूर्ण मानव बनने के पहले ही संस्कृति के कुछ तत्वों को विकसित कर लिया था। इन तत्वों में प्रतीक व्यवस्था भी थी, जिसने उसे अभिव्यक्ति की सीमित शक्ति दी। मौखिक संस्कृति ने मानव-जीवन के आयाम बदले, और परम्पराओं को स्थायित्व देने में आश्चर्यजनक सफलता पायी।

यद्यपि इस सबके वाद भी संचार के दो निपुण अध्येताओं मर्टन और लेजार्सफेटड का यह कथन नहीं भूलना चाहिये कि "स्चार उदासीनता की जन्म देता है, उसका प्रभाव मादक पदार्थों के प्रभाव जैसा हो सकता है। उनका कहना है कि बहूसूचित नागरकि, विशेष स्थितियों में सक्रिय नागरिक नहीं रहता, वह अक्रिय नागरिक बन जाता है।

18.6 जनसेवा प्रसारण

ब्रिटिश प्रसारक जॉन बिर्ट ने जनसेवा प्रसारण की अवधारणा को बीसवीं सदी में रेडियो - टेलीविजन के सबसे बड़े सामाजिक अविष्कार तथा जनसंचार क्षेत्र की उपलब्धि कहा है। जनसेवा प्रसारण जनप्रसारण की एक ऐसी प्रविधि को कहा जाता है, जिसके अन्तरगत प्रसारक का पहला कर्तव्य लोक तान्त्रिक आदर्शों के अन्तरगत आमजनों को सूचना, शिक्षा तथा मनोरजन हेतु प्रसारण सेवाएं उपलब्ध कराना होता है।

जनसेवा प्रसारण का उद्देश्य एक ऐसे व स्वस्थ सामाजिक पर्यावरण के निर्माण में योगदान देते हुए, आमजनों के जीवन में संवर्धन आपसी सामाजिक सम्बन्धों में घनिष्ठता व संदेवनशीलता

कसित करने के लिए जनसंचार सुविधाएँ प्रदान करना है।

ाउले फ्रेयरे ने विकास के लिए चेतना विस्तार की आवश्यकता प्रतिपादित की थी। चेतना स्तार की परिकल्पना एक लोकतान्त्रिक सामाजिक व्यवस्था में ही सम्भव है। जनसेवा सारण का उद्देश्य भी विकास के संदेश के प्रति आम-जनों की रूचि जागृत करना है। ोकतान्त्रिक नागरिकों के निर्माण हेतु यह प्रविधि समाज को सूचनाएं, शिक्षा तथा गति प्रदान रती है। लोकतन्त्र की रक्षा हेतु निष्पक्ष तथा समान अवसरों तथा राष्ट्रीय मूल्यों की स्थापना, ागरिक अधिकारों तथा स्वतन्त्रता की रक्षा, एकता तथा विविधता का संतुलन संरक्षण तथा ष्ट्रीय तथा सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विकास प्रक्रिया को प्रोत्साहन जनसेवा प्रसारण ा मूल लक्ष्य हैं।

नसेवा प्रासरण का मूल दर्शन सामाजिक जनसंचार के उत्तरदायित्वों से सम्बद्ध है। जनीतिक द्वैतवाद तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के अन्तरगत जनसंचार माध्यमों का यह दायित्व कि वे समाज के गर वर्ग को विचारों तथा दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति का समान तथा यथेष्ट वसर प्रदान करे। रेडियो और टेलीविजन मात्र उपकरण नहीं है। उनका महत्व बुनियादी ोकतन्त्र तथा साधारण नागरिकों को सम्पूर्ण सामाजिक विकास तथा सामाजिक परिवर्तन हेतु सारण सेवाएं उपलब्ध कराने के कारण है। जनसेवा प्रसारण का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य ाम आदमी तथा नीति निर्धारकों के बीच आपसी संवाद के लिए एक मंच प्रदान करना है।

सी कारण विकासशील देशों में जनसेवा प्रसारण व्यवस्था के विकास की आवश्यकता है। क समान राष्ट्रीय दृष्टिकोण के विकास के साथ-साथ यह प्रविधि तीसरी दुनिया के देशों की हुभाषी, तथा विविध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में विविधता में सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता के ाए अनिवार्य है।

8.7 सामाजिक विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

चार की सामाजिक भूमिकाओं के रेखांकन में संचार के महत्वपूर्ण कार्य मानव के विकास के धिकरण के रूप में इसकी भूमिका है। मानवीय प्रयास विवेक के नियन्त्रणीधीन होते हैं, त: प्रकृति में बौद्धिक तत्वों को विकसित कर इसे विकास की प्रकिरया में प्रमुख घटक के प में प्रयुक्त किया जा सकता है। निश्चित रूप से एक मनोवैज्ञानिक अभिकरण के रूप में नसंचार माध्यमों की इस प्रक्रिया में महती व अनिवार्य भूमिका है। यह कहा जा सकता है क किसी भी राष्ट्र या समाज का विकास इस तथ्य पर निर्भर करता है कि कितनी कुशलता में चना व तकनीक सभी नागरिकों तक पहुँचाई जा सकती है।

र्तमान में विकास की अवधारणा मात्र आर्थिक आय या उत्पादन वृद्धि से सम्बन्धित नहीं है। सके मानकों में सामाजिक - आर्थिक असमानताओं में कमी तथा विकास प्रक्रिया में ागरिकों की सहभागिता बढ़ाने से है। विचारक डडले सीयर्स ने कहा था— "एक देश के ाकास के बारे में पूछे जाने वाले प्रश्न हैं—

) गरीबी के साथ क्या हो रहा है ?

) बेरोजगारी के साथ क्या हो रहा है?

(C) असमानता के साथ क्या हो रहा है?

यदि इन तीनों की उच्च मात्राओं में कमी आई है तो नि:संदेह उस देश में उक्त अवधि में विकास हुआ है। यदि इनमें से एक या दो केन्द्रीय समस्याओं की हालत दयनीय हुई है। विशेषत: यदि तीनों की तो इस परिणाम को विकास नहीं कह सकते, चाहे प्रति व्यक्ति आय दुगुनी ही क्यों न हो जाये।

डा० एस० सी० दुबे का मत है कि वास्तविक विकास जनता में इस प्रकार के निवेश से जुड़ा होता है, जो उसे तथा समाज को अपनी आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के बाद में क्रमश: उनके जीवन की गुणवत्ता (Quality of life) में सुधार लाने की दिशा में अग्रसर होती है।

बीसवीं शताब्दी में पाँचवे-छठें दशक के विकसित, विकास के मानसिक प्रादर्श में यूरोप व अमेरिका में हुई औद्योगिक क्रान्ति को आधार बनाया गया था। विकास के इस पश्चिमी प्रादर्श में विकासशील राष्ट्रों में आयातित तकनीक पूँजी, औद्योगीकरण व नगरीकरण अवधारणाओं की लोक प्रियता को प्रोत्साहन प्रमुख था।

इस प्रदर्श के अन्तरगत डेनियल लर्नर आदि समाज शास्त्रियों ने जनसंचार साधनों को विकास के प्रत्यक्ष शक्तिशाली माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित किया। इन विद्वानों ने जनसंचार माध्यमों को तीसरी दुनिया में विकास के गुणक यंत्र के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रादर्श में जनसंचार माध्यमों की भूमिका एकपक्षीय थी, मूलत: इनका कार्य राजकीय विकास एजेन्सियों की सूचनाओं को नागरिकों तक पहुँचाया था।

वस्तुत: यूरोप व अमरीकी विकास पर केन्द्रित अवधारणा ने तीसरी दुनिया के देशों की सामाजिक समस्याओं का हल खोजे बिना विकास का जो मंत दिया था वह पारम्परिक घोर दरिद्रता, अशिक्षा, विशाल जनसंख्या, तथा प्राकृतिक स्रोतों के उपयोग के लिए पर्याप्त संसाधनों के अभाव में असफल हो गया। सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत को समझे बिना शीघ्रता से ही प्रोद्योगिकीय परिवर्तन के कारण विकास की प्रक्रिया विचलित मार्ग पर चल पड़ी। इसके परिणाम स्वरूप विकासशील देशों में बेरोजगारी, अनियोजित शहरीकरण, विस्थापन जैसी सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो गयीं। इन समस्याओं ने स्वास्त्य, पर्यावरण तथा पोषण से सम्बन्धित कई गम्भीर चुनौतियाँ खड़ी कर दी, इस कारण यह आवश्यक समझा गया कि तीसरी दुनिया के देशों की विकास की समस्या का हल उन्हीं देशों के सामाजिक - सांस्कृतिक पर्यावरण तथा मानवीय व प्राकृतिक संसाधनों के आंकलन के आधार पर खोजा जाये। (यूनेस्को सम्मेलन, 1977)

इसी क्रम में सामाजिक विकास की नयी अवधारणाएँ बहुपक्षीय विकास के विचार पर केन्द्रित थीं। आधुनिकीकरण तथा विकास मनुष्य समाज के सवांगींण विकास के लिए होना चाहिये। आर्थिक विकास के स्थान पर सामाजिक विकास आधिक व्यापक है। क्योंकि सामाजिक विकास में आर्थिक विकास का लक्ष्य भी शामिल है। वृद्धि दर, सकल राष्ट्रीय उत्पाद तथा प्रति व्यक्ति आय के आंकड़े मात्र आर्थिक विकास के द्योतक है। जबकि विकास का अर्थ अधिक व्यापक है, तथा उसमें एकल राष्ट्रीय कल्याण (जी. एन. डब्लू) की भावना के साथ सम्पूर्ण सामाजिक विकास के व्यापक सामाजिक लक्ष्य का आदर्श शामिल है।

ाधुनिक सामाजशासत्र के मत में सामाजिक विकास की शून्य स्थिति का कारण संबंधित ानव समाज की स्वयं की समस्याएं हैं। इस कारण आवश्यक है कि सामाजिक विकास के लए मनुष्य को अपनी समस्याओं के प्रभावी समाधान हेतु वैज्ञानिक शोध द्वारा अन्वेषित तथ्यों क आधार पर सामाजिक नियोजन करना चाहिए। विकास के नवीन प्रादर्श में निम्नलिखित क्ष्य शामिल है :-

. सामाजिक – आर्थिक विकास योजनाओं को जनसंख्या के कमजोर वर्गों तथा निर्धनों, बच्चों महिलाओं तथा अल्पसंख्यक वर्गों के कल्याण हेतु केन्द्रीयकृत करना।

. समाज के सभी वर्गों के समग्र विकास के लिए व्यापक तथा बहुपक्षीय सूचना प्रणाली विकसित करना।

. ज्ञान सहित विकास के साधनों के न्यायपूर्ण वितरण की व्यवस्था करना।

. व्यक्तियों, समूहों व समुदायों को स्वयं विकास की प्रेरणादेना।

. विकास हेतु, प्रेरित करने के लिए, समाज के सदस्यों की विकास योजनाओं में सहभागिता बढ़ाने के लिए प्रयास करना।

. विकास हेतु समूह के हर स्तर पर, जैसे स्थानीय गाँव, प्रदेश, राष्ट्र के स्तर पर आत्मनिर्भरता को प्रोत्साहन।

. बाहरी संसाधनों की अपेक्षा स्थानीय संसाधनों का विकास में अधिक उपयोग।

. विकास की प्रक्रिया में आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक लक्ष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में संतुलन स्थापित करते हुए नियोजन की रूपरेखा तैयार करना।

. विकास हेतु उचित वातावरण निर्माण करने के उद्देश्य से पारम्परिक व आधुनिक संचार माधमयों का प्रयोग करना।

0. विकास की प्रक्रिया के कारण होने वाले सामाजिक – सांस्कृतिक आर्थिक परिवर्तनों के नियमित मूल्यांकन के लिए सामाजिक प्रक्रियाओं के मापन की व्यवस्था करना।

स प्रादर्श में विकास की प्रक्रिया में जनसंचार माध्यमों की भूमिका का महत्वपूर्ण स्थान है। ारतीय समाजशास्त्री डा० एस० सी० दुबे के अनुसार ''आधुनिक विकास को एक मानवीय ाधार दिया जाना आवश्यक है, क्योंकि गरीबी और उससे जुड़ी समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील हुये बिना न तो जनतन्त्र का कोई मतलब है, न ही विकास का''। इस स्तर पर नसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ इस प्रकार हैं :-

. समाज के सदस्यों को विकास की संभावनाओं से परिचित कराना।

. समाज को आवश्यक तकनीकी ज्ञान प्रदान करना।

. विकास सन्दर्भ में नवाचारों का आंकलन एवं अध्ययन करना।

. विकास प्रक्रियामें सामाजिक सामुदायिक सहभागिता व स्थानिक तत्वों को प्रोत्साहन देना।

. विकास प्रक्रिया के अनुभवों का आदान-प्रदान

6. विकास नियोजन में नीति-निर्धारकों तथा आमजनों के बीच सम्पर्क सूत्र का कार्य करना।

7. विकास हेतु आवश्यकतानुसार पारंपरिक सामाजिक मूल्यों में लोकतान्त्रिक व सहचर्य पद्धति के परिवर्तन करते हुए सामूहिक सामाजिक मनोवृत्ति का निर्माण

8. सामाजिक विकास के लक्ष्यों की अनुशासितढंग से प्राप्ति के लिए सहभागी स्वभाव तथा रचनात्मक व्यक्तियों के निर्माण हेतु वास्तविक जनशिक्षा का प्रसार कर चेतना का विस्तार करने के लिए।

विकास में जनसंचार साधनों की उपरोक्त भूमिका के सार्थक निर्वाह के लिए एक नयी जनसंचार प्रणाली की रूपरेखा कई देशों, विशेषत: तीसरी दुनिया के विकासशील देशों में तैयार की गयी। इस नयी प्रणाली में रेडियो, टेलीविजन, तथा नवीनतम इलेक्ट्रानिक मीडिया भी सम्मिलित है।

डेनियल लर्नर तथा वितबर स्क्रेम ने रेडियो को विकास के ''जादुई गुणक यंत्र,, के रूप में मान्यता दी है। इनके मत में रेडियो विकास के गुणक यन्त्र के रूप में प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह कर सकता है। रेडियो की शक्ति का अनुमान मीडिया विशेषज्ञ मार्शल, मैक्लूहन के इस कथन से लगाया जा सकता है, ''अगर रेडियो न होता तो हिटलर भी न होता।'' इस प्रकार हम देखते हैं कि रेडियो संवाद तथा प्रचार का एक अत्यन्त शक्तिशाली, त्वरित, सुगम एवं सस्ता माध्यम है, आवश्यकता विकास हेतु इसके प्रभावी उपयोग की है। रेडियो के विकास के बाद टेलीविजन की प्रसारण व्यवस्था के रूप लिया।

पूँजीवादी प्रक्रिया में टेलीविजन की तकनीक इतनी ताकतवर बन गई कि वह माध्यम समेत विजय को निगल रही है। नयी तकनीक की संस्कृति का विकास समाज की सामूहिक इच्छा पर निर्भर करता है, लेकिन विकास के लिए बड़े विचार की आवश्यकता होती है। जिस तकनीक के विकास के पीछे बड़ा विचार नहीं होता, वह तकनीक सामाजिक जीवन को नष्ट करने लगती हैं।

सामाजिक विचारक जेम्स पैतास ने टी. वी. की आलोचना करते हुये कहा है, पलायनवादी टेलिविजन घरेलू जिन्दगी पर चौतरफा हमला कर रहा है। इसके बाद भी टेलीविजन एक अपरिहार्य प्रोद्योगिकी है। टेलीविजन और रेडियो रचनात्मक प्रयासों के पोषण तथा प्रतिफलन की क्षमता रखते हैं। वास्तव में रेडियो तथा टेलीविजन का प्रयोग समाज के विकास में उचित तथा सशक्त ढंग से करने का दायित्व नीति-निर्धारकों का है। इस तकनीक के विकास में न्याय की स्वाभाविक अपेक्षा तभी अंतर्निहित रहेगी, जब वह विकास भावी समाज की वैज्ञानिक तथा प्रगतिशील अवधारणा को साकार करने के उद्देश्य से नियन्त्रित हो।

आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों रेडियो, टेलीविन, टेलीफोन, कम्प्यूटर, सेटेलाइट ने मिले जुले रूप में एक नयी जनसंचार प्रविधि को जन्म दिया है। यह नयी जनसंचार प्रविधि अपनी विशेषताओं के कारण सामाजिक विकास की कई आवश्यकताओं को पूरा करती है। इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों द्वारा प्रभाशाली ढंग से सामाजिक विकास की प्रक्रिया को गति देने के लिए 'जनसेवा प्रसारण, तथा 'आमजन सहभागी प्रसारण, की अवधारणाएँ बीसवीं सदी में जनसंचार क्षेत्र में दो बड़ी लोककल्याणकारी खोज है।

8.8 विकाशील देशों में इलेक्ट्रानिक जनप्रसारण माध्यम

कासशील देशों से सम्बद्ध 'तीसरी दुनिया, की अवधारणा पिछले पाँच दशकों से विश्व भर सामाजिक विचारकों की चिंताओं के केन्द्र में रही है। इन देशों में मुख्यत: एशिया, अफ्रीका या लैटिन अमेरिका के कुछ देश शामिल हैं। विकासशील देशों की सबसे बड़ी तीन मस्याओं, निर्धनता, बेरोजगारी, तथा लगातार जीवन स्तर में गिरावट के हल वैश्वीकरण की क्रेया में नहीं मिल रहे हैं। बड़े देशों या विकसित देशों एवं विकासशील देशों के बीच आय ा अन्तर बढ़ता जा रहा है। सम्पन्न देशों का यह तर्क है कि वैश्वीकरण से सम्पन्न तथा आठ ड़े देशों के विकास के कारण तीसरी दुनिया के देशों में भी विकास की गति तेज होगी। परन्तु इ तथ्य व्यावहारिक रूप नहीं ले रहा है। इसलिए विकासशील देशों में विकास के वैकल्पिक ायों पर निचंतन अधिक लोकप्रिय हुआ। (हेराल्ड फिशर)

सरी दुनिया के देशों में संसार की लगभग 2/3 जनसंख्या निवास करती है। निर्धनता, ोजगारी, निरक्षरता, सामान्य जीवन-यापन की आवश्यकताओं का अभाव तथा सामाजिक - ार्थिक तथा वैचारिक पिछड़ापन तीसरी दुनिया के देशों की मुख्य समस्याऐं हैं। भौतिक मस्याओं के अतिरिक्त तीसरी दुनिया के देशों में सामाजिक - सांस्कृतिक आत्मस्मान तथा ाज मौलिकता के संरक्षण की समस्याओं भी पिछली सदी के अंतिम दशकों में उभरी हैं। माजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इन समस्याओं को जीवन की गुणवत्ता के अभाव की समस्या कहा ा सकता है। युनेस्को के अनुसार जीवन की गुणवत्ता एक समावेशी सम्प्रत्यय है, जिसमें ावन के सभी पक्ष जिसमें महत्वपूर्ण जरूरतों की भौतिक संतुष्टि के साथ जीवन के भौतिक क्ष से अलग अन्य पहलू जैसे वैयक्तिक विकास और स्व-वास्तविकरण तथा एक स्वस्थ र्यावरण की व्यवस्था भी शामिल है।''

ाकासशील देशों में एक सामाजिक प्रक्रिया के रूप में रेडियो तथा टेलीविजन के कार्यक्रमों ो अत्यन्त महत्वपूर्ण उपयोगिता को स्वीकार किया गया है। इन देशों की सामाजिक विकास ाजनाओं में आमजनों को सहभागिता सुनिश्चित करने तथा देशज सामाजिक - सांस्कृतिक र्यावरण में उनकी समस्याओं का हल खोजने में रेडियो तथा टेलीविजन के कार्यक्रम हत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। तीसरी दुनिया के इलेक्ट्रानिक माध्यमों को बहुसंख्यक जनों के त में प्रयोग करना चाहिये। इन माध्यमों का लक्ष्य मात्र समाज में व्यक्तियों की आय तथा त्पादन में वृद्धि ही नहीं होना चाहिए, बल्कि इन कार्यक्रमों का उद्देश्य सामाजिक भेदभाव व ामाजिक तनाव कम कर आमजनों को विकास की प्रक्रिया में स्वयं भाग लेने के लिए प्रेरित रना भी होना चाहिये। रेडियो तथा टेलीविजन को अपने कार्यक्रमों द्वारा लक्षित समाज को ार्थक रूप से सूचना सम्पन्न बनाने का दायित्व निभाना होगा। यहाँ सार्थक, का अर्थ है उन रे प्रसंगों पर गंभीर विचार-विमर्श किया जाना चाहिए जो अंतर्राष्ट्रीय राष्ट्रीय, क्षेत्रीय तथा थानीय स्तर पर आमजनों के जीवन को प्रभावित करें। इस कारण रेडियो तथा टेलीविजन द्वारा समाचारों, समसामायिक घटनाओं तथा सूचनाओं के विस्तृत कार्यक्रम प्रसारित होना चाहिये।

तीसरी दुनिया के समाजों की पारंम्परिक तथा समकालीन संस्कृति की प्रदर्शन - मंजूषा के रूप में रेडियो व टेलीविजन की भूमिका इस तरह के कार्यक्रमों में शामिल है।

1. सामाजिक संस्कृति का पोषण तथा विकास।
2. ऐसे कार्यक्रम जो विदेशी तथा आयातित कार्यक्रमों की अपेक्षा देशज तथा स्थानीय संस्कृति के लोककल्याणकारी स्वरूप को प्रोत्साहित करें।
3. सामाजिक उत्सवों, रीति रिवाजों, सामाजिक समारोहों सहित सामाजिक विरासत को संरक्षण।

- तीसरी दुनिया में आमजनों की विविध आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु राष्ट्रीय क्षेत्रीय तथा स्थानीय भावनाओं के अनुसार जनसहभागी संवादात्मक कार्यक्रमों का नियोजन तथा प्रस्तुतीकरण इन कार्यक्रमों में शामिल हैं।

1. ग्रामीणों के लिए एक विशिष्ट तथा उद्देश्यपूर्ण प्रसारण सेवा पैकेज
2. ऐसे कार्यक्रमों का पैकेज जो राष्ट्रीय व्यावसायिक कौशल में वृद्धि करे।
3. औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम
4. लोक कल्याण तथा मानवाधिकारों पर केन्द्रित कार्यक्रम
5. विज्ञान व पर्यावरण संरक्षण
6. राष्ट्रीय एकता, सामाजिक व साम्प्रदायिक सद्भाव हेतु कार्यक्रम
7. महिलाओं, बच्चों तथा युवाओं के विकास हेतु विशेष कार्यक्रम

- तीसरी दुनिया के नागरिकों को अपने विचारों को नियमित अभिव्यक्ति हेतु मंच प्रदान करने का दायित्व भी रेडियो तथा टेलीविदन का है।
- तीसरी दुनिया के देशों के आमजनों में सामाजिक - आर्थिक जीवनशैली, भाषा संस्कृति तथा विश्वासों के स्तर पर कई तरह की विविधताएं पायी जाती हैं। इन देशों में विविधताओं के संरक्षण के साथ-साथ विविधताओं में एकता लाने का कार्य रेडियो व टेलीविजन का है।
- तीसरी दुनिया के आमजनों के विकास में रेडियो तथा टेलीविजन की एक नयी भूमिका पर भी विचार किया जाना चाहिये। यह भूमिका है-आधुनिक सूचनाक्रन्ति के लाभ आमजनता तक पहुँचाना। टेलीफोन, कम्प्यूटर, इंटरनेट इत्यादि से सज्जित आधुनिक सूचना तकनीक बहुउपयोगी सूचना क्रान्ति है। परन्तु तीसरी दुनिया के देशों के आमजन अभी इसके कल्याणकारी लाभों से दूर है। इस कारण इस रिक्तता की पूर्ति रेडियो व टेलीविजन द्वारा हो सकती है। जो आमजनों तक सर्वसुलभ है, कम से कम रेडियो तो है ही।

18.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में जनसंचार एवं विकास के पारस्परिक अन्त:क्रिया एवं इनसे जुड़ी विभिन्न विमाओं पर प्रकाश डाला गया है। जनसंचार माध्यम मात्र सम्प्रेषण नहीं है, बल्कि यह सामाजिक विकास के अस्त्र भी हैं। जनसंचार माध्यम, सामाजिक नियन्त्रण, सामाजीकरण,

सामाजिक परिवर्तन के रूप में न केवल अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह करते हैं, क सूचना के मौलिक अधिकार की प्राप्ति में आमजनता की सहायता करते हैं। रेडियो और ीविजन जन प्रसारण के सशक्त माध्यम हैं, जो कि तीसरी दुनिया में लोगों की मनोवृत्तियाँ, वर्तित करने में, नवीन सूचनाएँ प्रदान करनें में एवं अंततोगत्वा विकास के मार्ग पर आमजनों ले जाने में सहयोग कर रहे हैं। ब्राजील के सामाजिक जनसंचार शास्त्री पाउले फ्रेयरे ule Friere) के शब्दों में "जनसंचार के आधुनिक साधनों ने लोगों के अंदर आत्मावलोकन आलोचना के जो बीज डाले हैं, वे जड़बद समाज में परिवर्तन लाकर वंचितों, महरूमों को के अधिकार दिलाने में सहयोग करेंगे।"

धुनिक जनसंचार माध्यम इंसान की एक बड़ी ताकत है। उनकी संभावनाओं के उचित लाभ । के लिए यह आवश्यक है कि उनकी सीमाएं व समस्याएं समझते हुए उनके हल भी ाशे जाएं। सामाजिडक विचारक जेम्स पेलाद के शब्दों में "एक नयी दृष्टि को विकसित ना चाहिए, जो लोगों में केवल प्रभुत्व से स्वतन्त्र होने की इच्छा भी नहीं जाग्रत करे, बल्कि वन को अर्थपूर्ण बनाने के लिए मुक्त करती हो तथा अयांत्रिक रिश्तों को बढ़ाते हुये संघर्ष ी रखने की प्रेरणा दे।"

प्रकार सम्पूर्ण विश्व की मानवता के कल्याण की दृष्टि से आधुनिक जनसंचार माध्यमों का रदायित्व इक्कीसवीं सदी में और अधिक बढ़ गया है। जैसा कि डा० श्यामाचरण दुबे ने ा है कि "आने वाले कल के लिए यदि हम सूझ-बूझ युक्त संचारनीति आज ही न बना , तो संभव है कि हमारी समस्याएं और भी उलझ जाएं और हम इस उपयोगी अस्त्र ानसंचार माध्यम) का फलप्रद लाभ प्राप्त कर सकें।

8.10 बोध प्रश्नोत्तर

र्घ उत्तरीय प्रश्न

1 आधुनिक जनसंचार माध्यमों की अवधारणा को स्पष्ट करतु हुए, इसके मानक सिद्धान्तों को रेखांकित करिये ?

2 जनसंचार एवं विकास के पारस्परिक सम्बन्धों की विवेचना करिये ?

3 सामाजिक परिवर्तन के स्रोत के रूप में आधुनिक जनसंचार माध्यमों की भूमिका की व्याख्या करिये?

स्तुनिष्ठ प्रश्न

1 रेडियो को "जादुई गुणक यंत्र" के रूप में किसने मान्यता दी ?

(A) लर्नर (B) आगबर्न (C) लर्नर तथा स्क्रेम (D) इनमें से कोई नहीं

2 पेडागामी आफ आप्रेस्ट (Pedagogy of oppressed) पुस्तक के लेखक है।

(A) मार्क्स (B) पाउले फियरे (C) हीगल (D) एलेन्सकी

3 'जनसेवा प्रसारण, की अवधारणा निम्न में से किसने दी है ?

(A) पेत्रांद (B) जॉन बिर्ट (C) स्प्राट (D) इनमें से कोई नहीं?

प्र० 4 शिक्षा को स्वतन्त्रता के लिए किया जाने वाला सांस्कृतिक कार्य किस विद्वान ने माना है?

(A) पाउले फियरे (B) स्फ्राट (C) मार्क्स (D) कालिन्स

प्र० 5 "दि सोशल स्ट्रक्चर आफ वैल्यूज, पुस्तक के लेखक हैं ?

(A) डी० पी० मुखर्जी (B) राधाकमल मुखर्जी

(C) प्रो० योगेन्द्र सिंह (D) इनमें से कोई नहीं

बोध प्रश्नों के उत्तर

प्र०1 C

प्र० 2 B

प्र० 3 B

प्र० 4 A

प्र० 5 B

काई 19 जनसंचार, वैश्वीकरण एवं उदारीकरण

काई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 जनसंचार की अवधारणा
9.3 जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका
19.3.1 समाजीकरण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका
19.3.2 सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका
19.3.3 सामाजिक नियन्त्रण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका
9.4 वैश्वीकरण की अवधारणा
9.5 उदारीकरण की अवधारणा
9.6 अन्य समानार्थक अवधारणायें
9.7 वैश्वीकरण व उदारीकरण : भारतीय परिप्रेक्ष्य में
9.8 सारांश
9.9 प्रश्न
9.10 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य

स्तुत इकाई-3 के अन्तर्गत आप जनसंचार, वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की प्रक्रिया एवं उनके लस्वरूप भारतीय समाज पर पड़ रहे प्रभाव से परिचित हो सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप :

- जनसंचार की अवधारणा एवं उसकी सामाजिक भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे।
- वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की अवधारणाओं पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- भारतीय सन्दर्भ में वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के कारण एवं भारतीय समाज पर पड़ रहे प्रभावों का उल्लेख कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

स्तुत इकाई जनसंचार, वैश्वीकरण जैसी आधुनिक प्रक्रियाओं के विवेचनात्मक अध्ययन से म्बन्धित है। इस इकाई के अन्तर्गत इनका अवधारणात्मक विवेचन किया गया है ताकि आप म्पूर्ण विवेचना को सरलता के साथ समझ सकें। बीसवीं शताब्दी में उन्नति सूचना तकनीक र आधारित उदार अर्थव्यवस्था ने भारतीय समाज को गहरे तक प्रभावित किया है, वहीं दूसरी ोर इनके नकारात्मक प्रभावों ने विवाह व परिवार जैसी सामाजिक संस्थाओं व सम्बन्धों में घटनकारी प्रवृत्तियों को जन्म दिया है और नयी उपभोक्तावादी संस्कृति का पोषण किया है।

समाजशास्त्र का विद्यार्थी होने के नाते यह आवश्यक है कि उसके विभिन्न पहलुओं से आप परिचित हों। इसी दृष्टि से इस इकाई में जनसंचार वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के विविध आयामों का उल्लेख किया है।

इस इकाई में हम जनसंचार, वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की अवधारणा के साथ-साथ भारतीय समाज के सन्दर्भ में उसकी विवेचना कर रहे हैं। आपके लिये यथास्थान अभ्यास प्रश्न भी दिए हैं। आप यदि ध्यानपूर्वक मेहनत करेंगे तो निश्चित रूप से परीक्षा सम्बन्धी तैयारी भली-भाँति कर सकेंगे।

19.2 जनसंचार की अवधारणा

जनसंचार का तात्पर्य एक ऐसी तकनीक से है जिसके द्वारा समान संदेश लगभग एक ही समय में बहुत से व्यक्तियों के बीच पहुँचाया जा सके। जनसंचार शब्द में शामिल 'जन' वस्तुत: जनता के मिले-जुले बड़े आकार के मानव समूह की अवधारणा का प्रतिनिधित्व करता है। समाजशास्त्र की भाषा में मानव समूह से तात्पर्य मनुष्यों के एक ऐसे संकलन से है, जो एक दूसरे के साथ सामाजिक सम्बन्ध रखते हैं। सामाजिक समूह की विशेषताओं में पारस्परिक सम्बन्ध एकता की भावना, हम-भावना, सामान्य हित, समान व्यवहार, समूह आदर्श नियम शामिल हैं। लेकिन संचार की प्रक्रिया पर विचार करने से पूर्व भीड़; श्रोता-समूह या आडियंस, जनता, जनसमूह तथा सभा के बीच के अन्तर को समझ लेना उचित होगा। श्रोता-समूह संस्थागत भीड़ का एक रूप है। यह कुछ निश्चित नियमों और आचरण के मान्य प्रतिमान का अनुसरण करता है। भीड़ संगठित नहं होती है और संवेगों से संचालित होती है, जबकि श्रोता समूह विवेकशील होता है। जनता वार्तालाप के सामान्य जगत में विचरण करने वाले ऐसे व्यक्तियों का संग्रह है जिनके विचार किसी समस्या के समाधान अथवा मूल्यांकन के बारे में भिन्न हैं और जो विचार-विमर्श में लगे हैं, परन्तु संख्या में बहुत अधिक होने के कारण उनके लिए परस्पर व्यक्तिगत सम्बन्ध बनाए रखना सम्भव नहीं है। भीड़ के विपरीत जनता बुद्धि-विवेक से व्यवहार करती है। जनसमूह व्यक्तियों का एक अज्ञात समूह है, जो एक दूसरे से शारीरिक रूप से पृथक् है, जिनमें कोई प्रत्यक्ष अंत:क्रिया अथवा अनुभव का आदान-प्रदान नहीं होता, जो सामूहिक रूप से क्रिया करने में असमर्थ है, परन्तु प्रतीक एवं रूढ़ियाँ उत्पन्न करने में समर्थ हैं। भीड़ में शारीरिक समीपता पायी जाती है, जबकि जनसमूह शारीरिक रूप से दूर-दूर होता है।

जनसंचार प्रौद्योगिकी उपकरणों को माध्यम बनाकर एक बहुत बड़े जनसमूह को संदेश भेजने क प्रणाली है। मुद्रण यंत्र के आविष्कार के साथ ही जनसंचार युग की शुरुआत हो गई थी। बीसवीं सदी के आरम्भ में टेलीविजन इलैक्ट्रानिक माध्यमों के प्रचलन के साथ जनसंचार की प्रक्रिया विशाल सामाजिक शक्ति के रूप में प्रकट हुई। वीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में विकसित सेटेलाइट, कम्प्यूटर आधारित इलैक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम इंटरनैट के इस क्रान्ति के चरमोत्कर्ष के रूप में सारे संसार को विश्व ग्राम में बदल दिया।

जनसंचार माध्यम सामान्यत: विशाल मिले-जुले सामाजिक गुणों वाले औपचारिक समूहों में संदेश का प्रसारण करते हैं। जनसंचार माध्यम दूर-दूर फैले, विविध संस्कृति वाले समूहों में

क ही स्रोत से सम्पर्क कर सकते हैं, लेकिन प्रेषक का लक्षित समूह से कोई सीधा परिचय हीं होता है। लक्षित समूह के सदस्य जनसंचार साधनों के माध्यम से एक समान हितों के क्ष्य की प्राप्ति के लिये अंत:क्रिया में समाहित हो सके हे, लेकिन सामान्यत: वैयक्तिक रूप ं वे आपस में अपरिचित ही रहते हैं। यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि अभिवृत्ति और मूल्यों में रिवर्तन की प्रक्रिया में आधुनिक जनसंचार साधन भी लक्षित समाज की संस्कृति जीवन द्धतियों व मूल्यों की पूर्ण अवहेलना नहीं कर सकते हैं।

ाधुनिक जनसंचार माध्यम ऐसे व्यक्तियों के बीच सामान्य सहमति का निर्माण करते हैं जो ामतौर पर परस्पर आमने-सामने नहीं मिलते हैं। समाज में सामान्य सहमति के निर्माण की ौद्योगिकीय प्रक्रिया के कारण जनसंचार माध्यम संस्कृति को भी प्रभावित करते हैं, वस्तुत: नसंचार माध्यम संदेश उत्पादन तथा वितरण की प्रक्रिया में एक बड़े सामाजिक समूह की नोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करते हैं, जिसके कारण समूह की संस्कृति के भौतिक तथा भौतिक दोनों ही प्रारूपों पर सकारात्मक अथवा नाकारात्मक परिवर्तन हो सकते हैं। प्रसिद्ध चारक तथा समाशास्त्री रेमण्ड विलियम्स ने संस्कृति की समाजशास्त्रीय दृष्टि पर विचार रते हुए जनसंचार माध्यमों के सांस्कृतिक महत्व को स्पष्ट किया है। रेमण्ड विलियम्स म्पूर्ण सांस्कृतिक प्रक्रिया को एक सम्प्रेषण व्यवस्था के रूप में मान्यता देते थे। रोजर्स, चौफे, र्गर, जे० कार्नर, मार्शल मेकलुहान, डेनस मक्युएल, जे० एच० आल्टस्कल, मर्टन, ाजर्सफेल्ड इत्यादि कई सामाजिक संचारशास्त्रियों ने जनसंचार या मास क्म्यूनिकेशन को एक माज विज्ञान के रूप में विकसित करने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। सामाजिक विज्ञान की ष्टि से जनसंचार नीतियाँ मात्र प्रौद्योगिकीय विकास से सम्बन्धित नहीं हैं। आधुनिक युग में ये ीतियाँ सामाजिक संस्थाओं तथा सामाजिक सम्बन्धों के सामान्य संगठनों तथा नियंत्रण शक्ति ो भी प्रभावित करती हैं।

नसंचार सम्बन्धी नीतियाँ निजी और सार्वजनिक दोनों ही प्रकार के संगठनों की साहित्यिक, लात्मक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक प्राथमिकताओं के निर्धारण में हत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती हैं। इसी कारण सामाजिक संचारशास्त्र की मान्यता है कि नसंचार मात्र सूचनाओं के आदान-प्रदान की प्रक्रिया नहीं है, व्यापक समझ, धारणा निर्माण था आपसी सहमति इसकी विशेषताएं हैं।

नसंचार माध्यम की परिभाषा पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि इन माध्यमों में संदेशों के ादान-प्रदान के लिये 'तकनीक अथवा उपकरण' का प्रयोग होता है। 'तकनीक अथवा पकरण' इन माध्यमों द्वारा लगभग 'एक ही समय में बहुत से व्यक्तियों की बीच' संदेश का ादान-प्रदान करते हैं।

नसंचार माध्यमों की इन्हीं तकनीकी विशेषाओं के कारण लोकशैली माध्यम समूह माध्यम, वचन, शिक्षण तथा अफवाहों जैसी स्वाभाविक संदेश की चार प्रणालियाँ, जनसंचार नहीं हलाएंगी, क्योंकि इन प्रणालियों में माध्यम के रूप में किसी 'उपकरण' का उपयोग नहीं किया जाता, न ही संदेश की उत्पादन तथा वितरण किसी बड़े 'जनसमूह' में किया जाता है। र्तमान युग में प्रेस अथवा मुद्रण जनसंचार माध्यम, इलेक्ट्रानिक जनप्रसारण माध्यम, रेडियो-लीविजन विद्युतीय चलचित्र माध्यम, सिनेमा तथा आधुनिकतम कम्प्यूटर-इंटरनेट, जनसंचार ाध्यम के मुख्य प्रौद्योगिकीय उपकरण हैं। उन्नत तकनीकी दृष्टि से आधुनिक जनसंचार

माध्यमों की गति अवाध है। लेकिन सामाजिक विचारकों के मत में उन्नत प्रौद्योगिकीय तकनीक के कारण अबाध गति के ये संचार समाज के कुछ वर्गों तक ही सीमित भी रह सकते हैं। प्रौद्योगिकीय व्यापारिक कारणों से जनसंचार माध्यम, विशेषकर आधुनिक माध्यम आर्थिक रूप से काफी महंगे बनते हैं। महंगे उपकरणों वाले माध्यम वित्तीय व्यापार बन जाते हैं तथा सामाजिक कल्याण की भावना पर विपरीत प्रभाव भी डालते हैं। महंगे जनसंचार माध्यमों की पहुँच मात्र समाज के उस छोटे वर्ग तक ही सीमित रह जाती है जो उन माध्यमों का खर्च उठ सकते हैं। यही कारण है कि तीसरी दुनिया के अधिकांश एशियाई अफ्रीकी देशों में प्रचलित महंगे भड़कौले जनसंचार माध्यम वास्तव में अल्पांश माध्यम बनकर रह गये हैं, क्योंकि उनकी वित्तीय व्यापारिक प्रवृत्तियों के कारण उनकी पहुँच मात्र महानगरों या बड़े शहरों के सम्पन्न वर्ग तक ही है।

मास सोसाइटी अथवा द्वितीयक समाज ऐसे वृहद समाज को कहते हैं जिसमें सामूहिक व्यवहारों की प्रधानता होती है। द्वितीयक समाज सामूहिक व्यवहार प्रधान वह प्रगतिशील समाज है, जिसमें अवैयक्तिक सम्बन्ध, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक विभेदीकरण तथा वैयक्तिक गुणों का अधिक महत्व देखने को मिलता है।

समाजशास्त्री मैनहीम ने आधुनिक समाज को ही मास सोसायटी या द्वितीयक समाज कहा है। उनके मत में—"द्वितीयक समाज वह समाज है ज़िसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं—तार्किककता, अवैयक्तिक सम्बन्ध, कार्यों का स्तरीय विशेषीकरण, जनसंख्या के केन्द्रीयकरण के बावजूद व्यक्ति का अवलोकन तथा घनिष्ठता और सुरक्षा भावना की कमी। ऐसे समाजों में सुझाव, अनुनय, प्रचार, लोकनायक और भीड़-व्यवहार के अन्य पहलू सामान्य होते हैं।"

1956 में समाजशास्त्री मिल्स ने मास आडियंस की उपरोक्त विशेषताओं का वर्णन किया था, लेकिन इसके पूर्व 1932 में क्यू० डी० लीविस ने 'फिक्शन एण्ड द रीडिंग पब्लिक' में फाटक समुदाय के विस्तार और साहित्य पर उसके प्रभाव का विश्लेषण किया था। इनके विचारों के आधार पर यह मान्यता बनती है कि जैसे-जैसे आडियंस अर्थात् लभित पाठक/श्रोता/दर्शकों का विस्तार होता जायेगा वैसे-वैसे माध्यमों के साहित्यिक गुणों की श्रेष्ठता कम होती जायेगी। इस मान्यता के अनुसार मास आडियंस की बढ़ती समाज और जनसंचार माध्यम के ही गुणों तथा व्यवसथा के लिये हानिकारक है। निश्चित रूप से लिविस की यह मान्यता साहित्य के लिये थी, लेकिन साहित्य भी जनसंचार माध्यमों में शामिल है। वेल्स में जन्में साहित्य-समाजशास्त्री रेमंड विलियम्स ने मानव समुदाय को वर्ग से अधिक महत्वपूर्ण मानते हुए सिद्ध किया कि साहित्य में आम जनता की भागीदारी के विस्तार के साथ-साथ साहित्य की गुणवत्ता में निरन्तर विस्तार हुआ है। यह कहा जा सकता है कि मास आडियन्स के विस्तार के साथ जनसंचार माध्यमों की दुनिया में लोक तान्त्रिक विचार अधिक पुष्ट होते हैं।

जनसंचार माध्यमों के सामाजिक उत्तरदायित्व की अवधारणा 1949 में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रेस स्वायत्तता आयोग द्वारा प्रतिपादित की गयी। इस आयोग ने अनुभव किया कि मुक्त बाजार में प्रेस की स्वायत्तता की सोच, समाज के वंचित वर्गों की सूचनात्तमक तथा सामाजिक अवश्यकताओं को पूरा कर पाती है। इस काल तक प्रेस के साथ-साथ रेडियो तथा टेलीविजन माध्यमों का भी पर्याप्त विकास हो चुका था। इस कारण आयोग का सुझाव

था कि जनसंचार माध्यमों को विवेकशील सामाजिक नियंत्रण की परिधि में लाया जाना चाहिए तथा उनकी समाज के प्रति जिम्मेदारी भी तय की जानी चाहिए।

19.3 जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका

संचार तथा सामाजिक जीवन के बीच गहरा सम्बन्ध है। पारस्परिक जागरूकता सामाजिक सम्बन्धों का एक अनिवार्य तत्व है। समानता, विभिन्नता, सहयोग, संघर्ष को पारस्परिक जागरुकता में शामिल किया गया है। बुद्धि, तर्क, भाषा अभिव्यक्ति, संस्कृति मनुष्य के नैसर्गिक गुण हैं। इन गुणों तथा भौतिक माध्यमों के मिश्रण से संचार मनुष्य, समाज में पारस्परिक जागरुकता की क्रिया द्वारा सामाजिक सम्बन्धों की सृष्टि में सहायता करता है। आज प्रविधि, और संचार एक-दूसरे के अविभाज्य अंग बन गये हैं और मानव की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं में दिन-प्रतिदिन बढ़ोत्तरी करते जा रहे हैं। आज के समाज में संचार ने एक नयी महत्वपूर्ण सामाजिक भूमिका ग्रहण कर ली है। लश्मेन्द्र चोपड़ा ने अपनी पुस्तक ''जनसंचार का समाजशास्त्र'' में जनसंचार माध्यमों की तीन प्रमुख सामाजिक भूमिका का उल्लेख किया है—

(अ) समाजीकरण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

(ब) सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

(स) सामाजिक नियन्त्रण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

3.3.1 समाजीकरण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

जनसंचार माध्यम समाजीकरण के प्रमुख माध्यम है। मानव समाज बुद्धि, तर्क-नीति तथा सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं की सतत् प्रक्रिया द्वारा विकास की ओर गतिशील है। इस गति को बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि वह इनका हस्तांतरण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को करता रहे। संचार की विभिन्न विधाएं हस्तांतरण की इस प्रक्रिया में सहायता कर सामाजिक निरन्तरता बनाये रखती है। समाजीकरण का मूल आधार ही संचार है। मनुष्य जैवकीय प्राणी में सामाजिक प्राणी तब बनता है जब संचार द्वारा सांस्कृतिक अभिवृत्तियों, मूल्यों और व्यवहार प्रकारों को आत्मसात् कर लेता है। आधुनिक माध्यमों की प्रगति के साथ समाजीकरण की प्रक्रिया में भी परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के अध्ययन स्पष्ट करते हैं कि इन माध्यमों के सामाजिक दायित्व में बढ़ोत्तरी ही हुई है, क्योंकि आधुनिक समाज जनसंचार माध्यमों पर अधिक आश्रित हो गया है। मौखिक संचार की स्थिति का समाजीकरण परिवार जैसे प्राथमिक समूह तक ही सीमित था। मुद्रण तकनीक के विकास के साथ पुस्तकें के सुलभ हुईं, जिनके कारण ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हुआ। रेडियो, टेलीविजन तथा इन्टरनेट जैसे आधुनिक इलेक्ट्रानिक मीडिया के कारण सीखने की प्रक्रिया में ढेरों सूचना संदेश उपलब्ध हो गये हैं। आकाश के माध्यम से प्राप्त संदेशों ने समाज की भौगोलिक तथा राजनैतिक सीमाओं से बाहर के पर्यावरण तथा संस्कृति का भी समावेश किया है। यही नहीं, विज्ञापनों के माध्यम से सायास रूप से कुछ संदेश समाज में सम्प्रेषित किया जा रहे हैं। परिवार जैसे समूहों के पारस्परिक संदेशों की प्रकृति तथा आधुनिक इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यमों से प्रसारित नये संदेशों में विरोधाभास भी हो सकता है। इस स्थिति का मूल्यांकन अत्यन्त सावधानीपूर्वक

की आवश्यकता है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं है कि पारस्परिक मूल्य और संस्कृति पूर्णत: निरस्त करने योग्य हों या नये विचार बिल्कुल गलत हों। आपसी संवाद द्वारा विचार-विमर्श के बाद नयी मान्यताएं स्थापित की जा सकती हैं लेकिन यह बहुत आवश्यक है कि मानव इतिहास के लम्बे सामाजिक अनुभवों से विकसित परिवार जैसे महत्वपूर्ण प्राथमिक समूह तथा विवाह जैसी संस्थाओं, के सम्बन्ध में जनसंचार माध्यम संदेश सम्प्रेषित करते समय विशेष सावधानी रखें। यही बात सामाजिक पर्यावरण तथा संस्कृति के सम्बन्ध में कही जा सकती है, क्योंकि ये व्यक्ति के समाजीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं और इनके अवमूल्यन का अर्थ है—समाजीकरण से वैयक्तिकरण की स्थिति की ओर पलायन। इस पलायनवादी स्थिति का अन्तिम परिणाम सामाजिक विखण्डन के रूप में अनेक सामाजिक समस्याओं का जन्म हो सकता है।

19.3.2 सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

सामाजिक परिवर्तन, जीवन की स्वीकृत रीतियों में परिवर्तन को कहते हैं। समाजशास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार सामाजिक परिवर्त एक अनिवार्य सामाजिक घटना है, लेकिन इसकी गति प्रत्येक समाज में समरूप नहीं होती है। अधिकांश समाजों में इसकी गति धीमी होती है कि सामान्यत: आम जनों को इसका आभास नहीं होता।

सामाजिक परिवर्तन के कारकों के विश्लेषण हेतु समाजशास्त्री एकमत नहीं है। कार्ल मार्क्स आर्थिक कारकों, मैक्सबेबर धार्मिक कारकों को, सोरोकिन सांस्कृतिक कारकों को सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी मानते हैं, लेकिन आधुनिक समाज वैज्ञानिकों के मत में मानवीय विवेक द्वारा चेतना तथा सुव्यवस्थित प्रयत्नों द्वारा सामाजिक परिवर्तन किया जा सकता है। रेमण्ड विलियम्स, गोड्फ्रे बेस्ले, पाउले फ्रेयरे, डेनियल, लर्नर, बिल्बर स्कार्म, एवर्ट एम० रोजर्स इत्यादि कई आधुनिक संचार-समाज वैज्ञानकों ने सामाजिक-परिवर्तन की प्रक्रिया में जनसंचार माध्यमों की भूमिका पर नयी दृष्टि से विचार किया है। नयी मान्यताओं के अनुसार शिक्षा और ज्ञान के माध्यम से बुद्धि भावना को जीता जा सकता है, ताकि सामाजिक प्रगति की दिशा में सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी नियोजन सम्भव हो सके। समाजशास्त्रियों की विभिन्न विचारधाराओं के विश्लेषण से स्पष्ट है कि संचार-विशेषत: इलेक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण कारकों में है।

समाज वैज्ञानिक आगबर्न के मत में प्रौद्योगिकी, समाज के पर्यावरण में परिवर्तन द्वारा, जिसके प्रति हमें अनुकूलित होना पड़ता है, बदलती है। यह परिवर्तन प्राय: भौतिक पर्यावरण में पहले-पहल आता है। हम इन परिवर्तनों के साथ जो अनुकूलन करते हैं, उससे प्रथाओं तथा सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन हो जाता है। यह तथ्य संचार साधनों पर भी लागू होता है। आधुनिक इलेक्ट्रानिक माध्यम प्रौद्योगिकीय परिवर्तन की ही उपज़ है, इस कारण इन माध्यमों ने सामाजिक सम्बन्धों में अनेक परिवर्तन उत्पन्न कर सामाजिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

सभी संचार विधियों का मूल्य कार्य संदेश प्रेषण प्रक्रिया में समय व दूरी पर विजय पाना है। आधुनिक इलेक्ट्रानिक मीडया ने अपनी इस विजय यात्रा में देशों की भौगोलिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक सीमाओं को भी समेट लिया है। इसके कारण कई समूहों की पारम्परिक

हचान में बदलाव आया है। खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन तथा जीवन-शैली पर भी इन रिवर्तनों का प्रभाव पड़ा है। संदेशों के आदान-प्रदान ने व्यापार, शिक्षा तथा मनोरंजन को भी भावित किया है। सामाजिक विचारक रेमण्ड विलियम्स के अनुसार प्रौद्योगिकी के कारण एक यी भौतिक संस्कृति विकसित हुई है, लेकिन सामाजिक अविष्कारों के द्वारा जनसंचार ाध्यमों का सामाजिक परिवर्तन में सबसे बड़ा योगदान होता है। भौतिक आविष्कार मनुष्य की जीवन शैली को प्रभावित करते हैं, जबकि सामाजिक आविष्कार विचारों को प्रभावित कर म्पूर्ण सामाजिक संगठन को परिवर्तित कर एक नयी सामाजिक व्यवस्था का प्रवर्तन करते हैं। सामाजिक आविष्कारों की परिकल्पना करते हुए समाज वैज्ञानिक आगबर्न ने कहा था—''ये वो आविष्कार हैं जो भौतिक नहीं हैं और न ही प्राकृतिक विज्ञान से इनका सम्बन्ध है।''

लोकतंत्र, मताधिकार, स्त्री शिक्षा का प्रसार, बन्धुआ मजदूरी की समाप्ति, अन्धविश्वासों का उन्मूलन जैसे नये विचारों तथा इनसे सम्बद्ध संस्थाओं के प्रोत्साहन में आधुनिक जनसंचार माध्यम महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इन सामाजिक आविष्कारों द्वारा समाज में नये मूल्य प्रचलित होते हैं, जो बाद में सामाजिक परिवर्तन का कारक बनते हैं। सामाजिक संचारशास्त्री एवर्ट रोजर्स के मत में नये विचार समाज में जनसंचार माध्यमों द्वारा प्रचलित होते हैं। रोजर्स के अनुसार समाज में नये विचारों के प्रसारण व स्थापना की गति धीमी होती है।

जनसंचार माध्यम न सिर्फ सामाजिक परिवर्तन के लिए महत्वपूर्ण है, बल्कि सामूहि विवेक द्वारा सामाजिक विघटन रोकने में उनको महत्वपूर्ण भूमिका है। सीधा अर्थ यह है कि जनसंचार माध्यम सकारात्मक परिवर्तन के अपने सामाजिक उत्तरदायित्व की अवहलेना नहीं कर सकते।

19.3.3 सामाजिक नियन्त्रण में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

समाजीकरण तथा सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक गतिविधियों में समरसता व व्यवस्था बनाये रखना जनसंचार माध्यमों का मुख्य सामाजिक उत्तरदायित्व है। यही कारण है कि समाजशास्त्रियों ने जनसंचार माध्यमों को जनमत के अभिकरण के रूप में सामाजिक नियंत्रण के सशक्त साधनों में शामिल किया है।

समाजशास्त्री लैंडिस के अनुसार—''सामाजिक नियन्त्रण एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है और सामाजिक संगठन को निर्मित व संरक्षित किया जाता है।''

समाज वैज्ञानिक ई० ए० रूक ने सामाजिक नियंत्रण शब्द का प्रयोग उन नियोजित अथवा अनियोजित प्रक्रियाओं तथा अभिकरणों के लिए किया है, जिसके द्वारा व्यक्तियों को समूहों के जीवन मूल्यों के समरूप व्यवहार करने हेतु प्रशिक्षित, प्रेरित अथवा बाध्य किया जाता है।

भारतीय समाज वैज्ञानिक डॉ० राधाकमल मुखर्जी के सम्बन्ध में लिखा—''मूल्य समाज द्वारा मान्यता इच्छाएँ तथा लक्ष्य हैं, जिनका अंतरीकरण सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है।'' डॉ० मुखर्जी ने सामाजिक मूल्यों सम्पत्ति, प्रस्थिति, प्रेम व न्याय को सामाजिक संगठन की सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए आवश्यक बताया है। उनके मत में सामाजिक संगठन के प्रारूप समाज या समुदाय में समानता व न्याय के मूल्य अभिव्यक्त होते हैं। इसी प्रकार सामाजिक संगठन के श्रेष्ठतम स्वरूप सामूहिकता, सचेत अनुशासन, उच्चस्तरीय वृद्धि व विवेक का परिणाम होता है। स्वत: प्रेम, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा

सहयोग सामूहिकता के आधारभूत मूल्य हैं। डॉ० राधाकमल मुखर्जी के मतानुसार यदि समाज अपने अस्तित्व को बनाये रखना चाहता है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि यह व्यक्तित्व के परम या सर्वोच्च मूल्यों की नियमित रूप से पूर्ति करता रहे। व्यक्तित्व को सर्वोत्तम खोज सुन्दरता, अच्छाई तथा प्रेम के उच्चतम आध्यात्मिक मूल्य हैं। इसी सुन्दरता, अच्छाई तथा प्रेम के आधार पर सामाजिक सम्बन्धों व संस्थाओं की सृष्टि और पुन: सृष्टि होती है। सम्पूर्ण मानव समाज व मानव कल्याण के लिए इन मूल्यों का संरक्षण आवश्यक है।

समाजशास्त्री डॉ० श्यामाचरण दूबे के शब्दों में—''मनुष्य जैवकीय प्राणी से सामाजिक प्राणी तब बनता है जब वह संचार द्वारा सांस्कृति अभिवृत्तियों, मूल्यों और व्यवहार प्रकारों को आत्मसात कर लेता है। डॉ० श्यामाचरण दूबे ने सांस्कृतिक निरंतरता को जनसंचार माध्यमों पर आधारित सामाजिक प्रक्रिया माना है। जनसंचार माध्यम व्यक्ति, समाज और मूल्यों के बीच परस्पर आदान-प्रदान द्वारा सम्बन्ध स्थापित कर सांस्कृतिक निरन्तरता को गति देते हैं। डॉ० राधाकमल मुखर्जी अपनी पुस्तक ''द सोशल स्ट्रेक्चर आफ वैल्यूज'' में लिखते हैं—''मनुष्य और समाज तैरती हुई बत्ती और गहरे तेल के बीच चलने वाले अनंत आदान प्रदान से अनुभव को उजली, स्थिर ज्योति पनपती है, जो कि हमारे नीरस और निरानंद विश्व को निरंतर प्रकाश और गरमाहट देती रहती है।

स्पष्ट है कि जब तक समाज के सारे सदस्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थों, आकांक्षाओं व भावनाओं को सारे समाज की कल्याण प्रक्रिया में नहीं समाहित करेंगे, तब तक सामाजिक संगठन प्रभावी ढंग से काम नहीं कर सकेगा, इसलिए सामाजिक नियंत्रण द्वारा वैयक्तिक सदस्यों के व्यवहार को समाज की आवश्यकतानुसार नियंत्रित करना आवश्यक है। सामाजिक नियंत्रण के तत्वों में सामाजिक सुझाव से विचारधाराएं सामाजिक-नैतिक मूल्य, धर्म लोकरीतियाँ व प्रथाएँ शोभाचार या फैशन, कला और साहित्य, लोकमत व प्रचार, उपहार, कानून व शिक्षा शामिल है। जनसंचार माध्यम सामाजिक नियंत्रण के इन तत्वों के अभिकरण के रूप में सामाजिक नियंत्रण के प्रभावी साधन हैं। ये माध्यम न केवल सामाजिक नियंत्रण में सहायता देते हैं, बल्कि जनमत के निर्माण द्वारा उनकी समीक्षा भी प्रस्तुत करते हैं। दृश्य श्रव्य संचार साधन जनमत पर गम्भीर प्रभाव छोड़ने की क्षमता रखते हैं। सिनेमा का आविष्कार उन्नीसवीं सदी में हुआ, बीसवीं सदी में कला के रूप में इसका विकास हुआ। सिनेमा कलात्मक विविधिता की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम का रूप ग्रहण कर ही रहा था कि तभी बीसवीं सदी के मध्य में टेलीविजन अभिव्यक्ति के नये जनसंचार माध्यम के रूप में सामने आया। उपग्रह प्रौद्योगिकी के विकास ने टेलीविजन को अद्‌भुत सम्प्रेक्षण शक्ति प्रदान की। सम्भवत: इसी कारण समाज वैज्ञानिक रेमंड विलियम्स ने टेलीविजन को ''सहस्त्रमुखी प्रौद्योगिकीय दानव'' कहा है। दृश्य श्रव्य माध्यम होने के कारण इसका प्रभाव दर्शकों के अचेतन में बैठ जाता है। ध्वनि और चित्रों का माध्यम अधिक नाटकीय होता है। नाटकीयता के ये तत्व इन माध्यमों को अधिक लोकप्रिय बनाते हैं। लेकिन टेलीविजन के रंगीन होने के बाद प्रौद्योगिकीय तकनीक इन माध्यमों पर अधिक हावी हो गयी। आधुनिकतावादी प्रौद्योगिकी ने नयी लोकप्रिय संस्कृति का प्रसार किया। इस लोकप्रिय संस्कृति को टेलीविजन जैसे आधुनिकतम जनसंचार माध्यमों ने ''ग्लोबल विलेज'' के रूप

में प्रदर्शित किया। यह कहा गया कि आधुनिक उपग्रह प्रौद्योगिकी की उच्च तकनीक के कारण टेलीविजन के माध्यम से कई परिवर्तन आये। दुनिया के देश अधिक नजदीक आये, ग्लोबल विलेज की लोकप्रिय अवधारणा के कारण सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तन हुए, लेकिन समाज वैज्ञानिक रेमंड विलियम्स का मत है कि उच्च प्रौद्योगिकी से समृद्ध इन जनसंचार माध्यमों की व्यवस्था में सार्वजनिक सामाजिक संस्थाओं की भागीदारी नहीं रहने की दशा में आर्थिक व व्यापारिक व्यवस्थाएं मनोरंजन, सूचना, ज्ञान और शिक्षा को स्वहित में उत्पाद में बदल कर बाजार, बिक्री के लिए उतार देगी, तब इस दशा में ग्लोबल विलेज की अवधारणा मात्र फेंतासी बनकर रह जायेगी। रेमंड विलियम्स के विचारों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते समय वाल्टर बेंजामिन का प्रसिद्ध कथन याद आता है। उन्होंने हिटलर के बारे में कहा था—"हिटलर ने सबसे खतरनाक काम राजनीति का सौंदर्यीकरण करके किया।" उन्नत तकनीक से लैस आज के बाजार-निदेशित टेलीविजन, सिनेमा की फैशन, अश्लीलता, भ्रष्टाचार, अपराधों, युद्ध सहित लगभग सभी सामाजिक विसंगतियों के सौंदर्यीकरण द्वारा उन्हें उपभोक्तावादी मनोरंजन की फेंतासी में बदलने के काम में जुटे हुए हैं। एक चिंताजनक बात यह भी है कि यह कार्य सुझावात्मक ढंग से हो रहा है, जिसके कारण मूल्य हो रहे हैं। मनोविज्ञान की भाषा में मूलरूप से इच्छाओं तथा फेंतासी में जटिल सम्बन्ध होता। फेंतासी का जन्म इच्छाओं से ही होता है। फेंतासी इच्छाओं पर आधारित काल्पनिक दुनिया होती है। बाजार निदेर्शित लोकप्रियतावादी टेलीविजन-सिनेमा माध्यम मात्र व्यापारिक उद्देश्य से फेंतासी के गुब्बारे को खोखली तथा अवास्तविक रंगीन इच्छाओं के विस्फोट की सीमा तक फुलाते चले जाते हैं जिसके कारण समाज में कई ऐसे कृत्रिम लक्ष्य उपस्थित हो जाते हैं, जिनकी पूर्ति के लिए सामाजिक साधन कहीं भी उपलब्ध नहीं होते। समाज वैज्ञानिक राबर्ट के मर्टन के मत में अगर समाज के नियमों पर वैयक्तिक इच्छाएं हावी हो जायें, तो सामाजिक व्यवहार में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो जायेंगी। ये विसंगतियां समाज में अनुशासनहीनता, अपराध व विद्रोह से लेकर व्यक्तियों को सामाजिक उदासीनता तथा आत्महत्या तक प्रेरित कर सकती है। इसी कारण यह आवश्यक है कि उच्च प्रौद्योगिकी से लैस टेलीविजन जैसे शक्तिशाली माध्यमों को मात्र मशीन नहीं समझा जाना चाहिए। रेडियो की तरह टेलीविजन ने भी विकास को समर्पित धारावाहिकों के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक जनसमस्याओं के हल खोजने की दिशा में जागरुकता जनमत का निर्माण किया है। मनोरंजन और शिक्षा के सशक्त माध्यम टेलीविजन को बाजार की शक्तियों से बचाकर उसका उपयोग सामाजिक उद्देश्य के लिए करना बहुत आवश्यक है, अन्यथा सामाजिक विकास का लक्ष्य प्राप्त करना कठिन हो जायेगा।

19.4 वैश्वीकरण की अवधारणा

वैश्वीकरण का सीधा सहज अर्थ है—किसी भी विचार, वस्तु अथवा मानक का वैश्वीकरण। किन्तु जिस तकनीकी प्रतिमान में हम आज वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) को देख रहे हैं, वह वस्तुत: अर्थव्यवस्था का भूमण्डलीकरण है। बीसवीं सदी के आखिरी दशक के पूर्वार्द्ध से ही विभिन्न देशों में विदेशी निवेशकों को आमंत्रित करने के लिए अर्थव्यवस्था का उदारीकरण प्रारम्भ किया गया जिससे अर्थव्यवस्था का भूमण्डलीयकरण हुआ। समाजशास्त्र के आचार्य डॉ० डी० पी० सक्सेना ने भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण की अवधारणा, आयाम, कारण तथा

परिणामों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार अमेरिका ने अपनी साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी प्रवृत्ति द्वारा लातिन-अमेरिकन देशों को अपनी जागीर समझते हुए वहाँ के लोगों के उत्पीड़न व शोषण के कारनामों को छिपाने के लिए एक नयी शब्दावली 'वैश्वीकरण' को गढ़ा तथा संसार में इसे अवधारणा के रूप में सर्वप्रथम प्रेषित किया जिसके माध्यम से उसने विकासशील देशों को नियंत्रण में रखने तथा अपना प्रभाव स्थापित करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन को प्रभावित किया।

वैश्वीकरण की अवधारणा का उदय सर्वप्रथम 1990 में राजर्टसन महोदय के एक लेख से हुआ जिसका शीर्षक ''मैपिंग ग्लोबल कन्डीशन''—'ग्लोबलाइजेशन एज द सेन्टल कान्सेन्ट' का संकलन फीदर स्टोन द्वार सम्पादित पुस्तक 'ग्लोबल कल्चर' में हुआ। इस लेख में वैश्वीकरण के विश्लेषणात्मक तथा अनुभाविक तथ्यों को स्पष्ट किया गया है। विश्व के राष्ट्र राज्यों के मध्य अन्थर्राष्ट्रीय स्तर पर अर्थात् हाल ही में चीन, रूस एवं योरोप में घटी प्रमुख घटनाओं के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण की परिभाषा करते हुए राबर्टसन महोदय ने इसे आधुनिकता, उत्तर आधुनिकता तथा मानवीय दशाओं से उत्पन्न राजनीति से सम्बद्ध किया। उनके अपने ही शब्दों में ''वैश्वीकरण को अपेक्षातया एक आधुनिक घटना मानता है। जिसमें आधुनिकता तथा आधुनिकीकरण दोनों घनिष्ट रूप से सन्निहित है।

इसके अतिरिक्त आपके अनुसार ''वैश्वीकरण को विश्व समाज में उत्पन्न संरचनाकरण की क्रमश: विकास श्रेणियों के विशिष्ट क्रमों के मध्य व्याख्या द्वारा समझना चाहिए। वैश्वीकरण की उत्पतित न तो अति नवीन सामाजिक सम्बन्धों और न ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विकृति बल्कि संस्कृति जिसमें आधुनिकता तथा उत्तर आधुनिकता दोनों तत्वों का मिश्रण है। के विघटन से हुई है। इन संदेशों में राबट4सन महोदय ने वैश्वीकरण को इस प्रकार परिबाषित किया कि ''वैश्वीकरण उसे कहते हैं जब विश्व समाजों को विभिन्नताओं में एकीकृत स्वरूप उत्पन्न हो जाय उतना एकीकृत नहीं जितना प्रकार्यात्मक होता है। समाजों से सम्बन्धित विभिन्नताओं का एक ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक होगा ताकि यह जानकारी हो जाये कि किस समा तक सामाजिक विभिन्नताएं एकीकृत हुई हैं।''

''अन्तर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र'' पत्रिका ने वर्ष 2000 में सामाजिक विज्ञानों द्वारा वर्तमान में सामाजिक घटनाओं का सम्बन्ध तथा विश्व समाज के मुद्दों को समझने के लिए वैश्वीकरण पर एक विशेषांक निकालने का विर्णय लिया। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र पत्रिका ने उभरते हुए नये विश्वसमाज के अध्ययन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। इस नये विशेषांक (जून 2000) के अतिथि सम्पादक गोरन थरूबार्न ने वैशीकरण को परिभाषित किया। सामाजिक विज्ञानों के विषयों में तुलनात्मक अध्ययन के दो प्रमुख साधनों का प्रयोग किया। प्रथम 'सार्वभौमिक' के स्थान पर 'वैश्वीय' की स्थानापन्नता, 'द्वितीय काल' के स्थान की स्थानापन्नता। इसीलिए वैश्वीकरण को आधुनिकीकरण की दूरस्थ दौड़ भी मानते हैं। 'अन्तर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र' के इस विशेषांक में 'वैश्वीकरण' को बहुलवादी माना है तथा विश्व समाज के मुद्दों तथा सामाजिक विज्ञान के ऐतिहासिक तथा सामाजिक प्रक्रियाओं को वैश्वीकरण की अवधारणा माना है।

थारूबर्न ने वैश्वीकरण को निम्नलिखित सांकेतिक शब्दों द्वारा समझाने का प्रयास किया है—

अ) 'सार्वभौमिका' के स्थान पर 'वैश्वीकरण' शब्द का प्रयोग।

ब) 'काल' के बजाए 'स्थान' से अत्यधिक सम्बन्धित।

स) यह आधुनिकता के दूरस्थ स्थान की ओर उड़ान से सम्बन्धित है।

द) 'बहुलवादी' तथा 'वैश्वीकरण' पर्यायवादी हैं।

क) इसमें अनेक प्रक्रियाएं सन्निहित हैं।

ख) विश्व समूह के मुद्दों को समझने में सहायता प्राप्त होना।

रूबर्न ने वश्वीकरण की विषय वस्तु में निम्नलिखित तथ्यों का समावेश करने की सिफारिश
ी—

) प्रतिस्पर्द्धात्मक अर्थव्यवस्था।

) सामाजिक सांस्कृतिक आयाम का होना।

) विश्व अर्थव्यवस्था के समक्ष राज्य का कमजोर हो जाना।

) विशुद्धता।

) समग्र विश्व समाज।

ाडेन्स ने वैश्वीकरण को आधुनिकीकरण का परिणाम बताया है। अपनी पुस्तक 'द
ानसीक्वेन्सेज ऑफ माडर्निटी 'माडर्निटी' में 'वैश्वीकरण' कोइस प्रकार परिभाषित किया कि
विभिन्न लोगों तथा संसार के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य बढ़ती अन्योन्याश्रिता तथा पारस्परिकता
ो 'वैश्वीकरण' है। यह पारस्परिक सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों में होती है। इसमें समय तथा
थान सिमट जाते हैं। वास्तव में गिडेन्स के अनुसार वैश्वीकरण का विस्तार चार तत्वों के
ाध्यम से होता है। जैसे—(1) पूँजीवाद (2) अन्तर्राज्य व्यवस्था (3) सैन्यवाद (4)
द्योगवाद।

ाबर्टसन गिडेन्स के सिद्धान्त निर्माण से सहमत नहीं हैं। वेकहते हैं कि 'वैश्वीकरण' में हमें
ो सार्वभौमिकता तथा स्थानीयता दिखायी देती है इन दोनों का विश्लेषण होना अनिवार्य है।
इन्टरनेशनल सोश्योलॉजी' के अंग 5,200 के अनुसार वैश्वीकरण को समझने के लिए
टाक्होम में स्वीडन के विदश मंत्रालय के सहयोग से 1998 में एक सम्मेलन आयोजित हुआ।
वैश्वीकरण' की अवधारणा 1990 के आरम्भिक वर्षों में हुई। 1992 में राबर्टसन ने पहली बार
ोश्वीकरण की अवधारणा प्रस्तुत की। समाज विज्ञान में 'सार्वभौमिकता' के स्थान पर
वैश्वीकरण' शब्द का प्रयोग होने लगा। दूसरे 'समय' तथा 'स्थान' में भी तुलनात्मक
वेश्लेषण होने लगा। स्टाकहोम में एकत्रित सभी समाजशास्त्रियों की राय थी कि 'वैश्वीकरण'
मपने अर्थ में बहुलवादी है। इसमें सम्पूर्ण संसार की विभिन्नता का समावेश है। उपरोक्त
अन्तर्राष्ट्रीय समाजशास्त्र' के अंक ने वैश्वीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया, 'अनुसंधान
को उपयोगी बनाने के लिए और विश्व समाज को समझने के लिए वैश्वीकरण को
बहुलतावादी होना चाहिए। वैश्वीकरण के परिणाम बहुलतावदी हैं तथा इसका सम्बनध
ऐतिहासक सामाजिक प्रक्रियाओं तथा व्यवहार से है।

मलकाम वाटर्स की पुस्तक 'ग्लोबलाइजेशन' के चार संस्कारण 1998–1999 में प्रकाशित हुए।
इस पुस्तक में उन्होंने बड़े हो वैज्ञानिक ढंग तथा विस्तार से वैश्वीकरण की अवधारणा स्पष्ट

की। एक स्थान पर अपनी पुस्तक में से लिखते हैं कि जो वस्तु सभी जगह पायी जाती हैं लोक उसे ही वैश्वीय कहने लगते हैं। वाटर्स ने अपनी पुस्तक में वैश्वीकरण को इस प्रकार परिभाषित किया कि 'वैश्वीकरण एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवसथा पर जो भौगोलिक दबाव होते हैं, पीछे हट जाते हैं और लोग भी इस तथ्य से अवगत हो जाते हैं कि वर्तमान में अब भूगोल की सीमाएं बमतलब है।

वैश्वीकरण के प्रमुख आयाम

संयुक्त राष्ट्र संघ विकास कार्यक्रम के अनुसार वर्तमान वैश्वीकरण के प्रमुख आयाम निम्नलिखित हैं—

1. नये बाजार विदेशी विनिमय और पूँजी बाजार वैश्वीय स्तर पर जुड़े दौर ये बाजार चौबीस घंटा काम करते हैं। इनके लिए भौतिक दूरियाँ कोई अर्थ नहीं रखतीं।
2. नये उपकरण आज के विशव में लोगों के लिए नये उपकरण जैसे इन्टरनेट लिंक, सेलुलर फोन तथा मीडिया अंग सम्मिलित होते हैं।
3. नये ऐक्टर या कर्ता जैसे विश्व व्यापार संगठन, गैर सरकारी, संगठन, रेडक्रास आदि।

19.5 उदारीकरण की अवधारणा

उदारीकरण वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्ग नियन्त्रणों और प्रतिबन्धों में ढील देकर उदार नीतियों का पालन किया जाता है। वैश्वीकरण के साथ-साथ उदारीकरण का प्रयोग भी सामान्यतया आर्थिक नीतियों के सन्दर्भ में किया जाता है। आर्थिक उदारीकरण वह प्रणाली है जिसमें कठोरताएं न हों, विभेदीकृत अपसरशाही नियत्रण न हों और प्रक्रिया सम्बन्धी अनावश्यक विलम्ब न हो। वैश्विक स्तर पर उदारीकरण का प्रारम्भ 1947 में व्यापार एवं प्रशुल्क पर सामान्य समझौता (गेट) के साथ ही हो गया था। भारतवर्ष में आर्थिक विकास हेतु नियोजन काल से ही नियमन, नियंत्रण एवं संरक्षण की नीति अपनाई गई तथा समाजवादी समाज की स्थापना पर बल दिया गया, परन्तु कालान्तर में यह अनुभव किया गया कि इस नीति में निहित जटिलताओं के कारण विकास दर अपेक्षित स्तर पर नहीं बहुच पाई और घरेलू उद्योग अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धी नहीं बन सके। परिणामस्वरूप देश के समक्ष भुगतान संतुलन का गम्भीर संकट पैदा हो गया। इन परिस्थितियों मं 1991 में उदारीकरण की नीति अपनाई गई। उदारीकरण की नीति उदयोगों पर नियन्त्रण शिथिल करने, उद्यमियों में प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति विकसित करने, वर्जित क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को प्रवेश देने, प्रौद्योगिकी हस्ताश्रतरण और विदेशी पूँजी के अन्तर्प्रवाह पर जोर देती है। इसका उद्देश्य विकास दर तीव्र करना, रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना, उत्पादन को निर्यातोन्मुखी बनाना एवं जीवन स्तर में सुधार करना है।

वैश्वीकरण तथा उदारीकरण को जुड़वा प्रक्रिया के रूप में देखा जाता है जो अन्तर्राष्ट्रीय आथि4क सम्बन्धों की एक न प्रणाली को जन्म दे रही है। इससे निवेश, उत्पादन और व्यापार के स्वरूप में बदलाव हो रहे हैं। वित्तीय साधनों की दौड़ विश्वव्यापी हो रही है तथा प्रौद्योगिकी की भूमिका केन्द्र में आ रही है।

9.6 अन्य समानार्थक अवधारणायें

श्वीकरण की अवधारणा की लोकप्रियता उत्तर आधुनिकता से अधिक है। इसके समानार्तक ई अन्य प्रचलित अवधारणाएं भी हैं जिनका अर्थ थोड़ा बहुत भिन्न होता है। ये अवधारणाएं श्वीकरण से निकलती हैं परन्तु इनका अर्थ विशिष्ट है।

) विश्व गाँव

वेश्वगॉव' की अवधारणा के प्रणेता कनाडा के मार्शल मेकलूहन हैं। इनके अनुसार लैक्ट्रानिक संचार ने सम्पूर्ण विश्व समाज को एक सूत्र में बाँध दिया है। इस तरह दुनिया भर ; लोक टेलीविजन द्वरा प्रासारित खबरों तथा घठनाओ को सभी एक गाँव के निवासी की ाँति देखते हैं किसी से कोई दुराव नहीं है। वैसे दुनिया भर के लोग एक दूसरे को जानते हैं। कलूहन का कहना है कि मीडिया ने सम्पूर्ण संसार को एक छोटा गाँव बना दिया है।

) विश्व नगर

वधारणा के रूप में वे नगर हैं जो नई वैश्वीय अर्थव्यवस्था का संगठनात्मक केन्द्र है। सासकिया ससेन ने वैश्वीकरण और बड़े शहरों के इस विवाद को अपनी पुस्तक 'The Global ity (1991)' 'विश्व नगर' में स्पष्ट किया। उनका तात्पर्य उन नगरों से है जो बहुराष्ट्रीय नियमों, वित्तीय संगठनों, परामर्शदाताओं के मुख्यालय है। इन नगरों में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ोता है और ये नगर ही पूँजीवाद के विकास केन्द्र है। ससाकिया ससेन ने 'विश्व नगर' के ुख्य लक्षण इस प्रकार बताये हैं—

. ये विश्व नगर वैश्वीकरण की रीति नीति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। वैश्वीय अर्थव्यवस्था इन्हीं के हाथों में गढ़ी जाती है।

. ऐसे नगर वित्तीय एवं विशेष परामर्श के केन्द्रीय स्थान होते हैं। इन नगरों का उद्देश्य वस्तु उत्पादन करने का न होकर आर्थिक विकास को प्रभावित करने का होता है।

. ये नगर नये आविष्कारों के केन्द्र होते हैं।

. ये शहर वस्तुत: बाजार होते हैं। जिनमें वित्तीय एवं सेवा उत्पादनों की खरीद तथा बिक्री होती है।

) संघीय बाजर अर्थव्यवस्था

आर्थिक संकट कालीन परिस्थितियों में भारत में वैश्वीकरण का आविर्भाव हुआ। यह हमारी मजबूरी ही थी। हमें अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में आकर अपने कर्ज को अदा करने के लिए अपनी अर्थव्यवस्था में ढाँचागत परिवर्तन करना पड़ा। परिणामस्वरूप जो नई अर्थव्यवस्था आयी उसे हम रूडोल्फ के इकोनांमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली मई 5, 2001 में प्रकाशिथ एक लेख के अनुसार 'संघीय बाजार अर्थव्यवस्था' कहेंगे।

19.7 वैश्वीकरण व उदारीकरण : भारतीय परिप्रेक्ष्य में

भारत में वैश्वीकरण का आरम्भ 1991 में हुआ। तब नरसिंहराव भारत के प्रधानमंत्री थे और मनमोहन सिंह वित्तमंत्री थे। यह नये आर्थिक युग का सुत्रपात्र था। इसमें जो अर्थव्यवस्था स्थापित हुई वह संघीय बाजार व्यवस्था बन गयी। इसमें राज्यों को यह अधिकार मिल गया कि

केन्द्रीय योजना व्यवस्था के अन्तर्गत वे अपनी वित्तीय स्थिति में परिवर्तन कर सकें। इस व्यवस्था में सुधार आता है या खराबी, इसके लिए राज्य ही उत्तरदायी है।

एक नई व्यवस्था इस भाँति नियंत्रण अर्थव्यवस्था (कमाण्ड एकॉनामी) से संघीय अर्थव्यवस्था में बदल गयी। इस प्रकार वैश्वीकरण का सूत्रपात सरकारी स्तर पर 1991 से हुआ। इसके अनेक कारण बताये गये हैं—

1. बाहरी कर्ज का संकट

हम विदेशों से लिए गये कर्ज की किस्तों को चुकाने में असफल रहे, इधर देश ने कतिपय आंतरिक संगठनों से भी कर्ज ले का था। बाहरी व आंतरिक दोनों कर्ज बढ़ गये और तब पता लगा कि हमारी आर्थिक नीं में भी कोई न कोई खोट है। इस कर्ज को उतारने के लिए सरकार ने 1991 की वैश्वीय अर्थव्यवस्था को अपनाया।

2. कर्ज की रकम का भरभूर उपयोग न होना

कर्ज की रकम का भरपूर उपयोग उप्दान की वृद्धि में नहीं किया गया। यदि हम छोटे से देश दक्षिण कोरिया का उदाहरण ले तो परिणाम अच्छे होते। इस छोटे से देश ने करोड़ डालर का कर्ज उत्पादन में किया। परिणामस्वरूप इस देश में उद्यति को बड़ी ऊँचाई तक पहुँचा दिया। इधर भारत में हमने वाहवाही लूटने के लिए लोकप्रिय (पापुलिस्ट) कार्यों पर धन खर्च करवा दिया। हमने कर्ज की रकम को भी उपयोग में लगा दिया और विकास कार्य ठप कर दिये। जो कुछ विकास कार्य पर खर्च भी किया गया उसमें भ्रष्टाचार ने अपना भाग ले लिया।

3. अल्प अवधि कर्ज

हमने बाहरी देशों से जो कर्ज लिया उसका प्रयोग सबसिडी अर्थात् आर्थिक सहायता के रूप में किया। यह अल्प अवधि कर्ज है। इस कर्ज का प्रयोग पेट्रोल, खाद, खाने के तेल आदि के आयात पर खर्च किया। पिछले कई वर्षों से हम अपनी रणनीति में लापरवाही बरत रहे थे। अपनी सुविधा की अर्थव्यवस्था चला रहे थे।

4. उधारदाताओं के विश्वास में कमी

केवल चार महीने से अर्थात् नवम्बर 1990 से मार्च 1991 तक दो बार केन्द्र में सरकारें गिर गयी। फरवरी 1991 के केन्द्रीय बजट संसद में पेश नहीं किया जा सका और भी कुछ गठनाएं घटीं जिनके कारण उधारदाताओं का भरोसा हमसे हट गया। हमारी उधारी को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा। न तो आगे कर्ज लेना हमारे लिए सम्भव रहा और न कर्ज की किश्त चुकाने की अवधि बढ़ाई जा सकी। ऐसी परिस्थिति में उधारदाताओं ने हमारे सामने ढाँचागत अनुकूलन का विकल्प दिया।

5. ढाँचागत अनुकूलन

हमारे देश में वैश्वीकरण, ढाँचागत अनुकूलन के माध्यम से आया जैसा कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक का तरीका है। भारत को स्थायीकरण का विकल्प दिया। जिस प्रकार किसी मरीज को संकटपूर्ण अवस्था में चिकित्सक द्वारा उसके स्वास्थ्य को स्थायी बनाने की कोशिश की जाती है। स्थायीकरण के किसी भी कार्यक्रम के दो बुनियादी उसूल होते हैं। एक तो यह कि भुगतान की रकम जिसका चुकाना बाकी होता है उसे डूबने नहीं दिया जाये। इस तरह के स्थायीकरण में कर्ज को चुकाना और मुद्रा स्फीति को तो समस्या समझा गया

लेकिन इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया कि इससे गरीबी बढ़ जायेगी और लाखों लोग बेरोजगार हो जायेंगे। मुद्राकोष तथा विश्व बैंक ने भारत सरकार को जिस स्थायीकरण का सुझाव दिया वही इस सरकार की मुद्रास्फीति बन गयी।

ढाँचा अनुकूलन वस्तुत: वैश्वीकरण को दावत है। इस नीति के परिणामस्वरूप देश में उदारवाद और निजीकरण आये। सामान्य अर्थों में यह आयात-निर्यात के नियमों में छूट है। उदारीकरण में विदेशी निवेश को प्रोत्साहित किया जाता है।

5. नये अधिनियम

सार काम संविदा के माध्यम से होते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां दुनिया भर के राष्ट्र राज्यों के साथ-साथ सीधा व्यापार समझौता करती हैं। हमारे देश में महाराष्ट्र सरकार के साथ अमेरिकी बहुराष्ट्रीय एनरॉन कम्पनी द्वारा राज्य में बिजली आपूर्ति का समझौता किया गया।

भारतीय समाज पर प्रभाव

वास्तव में वैश्वीकरण ने अपार अवसरों का जो पिटारा खोला है वहीं उसने ढेर सारी त्रासदी भी हमारे ढोली में डाल दी है।

1. स्थानीय उद्योग-धन्धों पर प्रभाव

वैश्वीकरण और आर्थिक उदारीकरण ने स्थानीय धन्धों एवं स्वदेशी उत्पादन को बड़ी ठेस पहुँचायी हैं। हमारे यहाँ उत्तर-आधुनिक समाज का सूचना समाज ठीक ढंग से विकसित नहीं हुआ है। तकनीकी तंत्र का ज्ञान भी अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। हम दुनिया के विकसित देशों के बाजर में ठीक से प्रतियोगिता नहीं कर सकते। हमारा माल इस बाजार में टक्कर नहीं ले सकता है। परिणामस्वरूप हमारे स्थानीय बाजार में हम अपना उत्पादन नहीं बेच पाते हैं। हमारे स्थानीय कारखाने एक के बाद एक बन्द होने लगे हैं। मन्दी जानलेवा हो गयी है। बेरोजगारी आसमान को छू गयी है। भारतीय सन्दर्भ में आर्थिक वैश्वीकरण का अर्थ उदारीकरण, निजीकरण, व्यापार, निवेश, आयात और निर्यात से लिया जाता है। इस प्रक्रिया का प्रतिरोध तो हो रहा है लेकिन यह अभी राजनैतिक दलों के दांव-पेंच से बाहर नहीं आयी है।

2. राष्ट्रीय बहुलवादी संस्कृति पर प्रभाव

बहुलतावादी भारतीय संस्कृति पर संकट लग गया है। भारतीय समाज बहुलवादी है। इसकी संरचना कुछ इस प्रकार की है कि सम्पूर्ण दिशा की विभिन्नता को एक सूत्र में बांध रखती है इसे हम विविधता में एकता कहते हैं। यही हमारी संस्कृति की पहचान है। परन्तु हुआ यह है कि भारतीय संस्कृति वैश्वीकरण के प्रभाव में अपनी कई विधाओं की पहचान खो चुकी है। जैसे छत्तीसगढ़ की 'पंडवाना', विन्ध्याचल का 'आल्हा', महाराष्ट्र प्रदेश का 'तमासा', उ० प्र० की 'नौटंकी', पंजाब की 'गिद्दा' समाप्ति की ओर है। भरतनाट्यम् और ओडिसी नृत्य लुप्त होते जा रहे हैं। स्थानीय पहचावे पर भी हमला हुआ है।

3. जीवन पद्धति में बदलाव

विदेशी व्यापार तथा बाजार ने 1990 के बाद हमारी जीवन पद्धति को तीव्र गति से बदल दिया है। उपभोग के प्रतिमान में उलटफेर किया है। सांस्कृतिक उत्पादन को बाजार के माध्यम से बदल दिया है। धार्मिक आस्था तथा व्यवहार में भी परिवर्तन कर दिया है। अब एक लोकप्रिय संस्कृति का विकास हुआ है।

4. उपभोक्ता समाज

भारतीय समाज एक उपभोक्ता समाज का रूप लेता जा रहा है। देश के कई गाँवों में बिजली पहुँच गयी है। सड़कों का जाल फैल रहा है। संचार के साधन विकसित हो रहे है। खानपान व रहन-सहन में सजातीयता आ गयी है। चाय, कॉफी, अण्डे, मांस, मछली आदि देश के लोगों का स्वाद बन चुके हैं।

5. मीडिया समाज

पहले का मौखक समाज आज एक मीडिया समाज बन गया है। प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिा, यूनाइटेज न्यूज आफ इण्डिया, न्यूज एजेन्सियाँ देश को सम्पूर्ण विश्व से जोड़ती है इसके अतिरिक्त दूरसंचार के साथन जैसे—मोबाइल, फोन, ई-मेल, फैक्स, इन्टरनेट, वेबसाइट आदि ने बांकिंग व्यवहार, शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये हैं। इस प्रकार भारतीय समाज का स्वरूप मीडिया समाज में बदल गया है।

6. क्षेत्रीय गतिशीलता पर प्रभाव

वैश्वीकरण की सूचना प्रौद्योगिकी के कारण स्थानान्तरण, पय4टन तथा यात्रियों की वृद्धि से क्षेत्रीय गतिशीलता अत्यधिक बढ़ी है।

7. एकीकरण और पहचान की समस्या

बाजार व्यवस्था मीडिया की शक्ति तथा सूचना तकीकी तन्त्र ने स्थानीय संस्कृति के सामने पहचान की समस्या पैदा कर दी है। सजातीयता की विशाल प्रक्रिया यदि बराबर चलती रही तो स्थानीय तथा राष्ट्रीय पहचान का भविष्ट धूमिल हो जायेगा।

8. पूँजीवादी विचारधारा का प्रभाव

वैश्वीकरण स्वयं को एक कट्टर पूँजीवादी विचारधारा के रूप में प्रस्तुत कर रहा है जो उदारीकरण के माध्यम से राष्ट्र व राज्यों को अपने चंगुल में लेता जा रहा है।

19.8 सारांश

* इस इकाई के अन्तर्गत आप जनसंचार वैश्वीकरण एवं उदारीकरण की अवधारणा से परिचित हुए।
* समाजीकरण, सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक नियंत्रण में जनसंचार माध्यमों की सामाजिक भूमिका का वर्णन किया गया।
* वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के साथ-साथ कुछ अन्य समानार्थक अवधारणाओं जैसे 'विश्व गाँव', 'विश्व नगर', 'संघीय बाजार' अर्थव्यवस्था को भी इस इकाई में स्पष्ट किया गया है।
* भारतीय परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण के कारण हैं—बाहरी कर्ज का संकट, कर्ज की रकम का भरपूर उपयोग न होना, अल्प-अवधि कर्ज, उधारदाताओं के विश्वास में कमी तथा जाँचागत अनुकूलन।
* वैशीकरण के भारतीय समाज पर पड़ने वाले प्रभावों के अन्तर्गत स्थानीय उद्योग-धन्धों पर प्रभाव, राष्ट्रीय बहुलवादी संसकृति पर प्रभाव, जीवन-पद्धति में बदलाव, उपभोक्ता समाज, मीडिया समाज, क्षेत्रीय गतिशीलता पर प्रभाव, एकीकरण और

19.9 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

1. लस्मेन्द्र चोपड़ा : जनसंचार का समाजशास्त्र
2. अभय कुमार दुबे : भारत का भूमण्डलीयकरण
3. गिडेंन्स : द कान्स्वीकैन्सेस आफ मौडर्निटी

19.10 प्रश्नोत्तर

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. जनसंचार की अवधारणा की स्पष्ट व्याख्या कीजिये।
2. सामाजिक परिवर्तन में जनसंचार की भूमिका का वर्णन कीजिए।
3. वैश्वीकरण से आप क्या समझते हैं? भारतीय समाज पर इसके प्रभावों का वर्णन कीजिए।
4. उदारीकरण का तात्पर्य क्या है? इसके सामाजिक प्रभावों का मूल्यांकन कीजिये।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. वैश्वीकरण के आर्थिक प्रभावों को सूचीबद्ध कीजिये।
2. जनसंचार के माध्यमों का परिवार पर प्रभाव बताइये।
3. जनसंचार वैश्वीकरण में किस तरह सहयोगी है? टिप्पणी कीजिये।
4. वैश्वीकरण के प्रमुख आयामों का वर्णन कीजिये।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किसने सम्पूर्ण सांस्कृतिक प्रक्रिया को एक सम्प्रेषण व्यवस्था के रूप में मान्यता दी है?

   (अ) रोजर्स (ब) रेमण्ड विलियम (स) जे० कार्नर (द) मर्टन

2. निम्नलिखित में से कौन थरूवर्न के वैश्वीकरण के सांकेतिक शब्दावली में सम्मिलित नहीं है—

   (अ) बहुलवादी (ब) काल के बजाय स्थान से सम्बन्धित (स) अनेक प्रक्रियाओं का सम्मिलन (द) परम्परावाद

3. निम्नलिखित में से कौन गिडेन्स के बताये वैश्वीकरण के विस्तार के चार तत्वों में सम्मिलित नहीं है—

   (अ) पूंजीवाद (ब) अन्तर्राज्य व्यवस्था (स) सैन्यवाद (द) संयुक्त परिवार व्यवस्था

4. भारत में वैश्वीकरण का आरम्भ कब हुआ माना जाता है।

   (अ) 1857 (ब) 1947 (स) 1991 (द) 2001

उत्तर—1. (ब) 2. (द) 3. (द) 4. (स)

इकाई 20 शिक्षा, जनसंचार एवं विकास का मिथक एवं वास्तविकता

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 शिक्षा : अर्थ, परिभाषाएँ, विकास में भूमिका

20.2.1 सामाजिक विकास में शिक्षा की भूमिका

20.2.2 आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका

20.2.3 महिला शिक्षा एवं विकास

20.2.4 शिक्षा और विकास-वास्तविकता एवं मिथक

20.3 जनसंचार की अवधारणा

20.3.1 सामाजिक विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

20.3.2 जनसंचार और विकास-वास्तविकता एवं मिथक

20.4 सारांश

20.5 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

20.6 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई-4 के अन्तर्गत आप जनसंचार के विभिन्न माध्यमों तथा शिक्षाद्र के माध्यम से होने वाले विकास की वास्तविक स्थिति एवं मिथक दोनों से परिचित हो सकेंगे। इसे पढ़ने के बाद आप :

* शिक्षा एवं जनसंचार की अवधारणा को विस्तृत रूप में समझ सकेंगे।
* शिक्षा की सामाजिक एवं आर्थिक विकास में भूमिका का उल्लेख कर सकेंगे।
* महिलाओं को शिक्षा के परिणामस्वरूप विकास जैसे महत्वपूर्ण बिन्दु पर प्रकाश डाल सकेंगे।
* सामाजिक विकास में जनसंचार के विभिन्न माध्यमों की भूमिका की विवेचना कर सकेंगे।
* शिक्षा और जनसंचार से सम्बन्धित वास्तविकता एवं मिथक को समझ सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई जनसंचार एवं शिक्षा के माध्यम से होने वाले विकास की वास्तविकता एवं मिथक के अध्ययन से सम्बन्धित है। इस इकाई में शिक्षा एवं जनसंचार में माध्यम से होने

वाले विकास को यथार्थ रूप में परिचित कराया गया है। सर्वप्रथम शिक्षा के अर्थ एवं विकास में उसकी भूमिका को स्पष्ट किया गया है ताकि आप सम्पूर्ण विवेचना को सरलता के साथ समझ सकें। यद्यपि यह सत्य है कि शिक्षा ने समाज में विषमता को अधिक गहरा किया है, परन्तु यह भी सत्य है कि शिक्षा के माध्यम से विकास की प्रक्रिया तेजी से आगे बढ़ी है। हमने इस विवाद में पड़े बगैर यह समझाने का प्रयास किया है कि विकास के सन्दर्भ में शिक्षा का क्या योगदान है, उसकी वास्तविकता क्या है और मिथक क्या है?

इसी प्रकार जनसंचार को अवधारणात्मक स्वरूप के साथ-साथ सिद्धान्त रूप में भी स्पष्ट किया है तथा साथ ही जनसंचार के माध्यम से होने वाले सामाजिक विकास की भी विवेचना की गयी है। इसके अन्तर्गत समाजशास्त्री डेनियल लर्नर के सम्बन्धित विचारों को प्रमुखता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस इकाई में हम आपको शिक्षा, जनसंचार के माध्यम से विकास के मिथक एवं वास्तविकता की स्थिति से अवगत करा रहे हैं, इसलिए हमने इस इकाई में अधिक से अधिक उदाहरण भी दिये हैं और आपके लिए यथा स्थान प्रश्न भी दिये हैं। आप अभ्यास कार्य मेहनत व लगन से करें, इससे आपकी परीक्षा सम्बन्धी तैयारी में द्रुतगामी वृद्धि होगी।

20.2 शिक्षा : अर्थ, परिभाषाएँ एवं विकास में भूमिका

कोई समाज विकास के किस स्तर पर है, यह बात वहाँ के लोगों के शैक्षिक स्तर पर निर्भर करती है। शिक्षा सामाजिक आर्थिक प्रगति की सूचक है। लोगों की शिक्षा पर समाज व देश का भाग्य निर्भर करता है।

शिक्षा मनुष्य को समाज का एक उपयोगी अंग बनाने की प्रक्रिया है। इसका प्रमुख कार्य मनुष्य के जीवन के विभिन्न पक्षों यथा बौद्धिक, भावनात्मक, सामाजिक, शारीरिक आदि का समुचित विकास करना है। इस दृष्टि से शिक्षा को चहुँमुखी विकास की प्रक्रिया के रूप में जाना जाता है। यह मनुष्य के रहन-सहन, चिंतन आदि में निरन्तर परिवर्तन अथवा परिशोधन करती रहती है, ताकि मनुष्य अपने आपको आध्यात्मिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार ढाल सके अथवा अनेक सामाजिक परिस्थितियों को अपने अनुकूल कर सके।

शिक्षित व्यक्ति देश के कानूनों को भली-भांति समझते हैं और उनके तोड़ने के परिणामों से भी पूरी तरह परिचित होते हैं। इसलिए वे समाज में प्रत्येक कदम सोच-समझकर उठाते हैं। अत: शिक्षा का बढ़ता हुआ प्रभाव सामाजिक नियंत्रण में काफी सहायक रहा है।

शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की शिक्ष् धातु से हुई है। जिसका अर्थ है—सीखना, अध्ययन करना, ज्ञान प्राप्त करना। अत: शिक्षा सीखने, अध्ययन करने अथवा ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया है।

आजकल इसका प्रयोग प्रमुखत: अंग्रेजी के 'एजुकेशन' शब्द के हिन्दी रूपान्तरण के रूप में होता है। अंग्रेजी के एजुकेशन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'एजुकेशन' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है (E अर्थात् भीतर से, catum अर्थात् आगे बढ़ाना) अर्थात् व्यक्ति के भीतर की अन्तर्निहित शक्तियों अथवा विशिष्टताओं को अग्रसर करना।

जब बच्चा औपचारिक कक्षाओं में, निश्चित समय में, निश्चित पाठ्यक्रम को पढ़कर अनेक परीक्षाओं को उत्तीर्ण करके सीखता है, जब उसे औपचारिक शिक्षा कहते हैं। यही शिक्षा का संकुचित अथवा सीमित अर्थ है।

मनुष्य जन्म से अन्त तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। वह क्षण-प्रतिक्षण नये-नये अनुभव करता रहता है, जिससे उसका दिन-प्रतिदिन का व्यवहार प्रभावित होता रहता है। उसका यह सीखना विभिन्न समूहों, उत्सवों, पत्र-पत्रिकाओं, टेलीविजन, सिनेमा, इन्टरनेट आदि से होता है। इस प्रकार का सीखना अनौपचारिक सीखना कहलाता है तथा यह शिक्षा का व्यापक अथवा विस्तृत अर्थ है।

* फिलिप्स कहते हैं कि ''शिक्षा वह संस्था है, जिसका केन्द्रीय तत्व ज्ञान का संग्रह है।''
* दुर्खीम लिखते हैं ''शिक्षा अधिक आयु के लोगों द्वारा ऐसे लोगों के प्रति की जाने वाली क्रिया है, जो अभी सामाजिक जीवन में प्रवेश करने के योग्य नहीं है। इसका उद्देश्य शिशु में उन भौतिक, बौद्धिक और नैतिक विशेषताओं का विकास करना है, जो उसके लिए सम्पूर्ण समाज और पर्यावरण से अनुकूलन करने के लिए आवश्यक है।''
* टी० रेमण्ड के अनुसार ''शिक्षा विकास की वह प्रक्रिया है, जिसके अनुसार मनुष्य बचपन से प्रौढ़ावस्था तक अनेक तरीकों से अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पर्यावरण से अनुकूलन करना सीखता है।
* जी० एच० थामसन लिखते हैं, ''शिक्षा बाह्य वातावरण के प्रभावों का एक समन्वित रूप है, जिसके द्वारा मनुष्यों के आचार-विचार, आदत तथा व्यवहार में सुधार होता है अर्थात् जिसके द्वारा मनुष्य के उत्तम गुणों का विकास होता है।''
* बोगार्डस ''सांस्कृतिक विरासत तथा जीवन के अर्थ को ग्रहण करना ही शिक्षा है।''
* महात्मा गांधी ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय बच्चे व मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा में विद्यमान सर्वोत्तम गुणों का सर्वांगीण विकास करना है।''
* काम्ट ''शिक्षा व्यक्ति की उस सब पूर्णता का विकास है, जिसकी उसमें क्षमता है''

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि शिक्षा विकास की एक प्रक्रिया है। इतना ही नहीं बल्कि वह बहुमुखी, समरूप नैसर्गिक और प्रगतिशील विकास की प्रक्रिया है। अब हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि आखिर शिक्षा विकास क्यों करती है? आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा परम मोक्ष प्राप्त कराने में सहायक है, यथार्थीवादी और प्रकृतिवादी इसे भौतिक क्रिया मानते हैं और प्रयोगवादी चूँकि सामाजिक जीवन को महत्व देते हैं, इसीलिए शिक्षा को मनुष्य के सामाजिक विकास का एक साधन मानते हैं। मनुष्य समाज में पैदा होता है, इसीलिए उसे सामाजिक उत्तरदायित्वों को वहन करना होता है। बाल्यकाल में शिशु माता-पिता पर निर्भर होता है, धीरे-धीरे कुछ सीखकर या शिक्षा प्राप्त कर वह आत्मनिर्भर बनता है। एक समय ऐसा आता है कि वह दूसरों की सहायता करने योग्य हो जाता है। सच तो यह है कि शिक्षा

ह बहुत बड़ा काम करती है कि मनुष्य को इस योग्य बना देती है कि वह अपने उत्तरदायित्वों का पालन करने योग्य हो जाता है।

20.2.1 सामाजिक विकास में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा की एक महत्वपूर्ण भूमिका सामाजिक विकास के क्षेत्र में होती है। भारत में भी शिक्षा का प्रसार इसी उद्देश्य से किया जा रहा है। शिक्षा के द्वारा उद्योग तथा कृषि के लिए प्रशिक्षित कर्मचारियों को तैयार किया जाता है। राजनीतिक तथा प्रशासनिक संस्थाओं के संचालन में भी शिक्षा का प्रमुख हाथ होता है। शिक्षा लोगों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाकर उन्हें उस प्रकार के व्यवहार के लिए प्रेरित करती है, जो व्यवहार 'खुले समाज' की विशेषता है। भारत जैसे विशाल देश के लिए शिक्षा की महत्ता इसलिए और अधिक है, क्योंकि यहाँ की समस्याएँ अनेक हैं तथा एक-दूसरे से जुड़ी हुई है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था को चलाने के लिए भी शिक्षा का प्रसार आवश्यक है। शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति सहनशीलता ग्रहण कर एक तार्किक व्यक्ति के रूप में उभरता है। शिक्षा व्यक्ति को उसकी भूमिका के प्रति भी सजग करती है।

शिक्षा सामाजिक विकास का आधार है। शिक्षा का सम्बन्ध ग्राह्यता और सामर्थ्य दोनों से होने के कारण यह विकास की पृष्ठभूमि तैयार करती है, जिन देशों प्रदेशों और क्षेत्रों में शिक्षितों का प्रतिशत अधिक है, तुलनात्मक रूप से अन्यों की तुलना में वे अधिक गतिशील होते हैं। विकसित और विकासशील देश इसीलिए अधिक प्रगति करते हैं कि वहाँ शिक्षा का प्रतिशत अधिक है, जबकि पिछड़े देशों के पिछड़ेपन का कारण ही अशिक्षा है। केरल जैसे प्रान्त में हम देखते हैं कि वहाँ शिक्षा और साक्षरता का अधिक प्रतिशत होने के कारण ही परिवार नियोजन, पंचवर्षीय योजनाओं तथा अन्य शासकीय योजनाओं को अधिक सफलता मिली है। राजनीतिक जागरूकता भी केरल में बहुत अधिक है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा वांछित फलों की प्राप्ति और द्रुतगामी गतिशील सामाजिक विकास की आधारशिला है।

20.2.2 आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा का कार्य आर्थिक विकास अथवा समाज में आर्थिक समृद्धि लाना भी होता है। सामाजिक संचालन और सामाजिक संगठन के स्थायित्व के लिए सामाजिक समृद्धि आवश्यक होती है। यह कार्य शिक्षा द्वारा ही सम्भव होता है। तकनीकी और प्राविधिक शिक्षा मूल रूप में सामाजिक समृद्धि के लिए उत्तरदायी होती है। भारत में बेसिक शिक्षा प्रणाली इस उद्देश्य से भी प्रेरित है। यदि बेसिक शिक्षा प्रणाली के अनुरूप बालकों को शिक्षा दी जाये, तो निश्चित रूप से इससे समाज में आर्थिक समृद्धि का विकास हो सकता है।

20.2.3 महिला शिक्षा और विकास

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने विभिन्न क्षेत्रों में काफी उन्नति की है, परन्तु देश में शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की दशा शोचनीय बनी हुई है। निरक्षरताद्र के चलते भारतीय महिला हर मोर्चे पर पिछड़ी हुई है। विकास और शिक्षा का गहरा रिश्ता है, जिस समाज में शिक्षा सुविधाएँ बेहतर होंगी, उसमें विकास की गति उतनी ही तीव्र होगी। परन्तु भारत में इस सूत्र के प्रति उपेक्षा के चलते आज दुनिया के आधे निरक्षर भारत में हैं। इनमें भी महिलाएँ ज्यादा निरक्षर हैं।

1991 की जनगणना के अनुसार देश में कुल साक्षरता दर 52.11 प्रतिशत थी। पुरुषों की साक्षरता के मुकाबले महिलाओं की साक्षरता 39.42 प्रतिशत आंकी गयी। महिला साक्षरता की दृष्टि से देश में सबसे कम साक्षरता 20.80 प्रतिशत राजस्थान में है। 1991 में कर जनगणना सर्वेक्षण के अनुसार देश की कुल 84 करोड़ जनसंख्या के 33 करोड़ 22 लाख निरक्षरों में से 20 करोड़ 21 लाख महिलाएँ निरक्षर थीं। ग्रामीण क्षेत्रों में आज की 75 प्रतिशत से अधिक महिलाएँ निरक्षर हैं। देश के 17 राज्यों में महिला साक्षरता 50 प्रतिशत से कम है। देश के 73 जिलों की महिला साक्षरता 20 प्रतिशत से भी कम है।

निरक्षर महिलाओं के इन खौफनाक आंकड़ों के बावजूद आज भी राष्ट्र की बालिकाओं की शिक्षा की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जा रहा। आज भी करोड़ों बालिकाएँ कभी भी स्कूल नहीं जा पातीं। इनमें भी अनुसूचित जातियों की लड़कियाँ सबसे अधिक शिक्षा से वंचित हैं। यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में अनुसूचित जातियों के बच्चों की प्राथमिक कक्षाओं (पहली से चौथी तक) में नामांकन दर केवल 15.79 प्रतिशत है। इनमें 39.46 प्रतिशत कन्याएँ हैं और इनमें भी प्राथमिक शिक्षा के बाद आधी लड़कियाँ स्कूल छोड़ देती हैं।

महिलाओं के विकास और उत्थान के लिए जरूरी है कि निरक्षरता का समूल नाश किया जाये। सर्वेक्षण बताते हैं कि शिक्षित महिलाओं की तुलना में अनपढ़ स्त्रियाँ बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, दहेज तथा अनमेल विवाह, तलाक, वेश्यावृत्ति या बलात्कार की ज्यादा शिकार होती हैं।

20.2.4 शिक्षा और सामाजिक-आर्थिक विकास-वास्तविकता एवं मिथक

शिक्षा सामाजिक आर्थिक विकास के स्रोत के रूप में बेहद उपयोगी रही है। यथा—

* टी० बी० बॉटोमोर के अनुसार शिक्षा सामाजीकरण का दृढ़ आधार है।
* शिक्षा ने कार्यकुशलता और विशेषता में वृद्धि कर सामाजिक विकास की गति को बहुत तीव्र कर दिया।
* ब्रिटिश भारत की खुली शिक्षा व्यवस्था ने भारतीयों के विचारों और दृष्टिकोणों को परिवर्तित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे विकास की प्रक्रिया में तेजी आयी है।
* सामाजिक बुराइयों को समाप्त करने की एजेंसी के रूप में कार्य कर, शिक्षा ने सामाजिक विकास को परम्परागत से आधुनिक दिशा की ओर मोड़ने का कार्य किया है। जैसे-जैसे शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है, वैसे ही वैसे अन्धविश्वासों कुरीतियों और पाखण्डवाद का समापन हो रहा है।
* शिक्षा संस्कृति को उपयोगिता से जोड़कर विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।
* शिक्षा उदारवादी सामाजिक मूल्यों से सम्बन्धित होकर प्रजातांत्रिक-समाजवादी व्यवस्था के अनुरूप सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण इकाई रही है।
* जब हम शिक्षा का सम्बन्ध जागरूकता लाने के प्रयासों से जोड़ते हैं, तो कोई क्षेत्र

ऐसा नहीं बचता, जिसे कि परिवर्तन के रूप में शिक्षा ने प्रभावित न किया हो। वास्तव में जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होता है, वैसे-वैसे व्यक्ति समाज और राष्ट्र के जीवन में नई चेतना, नई स्फूर्ति का प्रादुर्भाव होता है। शिक्षा अतीत और अन्धकार के मार्ग से निकालकर व्यक्ति और समाज को स्वर्णिम भविष्य की ओर अग्रसर करती है। शिक्षा और भविष्य के विकास के इसी पक्ष पर बल देते हुये श्री 'सेथना' और 'ह्यूगो' ने मत प्रतिपादित किया है कि एक स्कूल का खोला जाना सौ कारावासों को बन्द करने के समान हैं। वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान से सम्बन्धित आधुनिक सभी विकासों के मूल में शिक्षा ही है। समस्त सामाजिक विकास और परिवर्तन का आधार शिक्षा ही है।

जस प्रकार प्रत्येक पक्ष के दो पहलू लेते हैं, उसी प्रकार सामाजिक विकास और शिक्षा के भी कारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू हैं, जो विकास की वास्तविकता के साथ-साथ उसके मिथक से परिचित कराते हैं। दरअसल नकारात्मक सामाजिक विकास उस विकास को कहा ा सकता है, जो कि घोषित लक्ष्यों और अपेक्षाओं के विपरीत दिशा मे चला जाता है। इस ष्टि से शिक्षा का अन्धेरे से उजाले की ओर विकास का परम लक्ष्य मिथक बन कर रह जाता । शिक्षा के माध्यम से सामाजिक विकास की वास्तविकताओं के साथ-साथ हम कुछ ऐसी ास्तविकताएँ भी आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं, जिनसे शिक्षा द्वारा सामाजिक आर्थिक विकास का लक्ष्य मिथक बन जाता है।

* शिक्षा से शोषण में वृद्धि है। शिक्षित अशिक्षितों के अज्ञान का अपने स्वार्थ की पूर्ति में उपयोग करने लगे हैं।
* अनियोजित शिक्षा से शिक्षितों में असंतोष बढ़ रहा है और वे बड़ताल, आन्दोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे हैं।
* शिक्षा व्यवसाय में भौतिकता और वाह्य आडम्बर के कारण शिक्षित शारीरिक श्रम से घृणा कर रहे हैं।
* शिक्षा में जीवन उपयोगी व्यवहारिक शिक्षा का अभाव है।
* दो प्रकार की शैक्षणिक व्यवस्था उच्च और निम्न वर्ग की भावनाओं को विकसित करती है, जिससे वर्गगत आधार और भेदभाव बढ़ रहा है।
* शिक्षा में राजनीतिक हस्तक्षेप की वृद्धि से शैक्षणिक संस्थाएँ अध्ययन-अध्यापन घोषित लक्ष्य के प्रति समर्पित भाव से कार्य नहीं कर पा रही।
* शिक्षकों की व्यावसायिक वृत्ति शिक्षण के पुनीत कार्य के मार्ग में बाधा बन रही है।

शिक्षा की उपर्युक्त कुछ ऐसी विसंगतियाँ हैं, जो कि सामाजिक विकास को वांछित दिशा की ओर ले जाने में बाधक हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश को नियोजन और व्यवस्थागत सुधार से दूर किया जा सकता है तथा शिक्षा के द्वारा सामाजिक विकास को सही दिशा दी जा सकती है।

20.3 जनसंचार की अवधारणा

जनसंचार माध्यम या मास मीडिया का तात्पर्य ऐसी तकनीक अथवा उपकरण से है, जिसके द्वारा समान संदेश लगभग एक ही समय में बहुत से व्यक्तियों के बीच पहुँचाया जा सके।

सामाजिक जनसंचारशास्त्री जे० कार्नर के मत में जनसंचार, संदेश के बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा वृहद स्तर पर विषम वर्गीय जन समूहों में द्रुतगामी वितरण करने की प्रक्रिया है।'' (लक्ष्मेन्द्र चोपड़ा, जनसंचार का समाजशास्त्र)

आधुनिक जनसंचार माध्यम ऐसे व्यक्तियों के बीच सामान्य सहमति का निर्माण करते हैं जो आप तौर पर परस्पर आमने सामने नहीं मिलते हैं। समाज में सामान्य सहमति के निर्माण की प्रौद्योगिकीय प्रक्रिया के कारण जनसंचार माध्यम समाज की संस्कृति को भी प्रभावित करते हैं। वस्तुतः जनसंचार माध्यम संदेश उत्पादन तथा वितरण की प्रक्रिया में एक बड़े सामाजिक समूह को मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करते हैं, जिसके कारण समूह की संस्कृति के भौतिक तथा अभौतिक दोनों की प्रारूपों पर सकारात्मक अथवा नकारात्मक परिवर्तन हो सकते हैं। प्रसिद्ध विचारक तथा समाजशास्त्री रेमण्ड विलियम्स ने संस्कृति का समाजशास्त्रीय दृष्टि पर विचार करते हुए जनसंचार माध्यमों के सांस्कृतिक महत्व को स्पष्ट किया है। रेमण्ड विलियम्स सम्पूर्ण सांस्कृतिक प्रक्रिया को एक सम्प्रेषण व्यवस्था के रूप में मान्यता देते थे। सामाजिक संचारशास्त्र की मान्यता है कि जनसंचार मात्र सूचनाओं के आदान प्रदान की प्रक्रिया नहीं है, अपितु व्यापक समझ, धारण निर्माण तथा आपसी सहमति इसकी विशेषताएँ हैं।

जनसंचार की परिभाषा में संचारशास्त्री जे. कार्नर ने कहा है कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत विषमवर्गीय बड़े तथा दूर-दूर फैले जनसमूहों के लिए वृहद स्तर पर संदेशों का उत्पादन तथा वितरण किया जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ये लक्षित जनसमूह द्वितीयक समाज या मास सोसायटी कहलाते हैं।

203.1 सामाजिक विकास में जनसंचार माध्यमों की भूमिका

संचार माध्यम मानव समाज के विकास के प्रमुख अभिकरण के रूप में कार्य करते हैं। समाजशास्त्री हरबर्ट स्पेन्सर ने समाज को जीव के रूप में रूपायित कर सामाजिक विकास की कल्पना की थी। स्पेन्सर के मत में सैन्यवाद से उद्योगवाद के माध्यम से एकीकृत व्यवस्था की स्थापना से समाज के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व प्रजातीय वर्गों के लिए शान्ति से रहना सम्भव हुआ। हरबर्ट स्पेन्सर के मत में समाज सदा प्रगति की ओर बढ़ता है। कार्ल मार्क्स ने अन्तिम सामाजिक व्यवस्था के पूर्ण विकास के विचार प्रस्तुत करते समय एक ऐसे समाज की कल्पना की थी जिसमें सामाजिक व्यवस्था ने पूर्णता की स्थिति प्राप्त कर ली है, उस समाज में प्रत्येक से उसकी सामर्थ्य के अनुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार, का नियम चलित होगा। अनेक समाजशास्त्रियों का मत है कि सामाजिक परिवर्तन चेतन और सुव्यवस्थित प्रयत्नों द्वारा लाये जा सकते हैं।

लेस्टर एफ, वार्ड ने कहा है कि चेतन नियोजन के उद्देश्यात्मक प्रयत्नों द्वारा प्रगति के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। शिक्षा और ज्ञान के माध्यम से बुद्धि भावना को जीत सकती है, ताकि प्रभावी नियोजन सम्भव हो सके।

चार्ल्स ई. एल्वुड, लुड्विग टी., एल. टी. हाब हाउस ने भी प्रगति की प्रक्रिया में शिक्षा और ज्ञान का महत्व बताते हुए कहा था—विवेक द्वारा भौतिक तत्वों पर नियंत्रण पाकर प्रगति के लक्ष्य प्राप्त किये जा सकते हैं। मानवीय प्रयास विवेक के नियन्त्रणणाधीन होते हैं, अतः

प्रकृति में बौद्धिक तत्वों को विकसित कर इसे विकास की प्रक्रिया में प्रमुख घटक के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। निश्चित रूप से एक मनोवैज्ञानिक अभिकरण के रूप में जनसंचार माध्यमों की इस प्रक्रिया में महती व अनिवार्य भूमिका है। क्योंकि जनसंचार सूचनाओं और विचारों के आदान-प्रदान की दो तरफा प्रविधि है। प्रगट टैक्नोलॉजी की आधुनिक दुनिया में जनसंचार माध्यम ज्ञान तथा ज्ञान के उपयोगकर्ताओं के सम्पर्क में महती भूमिका का निर्वाह करते हैं। यह कहा जा सकता है कि किसी भी राष्ट्र या समाज का विकास इस तथ्य पर निर्भर करता है कि कितनी कुशलता से सूचना व तकनीक सभी नागरिकों तक पहुँचायी जा सकती है।

आज की दुनिया में विकास अथवा प्रगति की अवधारणा मात्र आर्थिक आय या उत्पादन वृद्धि से सम्बन्धित नहीं है। उसके मानकों में सामाजिक आर्थिक असमानताओं में कमी तथा विकास प्रक्रिया में नागरिकों की सहभागिता बढ़ाने से है।

1958 में अमेरिकी समाजशास्त्री डेनियल लर्नर ने संचार साधनों को विकास के प्रत्यक्ष शक्तिशाली माध्यम के रूप में प्रतिष्ठित कियका। लर्नर ने जनसंचार माध्यमों को तीसरी दुनिया में विकास के गुणक यंत्र के रूप में प्रस्तुत किया। इस प्रादर्श में जनसंचार माध्यमों की भूमिका एकपक्षीय थी, मूलय: इनका कार्य राजकीय विकास एजेंसियों की सूचनाओं को नागरिकों तक पहुँचाना था। उनके मत में रेडियों विकास के गुणक यन्त्र के रूप में प्रभावशाली भूमिका का निर्वाह कर सकता है, क्योंकि रेडियो—

1. विकास के लिए महत्वपूर्ण सूचनाएं शीघ्र तथा सुगमतापूर्वक प्रदान कर सकता है।
2. विकास के लिए आम जनों के व्यवहारों में परिवर्तन की प्रक्रिया में सक्षम हैं।
3. राष्ट्रीयता की भावना का विकास कर सकता है।
4. जागृत जनमत का निर्माण कर सकता है।

लर्नर ने आधुनिकीकरण तथा नगरीकरण को समृद्धि तथा साक्षरता के कारक मानते हुए राष्ट्रीय विकास में जनसंचार माध्यमों के योगदान का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। लर्नर मानते थे कि आविष्कारों का प्रसार कर जनसंचार माध्येम राजनीतिक विकास की प्रक्रिया में योगदान दे सकते हैं। लर्नर के विचारों के अनुरूप 1964 में यूनेस्कों की एक रिपोर्ट में कहा गया कि किसी देश के राष्ट्रीय विकास के संकेतकों में प्रति आय, साक्षरता, नगरीकरण तथा औद्योगीकरणे साथ-साथ विकसित जनसंचार माध्यम भी शामिल हैं।

20.3.2 जनसंचार और विकास-वास्तविक एवं मिथक—

भारतीय समाजशास्त्री डॉ. श्यामाचरण दुबे के शब्दों में—''आधुनिक विकास को एक मानवीय आधार दिया जाना आवश्यक है, क्योंकि गरीबी और उससे जुड़ी समस्याओं के प्रति अधिक संवेदनशील हुए बिना न तो जनतंत्र का कोई मतलब है न ही विकास का।'' इस स्तर पर जनसंचार माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिकाएं इस प्रकार हैं—

* समाज के सदस्यों को विकास की सम्भावनाओं से परिचित कराना।
* समाज को आवश्यक-तकनीकी ज्ञान प्रदान करना।
* विकास सन्दर्भ में नवाचारों का आकलन व अध्ययन करना।
* विकास प्रक्रिया में सामाजिक सामुदायिक सहभागिता व स्थानिक तत्वों को प्रोत्साहन देना।

* विकास प्रक्रिया के अनुभवों का आधार प्रदान करना।
* विकास प्रक्रिया में आत्म-निर्भरता को बढ़ावा देने के लिए स्थानीय समूहों को उन्हीं की भाषा, संस्कृति व परिवेश के अनुसार प्रेरणा।
* विकास सम्बन्धी सूचनाओं का स्थानीय, सामुदायिक, क्षेत्रीय राष्ट्रीय व वैश्विक सभी स्तरों पर व्यापक प्रचार-प्रसार।
* विकास नियोजन में नीति निर्धारकों तथा आमजनों के बीच सम्पर्क सूत्र का कार्य करना।
* विकास योजनाओं के ईमानदार, सुनियोजित तथा सफल क्रियान्वयन हेतु सामाजिक निगरानी व नियन्त्रक की भूमिका।
* विकास हेतु आवश्यकतानुसार पारम्परिक सामाजिक मूल्यों में लोकतांत्रिक व सहचर्य पद्धति से परिवर्तन करते हुए सामूहिक सामाजिक मनोवृत्ति का निर्माण।
* सामाजिक विकास के लक्ष्यों की अनुशासित ढंग से प्राप्ति के लिए सहभागी स्वभाव तथा रचनात्मक व्यक्तियों के निर्माण हेतु वास्तविक जनशिक्षा का प्रचार कर चेतना का विस्तार करने के लिए।

विकास में जनसंचार साधनों की उपरोक्त भूमिका के सार्थक निर्वाह के लिए एक नयी जनसंचार प्रणाली की रूपरेखा कई देशों, विशेषत: तीसरी दुनिया के विकासशील देशों में तैयार की गयी। इस नयी प्रणाली में रेडियों, टेलीविजन तथा नवीनतम् इलेक्ट्रानिक मीडिया शामिल हैं।

जनसंचार माध्यमों से सामाजिक विकास के साथ ही इसके अनेक दुष्परिणामों से भी समाज को जूझना पड़ा रहा है। पूँजीवादी प्रक्रिया में टेलीविजन की तकनीक इतनी ताकतवर बन गई कि वह माध्यम समेत विषय को निगल रही है। नयी तकनीक की संस्कृति का विकास समाज की सामूहिक इच्छा पर निर्भर करता है, लेकिन विकास के लिए बड़े विचार की आवश्यकता होती है। जिस तकनीक के विकास के पीछे बड़ा विचार नहीं होता, वह तकनीक सामाजिक जीवन को नष्ट करने लगती है, यही कारण है कि विचार-विहीन टेलीविजन को सामाजिक विचारक जेम्स पैत्रास ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि पलायनवादी टेलीविजन कार्यक्रम दूसरी दुनिया के द्वारा इन्द्रजाल बुन रहे हैं। टेलीविजन ने घरेलू जिन्दगी और क्रियाकलापों में चौतरफा हमला किया है। पश्चिम नियत्रित टेलीविजन अपने कार्यक्रमों के माध्यम से यह संदेश प्रचारित करना चाहते हैं कि दरिद्रता सिर्फ़ एक वैयक्तिक समस्या है, इस कारण इसका हल निजी प्रयासों पर ही निर्भर है। जेम्स पेत्रास ने इस प्रचार के खतरों को पहचानते हुए कहा है कि यह कार्य एक निर्णयक जनसमूह को उदासीन जनता में बदलने का प्रयास है।

यह माना जा रहा था कि जनसंचार में प्रसारित संदेश तेजी से बहुल जनसंख्या तक पहुँचकर, सूचनाएँ प्रदान कर विकास के लिए प्रेरित करेंगे, परन्तु ऐसा नहीं हुआ। इसके साथ ही अन्य अनेक ऐसे प्रभाव परिलक्षित होते हैं जिनमें जनसंचार के साधनं को विकास से जोड़कर

खना एक मिथक ही सिद्ध हो रहा है। ऐसे कुछ प्रभावों का हम यहाँ वर्णन कर रहे हैं।

सूचना तकनीक से लैस इन्टरनेट, टेलीविजन के द्वारा अश्लील चित्र युवा वर्ग को दिशाहीन कर सांस्कृतिक प्रदूषण फैला रहे हैं।

अपने व्यावसायिक हितों के चलते सूचना तकनीक का प्रयोग उपभोक्ता संस्कृति को विकसित करने में किया जा रहा है जिससे सांस्कृतिक लक्ष्यों और साधनों के पुनर्निर्धारण में विषमताएं परिलक्षित हो रही हैं।

राष्ट्र प्रेम, धर्म, संस्कृति व नैतिक मूल्यों में क्षरण के लिए भी जनसंचार माध्यम उत्तरदायी हैं।

सुचना प्रौद्योगिकी के कारण जो उत्तर आधुनक संस्कृति भर रही है वह नैतिकता मुक्त है जिससे समाज निरन्तर संवेदनशून्यता की ओर उन्मुख तथा वास्तविक अस्मिता से विमुख होता जा रहा है, जिसके कारण समाज में अनेक विकृतियाँ पैदा हो रही हैं।

हैबरमास के अनुसार आज 'अनुबंधात्मक नैतिकता' पर आधारित 'उद्देश्यात्मक तार्किकता' बढ़ रही है जिसने 'समालोचनात्मक तार्किकता' को गोड़ बना दिया है।

ह समझने की आवश्यकता है कि लोक कल्याण के मात्र आर्थिक लाभ कमाने के स्थान पर ंचार माध्यमों की व्यापक सामाजिक भूमिका के उपयोग की जरूरत है। इलैक्ट्रानिक नसंचार माध्यम रेडियों तथा टेलीविजन की सामाजिक विकास के लिए उपयोगी तथा हत्वपूर्ण है।

20.4 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आपने शिक्षा एवं जनसंचार की अवधारणात्मक एवं विवेचनात्मक जानकारी प्राप्त की। अब आप शिक्षा एवं जनसंचार के अर्थ, विभिन्न समाजशास्त्रियों के मतों, एवं सामाजिक व आर्थिक क्षेत्रों में भूमिका से अवगत हो गये हैं।

जहाँ तक सामाजिक विकास में शिक्षा की भूमिका का प्रश्न है तो शिक्षा के द्वारा समाजीकरण, व्यक्तियों की कार्यकुशलता में वृद्धि, सामाजिक कुरीतियों एवं पाखण्डवाद का समापन, वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास का ज्ञान आदि हुआ है। शिक्षा के माध्यम से आर्थिक विकास व महिलाओं का विकास भी सम्भव हुआ है।

शिक्षा ने जहाँ विकास का मार्ग प्रशस्त किया है, वहीं शिक्षितों द्वारा अधिक्षितों का शोषण, शिक्षा के व्यवसाय का भौतिकता एवं बाह्य आडम्बर से परिपूर्ण होना आदि दशाओं ने शिक्षा के पवित्र उद्देश्यों को मिथक के रूप में प्रस्तुत किया है।

जनसंचार माध्यमों की सामाजिक विकास में भूमिका के सन्दर्भ में यह समझने की आवश्यकता है कि लोक कल्याण हेतु मात्र आर्थिक लाभ कमाने के स्थान पर संचार माध्यमों की व्यापक भूमिका के उपयोग की जरूरत है। इलैक्ट्रानिक जनसंचार माध्यम रेडियों तथा टेलीविजन की जनसेवा प्रसारण तथा जन-सहभागी प्रसारण की अवधारणाएं सामाजिक विकास के लिए उपयोगी तथा महत्वपूर्ण हैं।

20.5 संदर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

1. बौटोमोर : सोशियालाजी
2. सुरेश सेठ : जन संचार
3. एस० सी० दुबे : विकास का समाजशास्त्र

20.6 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. शिक्षा वह संस्था है जिसका केन्द्रीय तत्व ज्ञान का संग्रह है।'' यह परिभाषा किस समाजशास्त्री ने प्रस्तुत की है। (सही उत्तर के सामने सही ( ) का निशान लगायें)
   (अ) फिलिप्स ( )
   (ब) दुर्खीम ( )
   (स) कार्ल मार्क्स ( )
   (द) मर्टन ( )
2. ''सांस्कृतिक विरासत तथा जीवन के अर्थ को ग्रहण करना ही शिक्षा है।'' यह परिभाषा किसकी है? (सही उत्तर के सामने सही ( ) का निशान लगायें)
   (अ) दुर्खीम ( )
   (ब) बोर्गाडस ( )
   (स) लार्नर ( )
   (द) मैकाइवर ( )
3. किसने कहा ''शिक्षा व्यक्ति की उस सब पूर्णता का विकास है, जिसकी उसमें क्षमता है।'' (सही उत्तर के सामने सही ( ) का निशान लगायें)
   (अ) महात्मा गाँधी ( )
   (ब) काम्ट ( )
   (स) दुर्खीम ( )
   (द) कार्ल मार्क्स ( )
4. किसने कहा ''शिक्षा समाजीकरण का दृढ़ आधार है।'' (सही उत्तर के सामने सही ( ) का निशान लगायें)
   (अ) टी. बी. बाटोमोर ( )
   (ब) मर्टन ( )
   (स) गिडिंग्स ( )
   (द) गिलिन एवं गिलिन ( )
5. जनसंचार संदेश के बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा वृहद स्तर पर विषम वर्गीय जन समूहों में द्रुतगामी वितरण करने की प्रक्रिया है।'' यह परिभाषा किस जनसंचार शास्त्री ने दी। (सही उत्तर के सामने सही ( ) का निशान लगायें)

(अ) जे. कार्नर ( )

(ब) लर्नर ( )

(स) बर्गर ( )

(द) हरिग्टन ( )

उत्तर—

1. (अ) देखें 1.2
2. (ब) देखें 1.2
3. (स) देखें 1.2
4. (अ) देखें 1.2.4
5. (अ) देखें 1.2.4

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. महिला शिक्षा का विकास से क्या सम्बन्ध है? स्पष्ट कीजिये।
2. सामाजिक विकास में रेडियों की भूमिका को सूचीबद्ध कीजिये।
3. शिक्षा के द्वारा आर्थिक विकास संभव है, के पक्ष में तर्क दीजिये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा को परिभाषित कीजिये एवं विकास में इसकी भूमिका निरूपित कीजिये।
2. शिक्षा एवं विकास की वास्तविकता एवं मिथक पर एक आलोचनात्मक लेख लिखिये।
3. क्या जन संचार जनशिक्षा का माध्यम है? विकास के संदर्भ में तर्क सहित उत्तर दीजिये।

NOTES

NOTES